

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६]

महाकवि धनञ्जयविरचिता

ना म माला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

अनेकार्थनिघण्टुः एकाक्षरीकोशश्च



सम्पादक

पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, सप्ततीर्थ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति }
१००० प्रति }

चैत्र, वीरनि० सं० २४७६
वि० सं० २००७
अप्रैल १९५०

{ मूल्य
{ साढ़े तीन रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
तत्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा

संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में
उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध विषयक
जैनसाहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन, उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद
आदि के साथ प्रकाशन होगा। जैन भंडारों की सूचियाँ, शिलालेख-
संग्रह, विशिष्ट विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकहितकारी
जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।

R693

15/5/51

4392/02



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)
प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीनन्यायतीर्थ, आदि
बौद्धदर्शनाध्यापक संस्कृत महाविद्यालय
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

प्रकाशक—

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक—पं पृथ्वीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, काशी।

स्थापनाव्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० सं० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी १९४४

नाममाला



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

ANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

SANSKRIT GRANTHA No. 6

NAMAMALA

BY

MAHAKAVI DHANANJAYA

With the

BHASHYA

OF

AMARAKIRTI

AND

The Anekartha nighantu and Ekakshari Kosha



EDITED WITH NOTES

By

Pt. SHAMBHU NATHA TRIPATHI

Vyakaranacharya, Sapta Tirtha

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

First Edition }
100 Copies.

CHAITRA, VIR SAMVAT 2476
VIKRAMA SAMVAT 2007
APRIL 1950.

{ Price
Rs. 3/8

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In memory of his late benevolent mother

SHRI MOORTI DEVI

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

In this Granthamala critically edited, Jain agamic, Philosophical, Pauranic literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil Etc. will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholars and Jain literature of popular interest will also be published.

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

Prof. MAHENDRA KUMAR JAIN

NYAYACHARYA, JAIN-PRACHINA NYAYATIRTHA Etc.

Professor of Bauddha Darshana, Sanskrit Mahavidyalaya

Banaras Hindu University

SANSKRIT GRANTHA No. 6

Publisher

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY.

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

DURGAKUND ROAD, BANARAS CITY.

Founded in
Falgun Krishna 9,
Vir Sam. 2470

}

All Rights Reserved

{ Vikram Samvat 200
18th Feb. 1944.

FOREWORD

The Bharatiya Jnanapitha, Banaras, founded by Shri. Shantiprasad Jain to perpetuate the memory of his mother Murtidevi, has undertaken an ambitious plan of scholarly publications dealing with all aspects of Ancient Indian Culture with a very broad outlook and vision, and has already issued a few works in various languages such as Sanskrit, Prakrit, Pali etc. The undertaking has secured a learned scholar of proved ability in Pandit Mahendra Kumar, Nyayacharya, of the Sanskrit Mahavidyalaya of the Banaras Hindu University as a General Editor. The Jnanapitha has already published a few works and has a number of others in active preparation.

The present volume contains two small works of the famous lexicographer Dhananjaya. The first is called N A M A M A L A, a collection of synonyms, while the other is called A N E K A R T H A—N A M A M A L A, recording words with plurality of senses. The first work contains just 200 stanzas, while the other is smaller still. The most important feature of the first work is that it publishes for the first time the Bhashyas of AMARAKIRTI, who gives etymological explanations of each and every word in the work, and adds a few more synonymous words from his own observation. His Bhashyas follows the same methods as are used by Ksairasvamin in his famous commentary on AMARAKOSA. The entire work is very carefully edited with appropriate references to authorities by Pandit Shambhunath Tripathi, a Saptatirtha and also a Vyakaranacharya of repute. On reading his foot-notes, I often felt that Pandit Tripathi excels the Bhashyakara both in ingenuity and accuracy, nay, I would go further and say that his etymological explanations are happier still. I am sure the scholars will admire his work in the foot-notes.

The volume is further equipped with several indexes. They include naturally the word-indexes of both the works edited, but there are in addition index recording additional words from Amarakirti's Bhasya, a list of Yaugika words, a list of works and authors cited and a list of quotations cited in the work, all this being done by Pandit Mahadeva Chaturvedi, Vyakaranacharya. In fact the editorial part of the volume is as thorough as is humanly possible, and I have nothing but high admiration for the ability of Pandit Mahendra Kumar, the General Editor, in securing such a team of scholars to produce this volume.

Banaras Hindu University
6th September 1949.

}

P. L. VAIDYA, M. A.; D. Litt,
Mayurbhanj Professor and Head of The
Department of Sanskrit & Pali.

प्राक्कथन

(हिन्दी अनुवाद)

अपनी पूज्य माता मूर्तिदेवीजी की स्मृति के लिए साहु शान्तिप्रसाद जीर्जन द्वारा संस्थापित भारतीय ज्ञानपीठ बनारस ने विद्वत्तापूर्ण प्रकाशनों की एक उत्साहवर्धक योजना हाथ में ली है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के विशाल दृष्टि व कल्पना वाले सभी अंगों का प्रकाशन इस योजना के अन्तर्गत है तथा अब तक इस संस्था से संस्कृत, प्राकृत, पाली, आदि विभिन्न भाषाओं के कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस योजना के सम्पादन के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के सुयोग्य विद्वान् पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रधान सम्पादक के रूप में प्राप्त हैं। ज्ञानपीठ से अब तक कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कई एक प्रकाशन के लिए तैयार हैं।

वर्तमान ग्रन्थ में प्रसिद्ध कोशकार धनञ्जय की दो कृतियाँ सम्मिलित हैं। पहली नाममाला कहलाती है जिसमें पर्यायवाची शब्दों का संग्रह है और दूसरी अनेकार्थ नाममाला, जिसमें अनेक अर्थ-बोधक शब्दों का संग्रह है। पहली कृति में २०० श्लोक हैं जब कि दूसरी कृति उससे काफी छोटी है। प्रथम कृति के सम्बन्ध में उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर लिखा गया अमरकीर्ति का भाष्य पहले पहल प्रकाश में आ रहा है। अमरकीर्ति ने नाममाला के प्रत्येक शब्दों की व्युत्पत्ति देकर स्पष्टीकरण किया है और अपनी दृष्टि में आए कुछ और पर्यायवाची शब्दों को शामिल कर दिया है। उनके भाष्य की वही सरणि पद्धति है जो कि अमरकोश की प्रसिद्ध टीका में क्षीरस्वामी ने अपनायी है।

सम्पूर्ण कृति का सम्पादन ख्यातनामा पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ ने बड़ी सावधानी से तथा प्रमाणों का उपयुक्त उद्धरण देते हुए किया है। उनकी टिप्पणियों का अध्ययन करने से, मुझे अनेक बार प्रतीत हुआ है कि पण्डित त्रिपाठी—युक्ति और शुद्धि दोनों में कहीं-कहीं भाष्यकार को भी मात कर गये हैं, इतना ही नहीं, उनके व्युत्पत्ति संबंधी स्पष्टीकरण और भी अच्छे हैं। मुझे विश्वास है कि विद्वान् लोग टिप्पणी में त्रिपाठी जी के प्रयत्न की प्रशंसा करेंगे।

ग्रन्थ में अनेक अनुक्रमणिका लगा दी गई हैं। उनमें सम्पादित दोनों कृतियों की शब्द सूची का सम्मिलित होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु इसके अतिरिक्त अमरकीर्ति के भाष्य के अतिरिक्त शब्दों की सूची, योगिक शब्दों की सूची, उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ताओं की सूची तथा ग्रन्थ में उद्धृत वाक्यों की सूची भी सम्मिलित की गई हैं। यह सब पण्डित महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्यने किया है। सचमुच में ग्रन्थ का सम्पादकीय भाग उतना पूर्ण बना दिया गया है जितना मानवी शक्ति से संभव था। और इस सब के लिए मैं प्रधान सम्पादक पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की योग्यता की सराहना करता हूँ जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन में इस प्रकार की विद्वन्मण्डली को एकत्रित किया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
६ सितम्बर, १९४९

पी० एल० वैद्य
एम० ए० डी० लिट०
मयूरभंज प्रोफेसर तथा
अध्यक्ष, संस्कृत पाली विभाग।

“शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माविगच्छति”—ब्रह्मविन्दु०

शब्दब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त इस बात की सूचना देता है कि साधक को पहले शब्दशक्ति और उसकी मर्यादा तथा भाव का ज्ञान आवश्यक है। यदि उसे शब्द के वाच्यार्थ भावार्थ और तात्पर्यार्थ की प्रक्रिया का बोध नहीं है तो वह भटक सकता है। वस्तुतः शब्द भावों के ठोने का एक लंगड़ा वाहन है। जब तक संकेतग्रहण न हो तब तक उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। एक ही शब्द संकेतभेद से भिन्न भिन्न अर्थों का वाचक होता है। इसीलिए दर्शनशास्त्रों में एक पक्ष यह भी उपलब्ध होता है कि शब्द केवल वक्ता की विवक्षा को सूचित करते हैं, पदार्थ के वाचक नहीं हैं। ‘घट’ शब्द का संकेत वक्ता ने जिस रूप में जिस श्रोता को ग्रहण करा दिया है उसी अभिप्राय का द्योतन वह शब्द उस श्रोता को करा देगा। शब्द विद्यमान अर्थ को भी कहता है और अविद्यमान को। एक खरविषाण भी शब्द है जिसका अखंड वाच्य पदार्थ इस संसार में नहीं है और घट शब्द भी है जिसका वाच्य घड़ा मौजूद है। अतः शब्द के सम्बन्ध में यह निश्चय करना कि—यह शब्द अर्थवाची है और यह अनर्थवाची-टेड़ी खीर है। फिर भी शाब्दिकों ने यह प्रयत्न किया है शब्द के सार्थकत्व और अनर्थकत्व का विवेक हो जाय।

उसका मुख्य उपाय है शक्तिग्रह या संकेतग्रहण। जिस अर्थ में जिस शब्द का संकेतग्रहण होता है वह उस अर्थ का वाचक हो जाता है। यह संकेत कब किसने ग्रहण कराया इसका निर्णय कठिन है। ईश्वर को संकेत ग्रहण कराने के लिए घसीटना श्रद्धा की वस्तु है। इसका इतना ही अर्थ है कि वृद्धपरम्परा से शब्द संकेत का ग्रहण बराबर होता आया है और वह अनादि है। उसमें विशेष हेर फेर होकर भी सामान्यतया संकेत की परम्परा अनादि है। जब से यह जीव है तभी से शब्दसंकेत है। इस संकेतग्रहण के उपाय निम्न लिखित हैं:—

“शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारस्तच्च।

वाक्यस्य शेपाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥”

अर्थात्—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवरण और प्रसिद्ध शब्दके सान्निध्य से संकेत ग्रहण होता है। इनमें व्याकरण से यौगिक शब्दों का व्युत्पत्ति द्वारा संकेत ग्रहण हो भी जाय पर रूढ़ और योगरूढ़ शब्दों का संकेत ग्रहण व्याकरण से नहीं हो सकता। अन्ततः कोश ही एक ऐसा उपाय वचता है जिससे सभी प्रकार के शब्दों का संकेत-ग्रहण हो जाता है।

कोश अर्थात् खजाना या भंडार। व्याकरण से सिद्ध या वृद्धपरम्परा से प्रसिद्ध कैसे भी यौगिक रूढ़ या योगरूढ़ आदि शब्दों का अनेकार्थ के साथ संग्रह कोश में होता है। भाषा वही समृद्ध और जीवित समझी जाती है जिसका शब्द भंडार पर्याप्त हो और जिसमें व्यवहार और परमार्थ के लिए उपयोगी सभी शब्द विद्यमान हों। जिसमें अन्य भाषाओं के या विदेशी शब्दों के पचाने की या उन्हें स्व-स्वरूप करने की सामर्थ्य हो। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा उतनी समृद्ध नहीं बन सकी। इसका कारण यह रहा है कि इस भाषा पर एक वर्ग का प्रभुत्व रहा और उसने इसकी पाचन शक्ति को धर्म अधर्म के कल्पित बन्धन से जकड़ दिया था। उस वर्ग ने उस युग में प्रचलित अपभ्रंश और प्राकृत बोलियों का जो उस समय की जनबोलियां थीं उच्चारण करना पाप घोषित किया था। फिर भी संस्कृत की जो प्रकृति प्रत्यय उपसर्ग आदि के योग से शब्दोत्पादन शक्ति थी

उसीके कारण यह बन्धनबद्ध होकर भी विद्वद्भोग्य अवश्य बनी रही। संस्कृत को लोकभाषा का पद या सबकी बोली होने का सीमाग्र्य नहीं मिल सका। इस भाषा सम्बन्धी धर्माधर्म विचार ने संस्कृत के कोशागार को भी सीमित कर दिया।

भाषा के एकाधिकारियों ने तो यहां तक कह डाला है कि अपभ्रंश या अन्य लोकभाषा के शब्दों में वाचक शक्ति ही नहीं है। यष्टि का अपभ्रंश लट्ठी या लाठी है। ये लट्ठी या लाठी शब्द में वाचकशक्ति स्वीकार नहीं करना चाहते। इनका कहना है कि वाचकशक्ति तो 'यष्टि' शब्द में ही है। लट्ठी या लाठी शब्द सुनकर जो श्रोता को लाठी पदार्थ का ज्ञान होता है उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम ही श्रोता लाठी शब्द को सुनकर संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण करता है और फिर उस 'यष्टि' शब्द से पदार्थबोध होता है। अर्थात् ऐसे श्रोता को जिसने स्वप्न में भी 'यष्टि' शब्द नहीं सुना उसे भी लाठी शब्द से पदार्थ बोध के लिए संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण आवश्यक है।

इस भाषाधारित वर्णप्रभुत्व से संस्कृत भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन कर रह गई। पा० महाभाष्य के पस्पशा आह्निक में लिखा है कि—“तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छित वै, नापभाषित वै, म्लेच्छो ह वा एष अपशब्दः।” अर्थात् ब्राह्मण को न तो म्लेच्छ शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न अपभ्रंश का ही। अपशब्द म्लेच्छ है। अपशब्द का विवरण भी वहीं यह दिया है—“यदि तावच्छब्दोपदेशः क्रियते, गौरित्येतस्मिन्नुपदिष्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोऽपशब्दा इति।” अर्थात्—गौ शब्द है और गावो गैया आदि अपशब्द हैं।

यद्यपि भाषा को संस्कृत रखने के लिए व्याकरण का संस्कार आवश्यक है तभी वह एक अपने निश्चित रूप में रह सकती है, लिंग और वचन का अनुशासन भी इसीलिए आवश्यक होता है, परन्तु उसके उच्चारण में किसी जाति विशेष का या वर्ग विशेष का अधिकार मानने से उसकी व्यापकता तो रुक ही जाती है। नाटकों में स्त्री, शूद्रों तथा दासों से प्राकृत भाषा का बोलवाया जाना उक्त रूढ़ि का ही साक्षी है।

इतना ही नहीं, धर्मक्षेत्र में साधु शब्द अर्थात् संस्कृत शब्द का उच्चारण ही पुण्य माना गया। इसका यह सहज परिणाम था कि धर्म का ठेका भी भाषा प्रभुत्व के द्वारा एक वर्ग विशेष को मिला। हुआ भी यही। धर्म का अधिकार और उससे आर्थिक सम्बन्ध एक वर्ग का हो गया।

इस सम्बन्ध में मौलिक क्रान्ति महाश्रमण महावीर और बुद्ध ने की। उनने भाषा के इस कल्पित बन्धन को तोड़ कर जनभाषा में धर्म का उपदेश दिया और स्त्री शूद्र तथा पामर से पामर व्यक्तियों के लिए धर्म का क्षेत्र खोला। धर्म के उच्च पद के लिए जाति का कोई बन्धन इनने स्वीकार नहीं किया। इस भाषाक्रान्ति से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। यह नहीं है कि प्राकृत भाषाएँ व्याकरण और लिंगानुशासन से मुक्त हों। उनके अपने व्याकरण हैं, अपने नियम हैं, जिनके अनुसार वे पल्लवित पुष्पित और फलित होती रही हैं।

महावीर और बुद्ध के काल से लेकर ईसा की तीसरी सदी तक प्राकृत भाषाओं की गति मिलती रही। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं। शासनादेश प्राकृत भाषा में चलते रहे हैं। पुनः संस्कृत युग में इन भाषाओं की गति मन्द पड़ी। इस युग में जैन और बौद्ध आचार्यों ने भी ग्रन्थरचना संस्कृत में ही की। यही कारण है कि दोनों के विपुल साहित्य से संस्कृत का कोशागार भरा हुआ है। दार्शनिक क्षेत्र में उथल पुथल तो नागार्जुन दिग्नाग समन्तभद्र सिद्धसेन अकलंक आदि के ग्रन्थों से ही मची। तात्पर्य यह कि श्रमण परम्परा ने मध्यकाल में संस्कृत भाषा के विकास में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

नाममाला कोश का एक सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महाकवि धनञ्जय ने २०० श्लोकों में ही संस्कृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इनकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम, 'मनुष्य' के नामों के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से राजा के नाम, 'वृक्ष' के नामों के आगे 'चर' शब्द जोड़ने पर बन्दर के नामों का बन जाना आदि।

इसपर अमरकोष की विरचित भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्याकरणसिद्ध व्युत्पत्ति सूत्रनिर्देश पूर्वक बताई गई है। उणादि से सिद्ध हो या अन्य रीति से पर कोई भी शब्द निर्व्युत्पत्ति नहीं रह पाया है। इन व्युत्पत्तियों की प्रामाणिकता के लिए महापुराण, पद्मनन्दि शास्त्र, यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामृत, द्विसन्धानकाव्य, बृहत्प्रतिक्रमण भाष्य, महाभारत, सूक्तिमुक्तावली, शब्दभेद, अनेकार्थध्वनिमञ्जरी, अमरसिंह भाष्य, आशाधर महाभिषेक, नीतिसार, शाश्वत, हैमीनाममाला आदि ग्रन्थों तथा यशःकोष, अमरसिंह, आशाधार, इन्द्रनन्दि, क्षीरस्वामी, पद्मनन्दि, श्रीभोज, हलायुध आदि ग्रन्थकारों को नाम निर्देशपूर्वक प्रमाणकोटि में उपस्थित किया है। अनेक व्युत्पत्तियाँ तो अमरकोष की कल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। यथा—

“म्रियन्ते क्षुद्रजन्तवोऽस्य स्पर्शेनेति मरुत्” अर्थात् जिसके स्पर्श से क्षुद्र जन्तु मर जाय वह मरुत् है।

“न नन्दति भ्रातृजाया यस्यां सत्यां सा ननान्दा” जिसकी मौजूदगी में भौजाई खुश न हो वह ननांदा-ननद है।

“यशानां पशुकारणलक्षणानामरिः यज्ञारिः” अर्थात् पशुयज्ञ का विरोधी महादेव हैं। आदि।

इसके साथ ही एक अनेकार्थ निघण्टु भी मुद्रित किया गया है। इसके अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका लेख है :—“इति महाकविधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णं अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीय-परिच्छेदः।” इसकी एक मात्र अशुद्धतम प्रति पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार अधिष्ठाता वीरसेवा-मन्दिर से प्राप्त हुई थी। रचना शैली आदि से यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं धनञ्जयकी कृति है, यद्यपि पुष्पिका वाक्य में स्पष्ट रूपसे धनञ्जय का उल्लेख है। इसके साथ ही एक अज्ञातकर्तृक एकाक्षरी कोष का भी मुद्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भी वीरसेवा-मन्दिर से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत संस्करण—

अमरकोषकृत भाष्य की एकमात्र अशुद्ध प्रति ऐलक पद्मालाल सरस्वती भवन झालरा-पाटन से प्राप्त हुई थी। इसीके आधार से इसका सम्पादन पं० शम्भुनाथजी त्रिपाठी ने किया है। संस्करण में जो अनेक परिशिष्ट हैं वे सब पं० महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने तैयार किये हैं। टिप्पणियाँ पं० शम्भुनाथ जी त्रिपाठी ने बड़े परिश्रम से लिखी हैं। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि उनके सर्वतोमुखी अगाध पाण्डित्य का परिचय टिप्पणों में पद पद पर मिलता है।

ग्रन्थकार

[महाकवि धनञ्जय]

नाममाला के कर्ता महाकवि धनञ्जय हैं। इन्होंने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में अपने समय आदि के बारे में निर्देश नहीं किया है। ये गृहस्थ थे। द्विसन्धानकाव्य के अन्तिम श्लोक की व्याख्या में उसके टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। इनकी ख्याति 'द्विसन्धानकवि' के नाम से थी। नाममाला के अन्त में पाया जानेवाला यह श्लोक स्वयं इसका साक्षी है :—

“प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।

द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपदिचमम् ॥”

अर्थात्—अकलङ्कदेव का प्रमाण शास्त्र, पूज्यपाद का लक्षण—व्याकरण शास्त्र और द्विसन्धानकवि का द्विसन्धानकाव्य ये तीनों अपूर्व रत्नत्रय हैं। यह श्लोक नाममाला के भाष्यकार अमरकीर्ति के सामने था, उन्होंने इसकी व्याख्या भी की है। इसमें इनका उप-नाम 'द्विसन्धानकवि' सूचित किया गया है। ठीक भी है; क्योंकि महाकवि धनञ्जय की सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिणी कृति द्विसन्धानकाव्य ही है। वादिराज सूरि ने पार्श्वनाथ चरित के प्रारंभ में द्विसन्धान काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है :—

“अनेकभेदसन्धानाः खनन्तो हृदये मुहुः।

वाणा धनञ्जयोन्मुक्ताः कर्णस्येव प्रियाः कथम् ॥”

अर्थात् धनञ्जय के द्वारा कहे गए अनेक सन्धान-अर्थभेद वाले और हृदयस्पर्शी वचन कानों की ही प्रिय कैसे लगेंगे जैसे कि अर्जुन के द्वारा छोड़े जाने वाले अनेक लक्ष्यों के भेदक मर्मभेदी वाण कर्ण को प्रिय नहीं लगते ?

द्विसन्धान काव्य अपने समय में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख धारा-धीश भोजराज के समकालीन आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४०२) में किया है।

जल्हण (१२वीं सदी) विरचित सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के नाम से धनञ्जय की प्रशंसा में निम्नलिखित पद्य उद्धृत है :—

“द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनञ्जयः।

यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः ॥”

इस श्लोक में राजशेखर ने धनञ्जय के द्विसन्धानकाव्य का मनोमुग्धकर सरणि से उल्लेख किया है।

धनञ्जय कवि के द्वारा एक विषापहार स्तोत्र भी बनाया गया है। यह अपने प्रसाद ओज और गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह स्तोत्र कवि ने अपने सर्पदण्ड पुत्र का विष उतारने के लिए बनाया था।

समयविचार—

इनके समय निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रमाण हैं :—

(१) प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता प्रभाचन्द्र (ई० ११वीं सदी) ने इनके द्विसन्धान-काव्य का उल्लेख किया है अतः ये ११वीं सदी के घाद के विद्वान् तो नहीं हैं।

- (२) इसी तरह वादिराज सूरि (सन् १०३५) ने पार्श्वनाथ चरित में धनञ्जय आर-
द्विसन्धान का निर्देश किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के नहीं हैं ।
- (३) जल्हण (१२वीं सदी) ने राजशेखर के नाम से सूक्तिमूक्तावली में जो पद्य उद्धृत
किया है, वह राजशेखर काव्यमीमांसाकार राजशेखर हैं। इनका उल्लेख सोमदेव
(ई० ९६०) के यशस्तिलक चम्पू में पाया जाता है अतः राजशेखर का समय ई०
१०वीं सदी सुनिश्चित है। राजशेखरके द्वारा प्रशंसित होने के कारण धनञ्जय का समय
१०वीं सदी के बाद का नहीं हो सकता।

- (४) डॉ० हीरालालजी ने षट्छंदागम प्रथम भाग की प्रस्तावना (पृ० ६२) में यह सूचित
किया है कि जिनसेन के गुरु वीरसेन स्वामी ने धवला टीका (पृ० ३८७) में अने-
कार्य नाममाला का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया है:—

“हेतावेवं प्रकाराद्यैः व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः ॥”

यह श्लोक अनेकार्थ नाममाला का है। धवलाटीका वि० सं० ८७३ सन् ८१६ में
समाप्त हुई थी अतः धनञ्जय का समय ९वीं सदी के बाद नहीं हो सकता।

- (५) धनञ्जय ने अकलंक देव का उल्लेख ‘प्रमाणमकलङ्कस्य’ श्लोक में किया है। अकलंक
का समय ई० ७वीं सदी निश्चित है, अतः धनञ्जय ७वीं सदी से पूर्व के नहीं हो सकते।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के लेखकद्वय ने धनञ्जय का समय ई० १२वां शतक
का मध्य निर्धारित किया है। (पृ० १७४) उनने अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ० के० बी०
पाठक महाशय का यह मत भी उद्धृत किया है कि—“धनञ्जय ने द्विसन्धान महाकाव्य की रचना
ई० ११२३ और ११४० के मध्य में की है”। पर उपरोक्त प्रमाणों के आधार से धनञ्जय का समय
ई० ८वीं सदी का अन्त और नवीं का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। जल्हण की सूक्तिमूक्तावली में जो ई०
१२वीं सदी की रचना है, राजशेखर के नाम से उद्धृत ‘द्विसन्धाने निपुणतां’ श्लोक काव्यमीमांसा-
कार राजशेखर का ही हो सकता है, न कि प्रबन्धकोश के कर्ता राजशेखर का। संस्कृत साहित्य
के इतिहास के लेखकद्वय यहाँ भ्रान्ति कर बैठे हैं, वे स्वयं जल्हण को १२वीं सदी का विद्वान्
लिखकर भी उसमें उद्धृत राजशेखर को १४वीं सदी का जैन राजशेखर बताते हैं!

अतः धनञ्जय का समय उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार से ई० ८वीं का उत्तर भाग और नवीं
का पूर्व भाग प्रमाणित होता है।

भाष्यकार अमरकीर्ति—

महापण्डित अमरकीर्ति ने नाममाला के भाष्य के अन्त में यह पुष्पिका वाक्य लिखा है:—
“इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन श्री ऐन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृतायां धनञ्जयनाम-
मालायां प्रथमकाण्डं व्याख्यातम्” इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अमरकीर्ति ‘त्रैविद्य’ उपाधि से
विभूषित थे और वे सेन्द्रवंश (सेनवंश) में उत्पन्न हुए थे।

इन्होंने अपने को ‘शब्दवेधा’ उपाधि से अलङ्कृत किया है।

मंगल श्लोकों में पूज्यपाद अकलङ्क विद्यानन्दि और समन्तभद्र के साथ ही साथ एक कल्याण-

१. इसी के आधार से कल्पद्रुकोश की प्रस्तावना (P. XXXii) में श्री रामावतार शर्मा ने भी
भी धनञ्जय का समय १२वीं सदी लिखा है।

कीर्ति को भी नमस्कार किया है। इन्होंने ग्रन्थ के बीच में जहाँ आवश्यकता भी नहीं है वहाँ भी अपना नाम देने में संकोच नहीं किया है। कई स्थानों पर धनञ्जय के श्लोकों की उत्थानिका में भी "सम्प्रति मनुष्यवर्ग आरभ्यते अमरकीर्तिना" (पृ० १३) आदि लिखा है। जो स्पष्टतः भ्रम उत्पन्न करता है। एक जगह तो धनञ्जय के इस श्लोकांश की व्याख्या करते हुए स्वयं अपना ही नाम लिख दिया है—“वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना। अधुना इदानीं वारिधिर्वर्ण्यते कथ्यते। केन भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना। स्पष्टतया यहाँ 'केन' का उत्तर 'धनञ्जयेन' होना चाहिए था।

अमरकीर्ति नाम के तीन विद्वानों का पता लगता है:—

(१) 'छक्कम्मोवएस' आदि ग्रन्थों के रचयिता अमरकीर्ति^१। इन्होंने वि० सं० १२४७ भादों सुदी १४ के दिन छक्कम्मोवएस ग्रन्थ समाप्त किया था। अर्थात् ये ईसवीय १२ वीं सदी के अन्तिम भाग और तेरहवीं के प्रारम्भ में विद्यमान थे। ये अमितगति आचार्य की परम्परा में हुए हैं। इनकी गुरु परम्परा यह है:—अमितगति, शान्तिपेण, अमरसेन, श्रीपेण, चन्द्रकीर्ति और चन्द्रकीर्ति के शिष्य अमरकीर्ति।

(२) वर्धमान के प्रगुरु अमरकीर्ति। इनकी परम्परा इस प्रकार है^२।...देवेन्द्र विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति,....धर्मभूषण वर्धमान। वर्धमान ने शक संवत् १२९५ वैशाख सुदी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निपट्या बनवाई थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक १२५० के आसपास सिद्ध होता है। ये ईसवीय १४वीं सदी के विद्वान् थे। इनके इस समय का समर्थन शक १३०७ में उत्कीर्ण विजयनगर के शिलालेख से भी होता है।

(३) दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति। इनके सम्बन्ध में दशभक्त्यादिशास्त्र में लिखा है:—

“जीयादमरकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणिः।

विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविदः॥

अमरकीर्तिमुनिर्विमलाशयः कुसुमचापमदाचलवज्रभृत्।

जिनमतापहृतारितमाश्च यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रयः॥”

अर्थात्—शास्त्रकोविद विमलाशय कामजेता निर्मलगुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमतके प्रकाशक अमरकीर्ति भट्टारक विशालकीर्ति के सधर्मा थे।

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४०३ सन् १४८१ में हुआ था। यह उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र में विद्यमान है^३। अतः उनके पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति का समय करीब सन् १४५० अर्थात् ईसवीय १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है^४। दशभक्त्यादि शास्त्र का समाप्तिकाल १४०४ शक अर्थात् १४८२ ई० है।

१. देखो डा० हीरालाल का 'अमरकीर्तिगणि और उनका पट्कर्मोपदेश' लेख। जैन सि० भास्कर भाग २ अंक ३।

२. जैन शिलालेख संग्रहका १११वाँ शिलालेख।

३. प्रशस्तिग्रंथ के सम्पादक पं० के० भुजवली शास्त्री ने 'शाके वह्निखराविचन्द्रकलिते संवत्सरे' का अर्थ शक १४६३ किया है। जब कि दशभक्त्यादि शास्त्र की समाप्ति सूचक 'शाके वेदखराविचन्द्रकलिते' का अर्थ १४०४ शक किया है। दोनों जगह ख का शून्य लेना चाहिये। यदि दशभक्त्यादि शास्त्र शक १४०४ में समाप्त हुआ है तो उसमें शक १४६३ में हुई विद्यानन्द की मृत्यु की चर्चा कैसे आ सकती है? ४. देखो प्रशस्तिग्रंथ, पृ० १२८।

इन तीन अमरकीर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता छक्कम्भोवएस के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि उनका काल वि० १२४७ के आसपास है, जब कि नाममाला के भाष्य (पृ० ६२) में आशाधर के महाभिषेक से उद्धरण दिया है। आशाधर ने अपना अनगारधर्मामृत वि० १३०० में समाप्त किया था। अतः प्रथम अमरकीर्ति इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हो सकते।

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्यकर्ता अमरकीर्ति वि० १३०० अर्थात् ईसवीय १२४३ तेरहवीं सदी के पहिले के विद्वान् तो नहीं हैं। इन्होंने भाष्य में भोज (११वीं सदी) इन्द्रनन्दि (१०वीं सदी) पद्मनन्दि (१२वीं सदी) सोमप्रभ (१२वीं सदी) हेमचन्द्र (१२-१३वीं सदी) आदि के ग्रन्थों से भी नामोल्लेख पूर्वक अवतरण लिए हैं। शेष दो अमरकीर्ति पृथक् ध्वित तो हैं ही। द्वितीय अमरकीर्ति की प्रशंसा में विजयपुर के शिलालेख में निम्नलिखित पद्य मिलते हैं—

“शिष्यस्तस्य गुरोरासीदनर्गलतपोनिधिः।

श्रीमानमरकीर्त्यार्यो देशिकाग्रेसरः शमी॥

निजपक्षपटकवाटं घटयित्वानलरोधतो हृदये।

अविचलितबोधदीपं तममरकीर्तिं भजे तमोहरणम्॥”

अर्थात्—अमरकीर्ति महान् तपस्वी शान्त और लम्बी समाधि लगानेवाले योगी थे। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अमरकीर्ति शास्त्रकार की अपेक्षा योगी और तपस्वी ही विशेष रूप से थे। नाममाला भाष्य में जिस प्रकार की यशोलिप्ता टपकती है वह एक योगी और तपस्वी में नहीं हो सकती। अतः मेरे विचार से द्वितीय अमरकीर्ति भी प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं हैं।

तृतीय अमरकीर्ति के वर्णन में ‘शास्त्रकोविद’ विशेषण उनके पाण्डित्य का निर्वेश कर रहा है। अतः हमारे प्रकृत ग्रन्थकार दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति हैं। ये सन् १४५० के आसपास अर्थात् पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् थे। इस समय का साधक एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि इनने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। कल्याणकीर्ति का एक जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ मिलता है।^१ उसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य थे। कल्याणकीर्ति ने जेठ सुदी ५ शक संवत् १३५० में जिनयज्ञफलोदय समाप्त किया था। अर्थात् सन् १४२८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था। यदि यही कल्याणकीर्ति अमरकीर्ति के द्वारा स्मृत हुए हैं, तो मानना होगा कि अमरकीर्ति पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् हैं।

आभार—

इस ग्रन्थ के सम्पादक पं० शम्भुनाथजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ अनेक शास्त्रों के गंभीर विद्वान् हैं। वर्षों तक उनने जैन विद्यालय इन्दौर में साहित्य और व्याकरण का अध्यापन कराया है। वे जैन परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। उनके जैसे अगाध ज्ञानी निरहङ्कारी और विद्याजीवी विद्वान् विरल हैं। उनके तलस्पर्शी गंभीर पाण्डित्य का निदर्शक यह संस्करण है। ज्ञानपीठ इस ग्रन्थ के सम्पादक के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित है।

डॉ० पी० एल० वैद्य ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। पं० हर-गोविन्दजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने अनेकार्थ निघण्टु का सम्पादन किया है। पं० महादेव चतुर्वेदी ने सम्पादन परिशिष्टनिर्माण और प्रूफ संशोधन में पूरा योग दिया है। पं० ब्रजनन्दनजी मिश्र व्याकरणाचार्य ने भी प्रेस कापी आदि में पूरा सहयोग दिया है। गुलाबचन्द्रजी व्याकरणाचार्य एम० ए०

ने प्राक्कथन का हिन्दी अनुवाद किया है। पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेकार्यनिघण्टु और एकाक्षरी कोश की प्रति भेजी। पं० श्रीनिवासजी शास्त्री ने भाष्य की प्रति भेज कर अनुगृहीत किया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्ष सी० रमा रानी जी की संस्कृतिनिष्ठा, उदार दृष्टि, ज्ञानानुराग और सौजन्य इस संस्था के जीवन हैं। अपनी स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के संस्कृत विभाग का यह छठवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस भद्र दम्पति से ऐसे ही अनेक लोकोदयकारी सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

इस संस्था के कर्मनिष्ठ मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की कार्यदृष्टि, सत्प्रेरणा और प्रयत्न से इस संस्था का इस रूप में सञ्चालन हो रहा है। मैं इन सब का आभार मानता हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
पोष शुक्ल १५
वीर सं० २४७६
३।१।५०

}

—महेन्द्र कुमार जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन-व्यय

४००) कागज २० रोम २२×२९/३२ पौण्ड
९७५) छपाई पृष्ठ १९६ दर ५०) प्रति फार्म
२००) जिल्द बंधाई
६०) कवर छपाई
४०) कवर कागज

५४५।।) कार्यालय व्यवस्था प्रूफ संशोधन आदि
४२६=) सम्पादन
५००) भेंट आलोचना, विज्ञापन आदि
७८७।।) कमीशन

कुल लागत ३९३४।=)

१००० प्रति छपी। लागत एक प्रति ३।।।=)

मूल्य ३।।)

सभाष्या नाममाला

अनेकार्थनिघण्टुः एकाक्षरी कोशश्च

महाकविधनञ्जयप्रणीता

नाममाला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

धीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तबोधं विद्यादिनन्दनमिनं च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिममलं ग्रणिपत्य वीरं भाष्यं करोमि परमं बुधबुद्धिसिद्धयै ॥ १ ॥

सरस्वत्याः प्रसादेन रच्यतेऽमरकीर्तिना ।

भाष्यं धनञ्जयस्येदं बालानां धीविबुद्धये ॥ २ ॥

यद्यपि धनञ्जयो (येनो) क्तो भावो वक्तुं न शक्यते ।

तथाऽप्यहं प्रवक्ष्यामि वाग्देव्याश्च प्रसादतः ॥ ३ ॥

पूर्वाचार्यकृता प्रायो व्युत्पत्तिरुपदिश्यते ।

क्वापि क्वापि स्वबुद्ध्याऽपि क्षम्यतामत्र मे बुधैः ॥ ४ ॥

शिष्टासमाचार (ष्टाचार) परिपालनाय नमस्कारसमुद्गतधर्मद्वारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थं
च धनञ्जयबुधः इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

तन्नमामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।

उन्मूलयत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः—

“णमो^१ अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं । णमो उवञ्जायाणं णमो लोए सव्वसा-
हूणं ॥” ईदृग्विधम् । नमामि नमस्करोमि । किंविशिष्टम् ? अवाङ्मनसगोचरम् वाक् च वाणी मनसं^२ १५
च चित्तं वाङ्मनसे तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचरं न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अलक्ष्यस्वरूपत्वात् ।
तथा चोक्तं शब्दभेदे—

“नभन्तु^३ नभसा सार्धं मनसं मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपन्तु तपसा सह ॥”

तथा च पद्मनन्दिशास्त्रे—

“स्वानुभूत्यै भवेद् गम्यं रम्यं यच्चात्मवेदिनाम् । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥” २०

१ एतत्पञ्चनमस्कारात्मकमन्त्रप्रतिपाद्यमहंस्तिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुरूपमत्र ज्योतिः । २ नमं तु
नभसा सार्धमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनसशब्दः साधुः । ३ साम्प्रतं निर्णयसागरयन्त्रा-
लयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्यं किञ्चिदन्यथोपलब्धम् । तदित्यम्—

कुमुदं कुमुदा चापि योषितस्याद् योषिता सह । तमस्तु तमसा प्रोक्तं रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥ ३४ ॥
अत्र कालप्रकर्षाद्यपि मनसशब्दः प्रप्रष्टस्तथापि तदानीन्तनमूलपुस्तके तत्तथैवासीदिति ध्रुवम् ।

यत् अविद्यां पापविद्याम्, चाटुकारसूत्रम्, वैद्यकसूत्रम्, चित्रकर्मादिसूत्रम्, नृत्यसूत्रम्, गन्धर्व-
सूत्रम्, पटहसूत्रम्, अगदसूत्रम्, यौद्धसूत्रम्, मद्यसूत्रम्, द्यूतसूत्रम्, राजनीतिसूत्रम्, चतुरङ्गसूत्रञ्च । गज-
तुरगपुरुषस्त्रीछत्रगोखड्गदण्डाञ्जनानां [च विद्या पापविद्या] कथ्यते, ताम् उन्मूलयति मूलादुच्छेदयति ।
यत्^१ विद्यामपि उन्मीलयति स्थापयतीत्यर्थः ।

५

द्वयं द्वितयमुभयं यमलं युगलं युगम् ।

युगं द्वन्द्वं यमं द्वैतं पादयोः पातु जैनयोः ॥२॥

दश युगे । द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वयम्, “द्वित्रिम्यामयड् वा^२ ।” द्वितयम् द्वौ अवयवौ
यस्य तद् द्वितयम् । उभयम् उभौ अवयवौ यस्य “द्वित्रिम्यामयट्” इत्यनुवर्तमाने “उभाम्यां नित्यम्^३”
इत्ययट् न तु तयट् । यमलं यमं लातीति यमलम् । युगलं युगं लातीति युगलम् । युगलं युगलकं च । युगं
१० युज्यते धर्मवृत्त्या युगम्^४ । समाश्रयत्यन्यं युगम् । युगम् युनक्ति द्वितीयेन युज्यते श्लिष्यते युगम् ।
“युजिरुचितिजां धमक्^५ ।” द्वन्द्वम् द्वौ द्वावित्यर्थः द्वन्द्वम् । यच्छ्रुत्युपरमत्येकत्वात् यमम् । द्वाभ्यामितं
द्वैतम्, द्वैतमेव द्वैतम् । पातु रक्षतु ।

ऋषिर्मुनिर्यतिर्भिक्षुस्तापसः संशितो व्रती ।

तपस्वी संयमी योगी वर्णी साधुश्च पातु वः ॥३॥

१५

द्वादश मुनौ । ऋषिर्भिक्षुश्च कालत्रयं जानातीति ऋषिः । “रिपिशुचिगृन्नाभ्युपधात्किः^६” । तथा
च यशस्तिलके^७—

“रेपणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः ।”

यतिः यो देहमात्रारामः सम्यग्विद्यानौलाभेन तृष्णासरित्तरणाय योगाय शुक्लध्यानधर्म-
ध्यानाय यतते स यतिः^८ । तथा च यशस्तिलके^७—

“यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवैत् ।”

२०

मुनिः, तपःप्रभावात् सर्वमन्यते मुनिः । “मन्यतेः किरत उच्च^९ ।” तथा च—

“मान्यत्वादाप्तविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः ।”

भिक्षुः भिक्षते इत्येवंशीलो भिक्षुः । “सन्नन्ताशंसिभिन्नामुः^{१०} ।” तापसः, तपो विद्यते यस्य
स तापसः । “अण्^{११} च ।” तपःसहस्राभ्यां न केवलमस्यै विनीनौ अण् च, वृद्धिः । संशितः संशायते
२५ स्म संशितः । “इत्येतेव्रते नित्यम् ।” व्यवस्थितविभाषया शो तनूकरणे इत्यस्य व्रतेऽर्थे नित्यमिकारो
भवति, विकल्पो नास्ति । व्रती, “हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्ब्रतम्^{१२} ।” ब्रतं विद्यतेऽस्य
व्रती । तपस्वी “अनशनावमौर्दर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं
तपः^{१३} ।” “प्रायश्चित्तविनयवैराग्यवृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।”^{१४} तपश्च विद्यते यस्येति
तपस्वी । संयमी, संयमनं संयमः इन्द्रियप्राणलक्षणः । संयमो विद्यते यस्येति संयमी । योगी, * युजिर्^{१५}

१. यत् इत्यस्य पूर्वम् ‘तथा’ इति पदं योज्यम् । २. हे० श० ७।१।१५। ३. एतत्सूत्रं हे०
श० नोपलब्धम् । परंतु द्वित्रिम्यामयड्वा इत्यनुवर्तमाने उभाम्यां नित्यमिति टीकोक्तवचनात्तत्त्वमेवै-
तत्सूत्रमिति निश्चीयते । ४. कालवाचकयुगपरतयेयं व्युत्पत्तिः, प्रकृतार्थे तु युगं लातीत्येव । ५. का० उ०
१।५७ इति धमक् प्रत्ययः कुत्वं च । ६. गृन्नाभ्युपधात्किः का० उ० ३।१५ इति किप्र० । ७. यशस्ति०
आ० ८. क० ४४ । ८. यती प्रयत्ने । इः सर्वधातुभ्यः का० उ० ३।१४ इप्र० । ९. यश० आ० ८ कल्प
४४ । १०. का० उ० ४।३ इति किप्र० । मनु अवबोधने । ११. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १२. का०
सू० ४।४।५१ । १३. पा० सू० ५।२।१०३ । १४. व्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति पातञ्जलभाष्यम् ७।४।४१ ।
१५. त० सू० ७।१ । १६ त० सू० । १७ त० सू० । १८. *एवञ्चिह्नितांशस्थाने युजिर् योगे रूपादौ
परस्मैपदी युज् समाधौ वा दिवादौ आत्मनेपदी इत्येवम्पाठः सुगमः ।

योगे, युज समाधौ पर० युज् समाधौ वा० दि० । आत्म० युज् रुधादौ । पर० युज समाधौ वा दि० ।
आत्म० * युनक्ति युज्यते वा इत्येवंशीलः योगी । युजभजेत्यादिना^१ विनिष् । वर्णी, वर्णो ब्रह्मचर्यमस्त्यस्य
वर्णी । साधुः, शिष्याणां दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुखः सकलकर्मोन्मूलनसमर्थो मोक्षमार्गाऽनुष्ठानपरो यः
स साधुः । सिद्धिं साधयति साधययिष्यति वा साधुः ।

“स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् ।

कर्मोन्मूलनशक्तो [धर्म] ध्यानः स चात्र साधुर्ज्ञेयः ॥”

“^२कृपापाजिमीस्वदिसाध्यशूद्रपणिजनिचरिचटिभ्य उण्” । वो युष्मान् पातु रक्षतु ।

दीक्षितं मौण्ड्यं शिष्यं च तमन्तेवासिनं विदुः ।

चत्वारः शिष्ये । [दीक्षितम्] दीक्षा संजाताऽस्येति । ^३तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थ इतच् ।

मौण्ड्यम् मुण्डे मस्तके भवं वपनादिकं मौण्ड्यम्^४ । शिष्यम्, शिष्यते व्युत्पाद्यते गुरुणा शिष्यः । १०

“वृश्दृजुषीण्शासुस्तुगुहां क्यप्^५ ।” गुरोरन्ते वसत्यन्तेवासी तम् । विदुः कथयन्ति ।

कृतान्ताऽगमसिद्धान्ताः

त्रयः सिद्धान्ते । लोकानां सन्देहस्य कृतः अन्तो विनाशो येन सः कृतान्तः । आगच्छतीत्यागमः,
आगमनमागमो वा । सिद्धान्तो [सिद्धोऽन्तो] निश्चयो यस्य स सिद्धान्तः, समयोऽपि । सर्वे पुंसि ।

ग्रन्थः शास्त्रमतः परम् ॥ ४ ॥

१५

ग्रन्थाति^६ रचयतीति ग्रन्थः । शास्त्रि शास्त्रम् ।

भूमिर्भूः पृथिवी पृथ्वी गह्वरी मेदिनी मही ।

धरा वसुमती धात्री क्षमा विश्वम्भराऽवनिः ॥ ५ ॥

वसुधा धरणी क्षोणी क्षमा धरित्री क्षितिश्च कुः ।

कुम्भिनीलोर्वरा चोर्वी जगती गौर्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

२०

सप्तविंशतिर्भूमौ । भवति सर्वमत्र भूमिः । “ऊर्मिभूमिरश्मयः^७ ।” भवत्यस्मात्सर्वं भूः ।
रेफान्तञ्चाव्ययम् । प्रयते पृथिवी पृथ्वी च । गुह्यतीति^८ गह्वरी । रुहरीति पाठः । न्याये मेघति स्निह्यति
मधुकैटभमेदोयोगाद् वा मेदिनी । महते मही । मह पूजायाम् । धरत्यगान् धरा । वस्वस्त्यस्याः
वसुमती । दधाति संगृह्णाति भेषजार्थं वैद्यो यामिति धात्री । “कर्मणि^९ घेटः घृन् ।” केचिद्धातेरपीच्छन्ति ।
क्षमणं क्षमा^{१०} । “वाऽनुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ्^{११} ।” विश्वं विभर्ति विश्वम्भरा । “नाम्नि तृभृजिधारि- २५
तपिदमिसहां संज्ञायाम्^{१२} ।” खप्रत्ययः । भूतानवति अवनिः । क्षियामीः । ^{१३}“ऋतृसृष्टृजृधर्म्यश्यविवृति-
ग्रहिभ्योऽनिः ।” अनिः प्रत्ययः । वसु दधातीति वसुधा । धरति पर्वतानिति धरणिः । “धृजोऽनिः^{१४} ।”
क्षीति क्षुपम् क्षोणिः । क्षियामीः । क्षोणी । “टु क्षु रु कु शब्दे” । क्षमते भारं क्षमा क्षमा च । धरति
सर्वं धरित्री । क्षयति क्षयं प्राप्नोति प्रलयकाले क्षितिः । कायति कूयते वा कुः । कुम्भो रत्नोत्पत्तिद्वीपो-
ऽस्त्यस्याः कुम्भिनी । एति जन इमाम् इला । “इरासुराकपिलिकादिदर्शनाल्लत्वम् ।” ^{१५}शूद्रादयः— ३०

१. युजभजभुजद्विषट्ठुहृद्वाङ्कीडत्यजानुरुषाड्यमाङ्माङ्ग्यसरञ्जाऽभ्याङ्गनां च इति पूर्णं का०
सू० ४।४।२२। २. का० उ० १।१। ३. तदस्य संजातं तारकादेरितच् इति का० रू० पू० सू० ५०८ ।
४. मौण्ड्यमस्यास्तीत्यपि विग्रहे निवेश्यम् । अर्श आदिभ्योऽच् । ५. का० सू० ४।२।२३ । ६. ग्रथ्यते
रच्यते इति कर्मणि विग्रहो योग्यः । ७. का० उ० ३।३२ इति भवतेर्मिप्र० क्त्वं च । ८. गूह्यतीति गह्वरी
रुहरी इत्यपि पाठ इति युक्तम् । ९. का० सू० ४।४।६० इति घृन् । १०. वस्तुतस्तु क्षमते इति क्षमा,
पचादित्वादच्, टाप् । ११. का० सू० ४।५।८२ । १२. का० सू० ४।३।४४ । १३. का० उ० २।४३ ।
१४. का० उ० २।४३ ऋतृसृष्टृज० इत्यादिसूत्रम् । १५. का० उ० २।१७ ।

“शृङ्गोऽथवज्रविप्रभद्रगौरमेरीराः” एते रक्प्रत्ययान्ता निपत्यन्ते । क्लेशमुर्वति दिनस्ति फलेन उर्वरा । उर्वी । उर्वीं शुर्वीं दुर्वीं धुर्वीं हिंसार्याः । सर्वमूर्वति व्याप्नोति उर्विः । स्त्रियामीः उर्वी । राजान्तरं गच्छति जगतिः । स्त्रियामीः, जगती । पूजां गच्छति गौः । स्त्रीनोः । गमेडोः । “गोरी धुटि” इत्यौत्वम् । धृञ् धारणे । धृः । धरति धरते । इञ् । अस्य वृद्धिः । धारि जातम् । वसु वसूनि वा धारयति वसुन्धरा । नाम्नि ५ तृभृ०^२ खप्रत्ययः । कारितस्या०^३ कारितलोपः । अभिधानात् ह्रस्वः । “ह्रस्वा^४रूपोर्मांऽन्तः ।” “स्त्रिया” मादा । भूतधात्री, रत्नगर्भा, विपुला, सागराम्बरा, रत्नवती, रसा, अचला, अनन्ता, ड्याम्—काश्यपी, गोत्रा, स्थिरा, सर्वसहा ।

तत्पर्यायधरः शैलस्तत्पर्यायपतिर्नृपः ।

तत्पर्यायरुहो वृक्षः शब्दमन्यं च योजयेत् ॥ ७ ॥

- १० योजयेत् योदयेत् अन्यं शब्दं च । तत्पर्यायधरः शैलः । भूमिधरः, भूधरः, पृथिवीधरः, पृथ्वीधरः, गहरीधरः, मेदिनीधरः, महीधरः, धराधरः, वसुमतीधरः, धात्रीधरः, विश्वम्भराधरः, अरुनीधरः, वसुधाधरः, धरणीधरः, क्षोणीधरः, क्षमाधरः, धरित्रीधरः, क्षितिधरः, कुधरः, कुम्भिनीधरः, इलाधरः, उर्वराधरः, उर्वीधरः, जगतीधरः, गोधरः, वसुन्धराधरः । सप्तविंशति नामानि शैलस्य ज्ञेयानि । तत्पर्यायपतिर्नृपः । भूमिपतिः, भूपतिः, पृथिवीपतिः, पृथ्वीपतिः, गहरीपतिः, मेदिनीपतिः, महीपतिः, धरापतिः, वसुमतीपतिः, धात्रीपतिः, क्षमापतिः, विश्वम्भरापतिः, अरुनीपतिः, वसुधापतिः, धरणीपतिः, क्षोणीपतिः, क्षमापतिः, धरित्रीपतिः, क्षितिपतिः, कुपतिः, कुम्भिनीपतिः, इलापतिः, उर्वरापतिः, उर्वीपतिः, जगतीपतिः, गोपतिः, वसुन्धरापतिः । सप्तविंशति नामानि नृपस्येति ज्ञातव्यानि । तत्पर्यायरुहो वृक्षः । भूमिरुहः, भूरुहः, पृथिवीरुहः, पृथ्वीरुहः, गहरीरुहः, मेदिनीरुहः, महीरुहः, धरारुहः, वसुमतीरुहः, धात्रीरुहः, क्षमारुहः, विश्वम्भरारुहः, अरुनीरुहः, वसुधारुहः, धरणीरुहः, क्षोणीरुहः, क्षमारुहः, धरित्रीरुहः, क्षितिरुहः, कुरुहः, कुम्भिनीरुहः, इलारुहः, उर्वरारुहः, उर्वीरुहः, जगतीरुहः, गोरुहः, वसुन्धरारुहः । सप्तविंशतिपर्यायनामानि वृक्षस्येति ज्ञातव्यानि ।

दरीभृदचलः शृङ्गी पर्वतः सानुमान् गिरिः ।

नगः शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरी त्रिककुन्मरुत् ॥ ८ ॥

- २५ द्वादश पर्वते । दरीं विभर्त्तति दरीभृत् । स्वस्थानात् न चलति अचलः । शृङ्गमस्यास्तीति शृङ्गी । पर्वणि सन्त्यस्य पर्वतः । “६पर्वमरुत्यां तः ।” सानुरत्त्यस्य सानुमान् । जलं गिरतीति गिरिः । “गूनाम्बुपधात्किः ।” नं गच्छतीति नगः । “८डोऽसंज्ञायामपि” । नाम्बुपपदे गमेडो भवति । शिला उच्चयन्तेऽत्र, शिलोच्चयः । खम् आकाशम् अतीति अद्रिः । “भूस्वदिभ्यः क्रिः ।” शिखरमस्यस्य शिखरी । त्रिकं पृष्ठाधरं स्कुन्नाति विस्तारयतीति त्रिककुत् । वर्णविकारत्वाद् भकारस्य १० तकारः । स्तम्भु^१ स्तुम्भुस्कुम्भुस्कुम्भुः श्रुत्वेति वक्तव्यमत्रास्य धातोः प्रयोगः । “घ्रियन्ते क्षुद्रजन्तवोऽस्य स्पर्शेनेति मरुत् ।” “१२मृगोरुतिः” । शैलः, क्षितिधरः, गोत्रः, आहार्यः, कुधरः, ग्रावा ।

३०

प्रस्थं पार्श्वं तटं सानुर्मेखलोपत्यका तटी ।

नितम्बमन्तो दन्तश्च तद्वानपि गिरिः स्मृतः ॥ ९ ॥

१. का० सू० २। २।३३ । २. नाम्नि तृभृजिधारितपिदमिसहो संज्ञायाम् इति पूर्णं का० सू० ४।३।४४ । ३. कारितस्यानामिड्विप्रत्यये इति पूर्णम् का० सू० ३।६।४४ । ४. का० सू० ४।१।२२ । ५. का० सू० २।४।४० । ६. पर्वमरुतस्तः श० चं० सू० ४।१।७३ । ७. का० उ० ३।१३ । ८. का० सू० ४।३।४७ । ९. का० उ० ३।१२ । १०. वर्णविनाशेन सकारस्य लोपोऽपि बोध्यः । ११. श० चं० २।१।२६ । त्रीणि ककुदानि शृङ्गाण्यस्येति विग्रहोऽप्यत्र त्रिककुत्पर्वते पा० सू० ५ । ४।१४७ इत्यकारलोपः । १२. का० उ० १।३० ।

पर्वतमेखलायां दश । प्रस्थीयते जनेनात्र प्रस्थम् । “^१ नाग्निस्थश्च” कः । उभयम् । पाति रक्षति जनान् पार्श्वम् । तदति उच्छ्रायं गच्छति तटम् । त्रिषु लिङ्गेषु । सनोतीति साजुः । ^२ कृवापा-जिमीस्वदिसाध्यशूद्रपण्डितनिचरिचटिभ्य उण् ।” “प्रण दाने” अस्य धातोः प्रयोगः । मेहनस्य खं तस्य मां लातीति निरुक्तिः । भिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तानिति वा मेखला । उपत्यका उप समीपे भवा उप-त्यका । “^३उपाधिभ्यां त्यक्कज्ञासन्नारूढयोः ।” तटमस्यास्ति तटी । क्रीडार्थं जनस्ताम्यतीति^४ नितम्बः । ५
अमतीत्यन्तः । “^५मृगृवाहस्यमिदमिलूप्रयस्तः “एभ्यस्तप्रत्ययो भवति । दम्यतेऽ (भ) द्यतेऽनेन दन्तः । “^६मृगृवाहस्यमिदमिलूप्रयस्तः ।” तप्रत्ययः । तद्गानपि गिरिः स्मृतः । प्रस्थवान्, पार्श्ववान्, तटवान्, सानुमान्, मेखलावान्, उपत्यकावान्, तटीमान्, नितम्बवान्, अन्तवान्, दन्तवान् ।

राजाधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढः प्रभुः ।

ईश्वरो विभुरीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता ॥१०॥

१०

चतुर्दश राज्ञि । न्यायमाणेण राजते इति राजा । “^७वृषितक्षिराजिघन्विप्रदिवियुभ्यः कनिः ।” को यण्वद्भावार्थः । एभ्यः कनिः प्रत्ययो भवति । अधि ऐश्वर्यं पाति रक्षतीति अधिपः । तथा च उपसर्गवृत्तौ-अधि वशीकरणाधिष्ठानाध्रयनेश्वर्यस्मरणाधिकेषु ।” पात्यवति पतिः । “पातेर्ङितिः । अस्माङ्-ङितिः प्रत्ययो भवति । “अमु गतौ” सुपूर्वः । शोभनममतीति स्वामी । “आवमेरिन्^८ दीर्घश्च ।” साबुपपदे अमेर्धातोर्नि प्रत्ययो भवति । नाथयति रिपुं नाथः । “तृहि वृहि वृद्धौ” । ढो वृढः । अत एव वृंहः १५
परिपूर्वात् परिवृंहति परिवर्हति स्म वा परिवृढः । “^९गत्यर्था०” इति कः । “^{१०}परिवृढद्वौ प्रभुबलवतोः” एतौ प्रभुबलवतोरर्थयोर्यथासंख्यं निपात्येते । परिपूर्वस्य वृंहेरिडभावो नलोपश्च । वृहवृहोः प्रकृत्यन्तर-योरपीत्यन्ये । ये तु प्रकृत्यन्तरयोश्छिन्ति, तेषाम्मते “तृह वृहि वृह वृहि वृह वृद्धौ” इति पाठान्तरं वर्तते । तेन पाठान्तरेण वृहस्य वृहस्य वा “तृढः वृढः” इति निपातः । तत्र वर्हति स्म दर्हति स्म इति वाक्यं क्रियते । प्रभवतीति प्रभुः । “^{११}भुवो दुर्विशम्पे पु च” । “^{१२}डानुबन्ध०” ऊकारलोपः । “ईश ऐश्वर्ये” ईष्टे इत्येवंशील २०
ईश्वरः । “^{१३}कशिपिसिभासीशस्थाम्रमदां च ।” एषां वरो भवति तच्छीलादिषु । विभवतीति विभुः । दुप्रत्ययः । ईष्टे शक्नोति सृष्टिस्थितिप्रलयान् कर्तुम् ईशानः । आश्रितजनान् विभर्ति पोषयति भर्ता । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवतीति इन्द्रः । “^{१४}स्फायितञ्चिवञ्चिशकिञ्चिपिञ्चुदिरुदिमदिमन्दिचन्नुन्दीन्दिभ्यो रक् ।” एतीति इनः । “^{१५}इण्जिक्किभ्यो नक् ।” ईष्टे ईशिता ।

अनोकहस्तरुः शाखी विटपी फलिनो नगः ।

२५

द्रुमोऽङ्घ्रिपः फलेग्राही पादपोऽगो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

द्वादश वृक्षे । अनसः शकटस्य अक्रं गतिं हन्तीति अनोकहः । “^{१६}ओकहप्रत्ययेन वा अनोकहः । तरन्त्यनेनातपं तरुः । “^{१७}भृमृत्तृचरित्सरितनिमस्त्रिशोभ्य उः ।” शाखाः सन्त्यस्य शाखी । विटपो विस्तारो-

१. का०सू० ४।३।५। वलुतस्तु नाग्नि स्थचेति कप्रत्ययस्य कर्तरि विधानादत्र घञर्थे कविधान-मिति कः । २. का०उ० १।१ । ३. पा० सू० ५।२। ३४ इति त्यक्न् प्रत्ययष्टाप् च । ४. क्रीडार्थं जनैस्त-म्यते काङ्क्ष्यते इति कर्मणि विग्रहो न्यायः । ५. का० उ० ४।२७ । ६. का० उ० २।३ । ७. उ० वृ० ११ । ८. का० उ० ३।५२ इति पातेर्ङितिप्र० टिलोपश्च । ९. का०उ० ६।६८। पाणिनीयैस्तु स्वामिन्नैश्वर्ये पा०सू० ५।२।१२६ इति त्वशब्दादामिन्प्रत्ययेन साधितः । त्वमैश्वर्यमस्यास्तीति विग्रहः । १०. गत्यर्थाकर्मकश्लि-पशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च इति पूर्णं का० सू० ४।६।४२ । ११. का०सू० ४।६।१५ । १२. का० सू० ४।४।५९ । १३. डानुबन्धेऽत्यस्वरादेर्लोप इति पूर्णं का० सू० २।६।४२ । १४. का० सू० ४।४।४७ । १५. का० उ० २।१४ । १६. का० उ० २।५१ । १७. अन प्राणने । अनिति श्वासोच्छ्वासं करोतीति । अन धातोरोकहप्रत्यय औणादिक इत्यपेक्षितांशः । १८. का० उ० १।५ ।

- ऽस्यस्य चिटपी । फलानि सन्त्यस्य फलिनः । ^१“फलवर्हाम्यामिनच् ।” न गच्छतीति नगः । ^२“डोऽ-
संशायामपि” । द्रवति वृद्धिं गच्छति अथवा द्रुवृद्धौकदेशोऽस्यास्तीति द्रुमः । अङ्घ्रिभिश्चरणैः पिवति
पाति वा अङ्घ्रिपः । अङ्घ्रिपश्च । फलानि गृह्णातीति फलेग्राही । अभिधानादीर्घः । ^३“फलमलरजःपु
ग्रहेः” पादैः पिवति पानीयं पादपः । न गच्छतीत्यगः । ^४“नगस्याऽप्राणिनि वा” विकल्पेन नकारलोपः ।
५ वनस्य पतिः वनस्पतिः । ^५“पारस्करादित्वात्सुट् । महीरुहः, कुटः, शालः, पलाशी, द्रुः, वृक्षः, कुजः,
विष्टरः^६, अगश्वापि ।

तत्पर्यायचरो ज्ञेयो हरिर्वलिमुखः कपिः ।

वानरः स्रवगश्चैव गोलाङ्गूलोऽथ मर्कटः ॥१२॥

- एकोनविंशति नामानि हरौ । अनोकहचरः, तरुचरः, शाखिचरः, चिटपिचरः, फलिनचरः,
१० नगचरः, द्रुमचरः, अङ्घ्रिपचरः, फलेग्राहिचरः, पादपचरः, अगचरः, वनस्पतिचरः, । इत्यादिद्वादशनामानि
मर्कटस्य ज्ञेयानि । हरतीति हरिः । ^१“हः सर्वधातुभ्यः ।” वलयो मुखेऽस्य वलिमुखः । कम्पते वायुना शरीरे
कपिः । ^२“अहिकम्प्योर्नलोपश्च ।” आभ्यां किः प्रत्ययो भवति नलोपश्च । वनं वनति सम्भजते वानरः,
नरोऽपि । प्लवेन उत्फालेन गच्छति प्लवगः । ^३“डोऽसंशायामपि” च । गां भूमिं लङ्घतीति गोलाङ्गु-
लम् । गोलाङ्गुलमस्यासौ गोलाङ्गुलः उणादित्वात् ^४“लङ्गे दीर्घश्च” । ^५“मृड् प्राणत्यागे” । म्रियते मर्कटः ।
१५ “जटा ^६“मर्कटौ” एतावत्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । वनौकाः । प्लवङ्गमः । कीशः । शाखाङ्गः ।

विपिनं गहनं कक्षमरण्यं कानन वनम् ।

कान्तारमटवी दुर्गम्

- नव वने । वेप्यते कम्प्यते भयेनात्र विपिनम् । ^१“वेपितुहोर्ह्रस्वच्च” इतीनच् । उणादौ
उप्यते । ^२“जिनाऽजिनेरिणविपिनतुहिनमहिनानि ।” एतानि इनप्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते । ^३गाह्यते
२० मृगादिभिर्गहनम् । उभयम् । कप्रति घर्षति कक्षम् । अर्यते गम्यते श्वापदैः अरण्यम् । प्रतिभ्राज्यन्ति अत्र
वा अरण्यम् । ^४“अर्तेरन्यः” अस्मादन्यः प्रत्ययो भवति । उभयम् । कन्यते गम्यतेऽस्मिन् काननम् ^५।
वन्यते सेव्यते वनम् । कान्तम् जलान्तम् गच्छति इच्छति वा कान्तारम् । अटन्त्यस्यामटविः । स्त्रियामीः ।
अटवी । दुःखेन महता कष्टेन गम्यते दुर्गम् । नानाऽर्थे । सत्रम्, हव्यम्, दावम्, अरण्यानी, फलम्
(^६अफलम्) ।

१. पात० भाष्य० ५।२।१२२ । २. का० सू० ४।३।४७ इति गमेडः । ३. का० सू० ४।२।४७
अनेन ग्रहेरिन् । एवं सति वृद्धयभावात् फलेग्रहिरिति रूपं सम्भवति । तत्राभिधानादीर्घ इति टोकाकारः ।
तथाभिधायकवचनाभावात्कोपान्तरेण फलेग्रहीति दीर्घरहितस्यैव दर्शनाच्च फलेग्रहीति रूपं चिन्त्यम् ।
४. नेटशं किमपि सूत्रं कातन्त्रे । नगोऽप्राणिनि वा इति हे० श० सू० ३।२।१२७ । ५. पारस्करप्रभृतीनि
च संज्ञायाम् पा० सू० ६।१।१५७ । ६. अत्र अ० चि० ४।१८० प्रमाणम् । तदुक्तम्—वृक्षोऽगः शिखरी
च शाखिफलदावद्रिर्हृद्रुमो जीर्णोऽवृष्टिपी कुटः क्षितिरुहः कारस्करो विष्टरः । नन्दावर्तकरालिकौ तरुवसू
पर्णौ पुलाक्यं हिपः सालानोकहगच्छपादपनगा रुक्षागमौ पुष्पदः ॥ इति । ७. का० उ० ४।४। ८. का०
सू० ४।३।४७ । ९. खर्जिकृषिमसिपिञ्जादिभ्य ऊरीलौ का० उ० ३।६० इत्यूलप्र० उणादित्वात्लङ्गे दीर्घश्चेति
दुर्गवृत्तिः । १०. का० उ० ३।५८ । ११. पा० उ० २।५५ । १२. का० उ० २।२२ । इतीनप्रत्ययः वपे-
कारेकारश्च । १३. गह्व विलोडने । ब्रह्मलमन्यत्रापीति युच् । कृच्छ्रगहनयोरिति निर्देशाद्ग्रन्थः ।
१४. का० उ० ३।२ । १५. कानयति दीपयति स्मरादि । कनी दीप्तौ । युच् । कम् जलम् अननं जीवनमस्य
वेति विग्रहोऽप्युह्यः । १६. फलपुष्परहिते वन्ध्य-अवकेशि-अफल-शब्दाः कल्पद्रुकोशे दृष्टाः । तदुक्तम्—

“नत्रयात्फलपर्यायोऽवकेशी वन्ध्य इत्यपि । फलपुष्पैर्विरहित एते वन्ध्यादयस्त्रिषु ॥

तच्चरः स्याद् वनेचरः ॥१३॥

चरशब्देन युक्ते शवरस्य नव नामानि । विपिनचरः, गहनचरः, कक्षचरः, अरण्यचरः, कान-
नचरः, वनचरः, कान्तारचरः, अटवीचरः, दुर्गचरः ।

पुलिन्दः शवरो दस्युर्निषादो व्याधलुब्धकौ ।

धानुष्कोऽथ किरातश्च सोऽरण्यानीचरः स्मृतः ॥१४॥

५

पोलति भ्रमति महत्त्वं याति गच्छति पुलिन्दः । पुलिन्दश्च । शवति^१ निर्दयत्वं गच्छतीति
शवरः । तालव्यः । शवति अरण्यं शवरः । दस्यति अन्यमुपक्षिणोति दस्युः । “जनिमनिदसिभ्यो युः^२ ।”
एभ्यो युः प्रत्ययो भवति । निषीदति पापकर्मान्न निषादः । निषदश्च । वा^३ ज्वलादिदुनीभुवो णः । “व्यध
ताडने” व्यध विध्यतीति व्याधः । “दिहि^४लिहिश्लिषिद्वसिविध्यतीण्यस्यातां च ।” एषां णो भवति ।
लुभ्यते गृध्यते मांसे लुब्धः । स्वार्थे कः लुब्धकः । धनुषा^५ सह वर्तते इति धानुष्कः । किरति शरान्^६ १०
किरातः । अरण्यस्य अरण्यानी (तत्र) चरतीति अरण्यानीचरः^७ । इन्द्र^८वरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमयमारण्ययव-
यवनमातुलाचार्याणामानुक् ईश्च । अरण्यानीति ।

वार्वारि कं पयोऽम्भोऽम्बु पाथोऽर्णः सलिलं जलम् ।

सरं वनं कुशं नीरं तोयं जीवनमव्विषम् ॥ १५ ॥

अष्टादश पानीये । वारयति वृषामिदम् वारि, वृणोति वा वारि । “शृवसिवपिराजिवृहनिन- १५
मेरिज् ।” एभ्य इज् प्रत्ययो भवति । जकार इज्जद्भावार्थः । रान्तम् वार् । स्त्रीस्तीवे । काम्यते इष्यते
कम्, कायतीति (वा) । “^{१०}कायतेर्दतिडमौ” प्रत्ययौ भवतः । पीयते पयते वा पयः । “पीङ् पाने ।”
“सर्व^{११}धातुभ्योऽस्तुन् ।” अमति गच्छति स्वादुत्वं सान्तम् अम्भस् । “अम गतौ ।” “अमे^{१२}म्भोऽन्तश्च । अकार
उच्चारणार्थः । “अत्रि शब्दे” “अम्बु” इति सौत्रो वा “सेवायाम् ।” अम्ब्यते वृष्णातैरित्यम्बु । “^{१३}अम्बि-
कम्बिभ्यामुः ।” आभ्यामुः प्रत्ययो भवति । पीयते पाति वा पाथः । “^{१४}रमिकासिकुषिपातुर्वचिरचिसि- २०
चिगुभ्यत्पक् ।” एभ्यत्पक् प्रत्ययो भवति । को यण्वद् भावार्थः । ऋणोत्यर्णः । गम्यते^{१५} स्नानपानार्थः
सान्तम् अर्णस् । सरति गच्छति सलिलम् । उणादौ “षच तेचने ।” “^{१६}धात्वादेः षः सः ।” “सचते^{१७}
इति सलिलम् । “सचेर्लिलश्च चत्स लुक्^{१८} ।” सचेर्लिलः प्रत्ययो भवति चत्स लुक् च । जडति नीचं
गच्छति जलम् । जडं च । शृणोति हिनस्ति वृष्णाम् इति शरम् । वन्यते तेव्यते एनत् वनम् । कोशते
कुशम् । प्राणिचेष्टां वृद्धिं नयतीति नीरम् । मीयते हिनस्ति वृषां मीरम् च । बुदति वृषाम् तोयम् । “बुः” २५
सौत्र आवरणार्थो वा । जीव्यतेऽनेन जीवनम् । जीवनीयम् च । आप्नुवन्ति समुद्रमित्यापः । आप्नोतेः क्विप्
प्रत्ययो भवति । ह्रस्वश्च । अप् क्षियां बहर्थः । क्वचिदेकत्वम् । क्लीबत्वम् । अपशब्दो बहुवचनान्तः ।

१. शव गतौ भ्वादिः । बाहुलकादरः । २. का० उ० ४।१। ३. का० सू० ४।२।५५ ।
४. का० सू० ४।२।५८ । ५. धनुः प्रहरणमत्येति व्युत्पत्तिर्युक्ता । प्रहरणमिरण् । ६. किरतीति
किरः । कृ विक्षेपे । कप्रत्ययः । अततीत्यतः । अत सातत्यगमने । पचाद्यच् । किरश्चातावतश्चेति किरात
इति पूर्णव्युत्पत्तिः । ७. महदरण्यमरण्यानी तत्र चरतीति विग्रहो युक्तः । ८. इदं पाणिनीयं ४।१।४९ अत्र
यमेत्यधिकः पाठः । ९. का० उ० ४।५ । १०. का० उ० ५।५० । ११. का० उ० ४।५६ । १२. का० उ० ४।६६ ।
अमति स्वादुत्वं गच्छतीति शेषः । रामाभ्रमस्तु अमिशब्दे इत्यतोऽस्तुन् प्रत्ययमाह । १३. का० उ० ५।३५ ।
१४. का० उ० २।१० । १५. अर्थते इत्यस्य पर्यायो गम्यते । यतोऽर्णत् शब्दो नत्प्रत्ययान्तः । ऋ गतौ ।
१६. का० सू० ३।८।२४ । १७. सलति गच्छति निम्नमिति विग्रहे सल् गतौ इत्यस्तात् सलिकत्यनि०
इत्यादि १।५४ उ० सूत्रेण साधितोऽन्यत्र । १८. का० उ० ६।३९ ।

- “अपदच” इति घुटि दीर्घः । आपः । अयुट्स्वरत्वात् शसादेर्न दीर्घः । अपः । “अपां मेदः ।” इति विभक्तिभे पत्यदः । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । “^३ वर्गादः शपसेषु द्वितीयो वा ।” अप्सु । अप्सु । आमन्त्रणे-हे आपः । वेवेष्टि देहं शैत्येन व्याप्नोतीती धिपम् । उभयम् । घनरसः, पुष्करम्, मेघपुष्पम्, पानीयम्, उदकम्, क्षीरम्, भुवनम्, दकम्, कमलम्, कीलालम्, अमृतम्, कञ्चम्, सर्वतोमुखम्, ५ आनर्त इति नानार्थे ।

तत्पर्यायचरो मत्स्यस्तत्पर्यायप्रदो घनः ।

तत्पर्यायोद्भवं पद्मं तत्पर्यायधिरम्बुधिः ॥ १६ ॥

- तस्य पर्यायस्तत्पर्यायः, तत्परं चरशब्दे प्रयुज्यमाने मत्स्यनामानि भवन्ति । वार्चरः, वारिचरः, कञ्चरः, पयश्चरः, अभश्चरः, अम्बुचरः, पाथश्चरः, अर्णश्चरः, सलिलचरः, जलचरः, शरचरः, वनचरः, १० कुशचरः, नीरचरः, तोयचरः, जीवनचरः, अपचरः, विपचरः । प्रदप्रयोगे वारिपर्यायशब्दाग्रे घनस्य नामानि भवन्ति । वार्प्रदः, वारिप्रदः, कम्प्रदः, पयःप्रदः, अभःप्रदः, अम्बुप्रदः, पाथःप्रदः, अर्णःप्रदः, सलिलः प्रदः, जलप्रदः, शरप्रदः, कुशप्रदः, नीरप्रदः, तोयप्रदः, जीवनप्रदः, अपप्रदः, विपप्रदः । इत्यादीनि घननामानि । तत्पर्यायोद्भवं पद्मम् । वारिपर्यायशब्दाग्रे उद्भवप्रयुज्ये उद्भवशब्दप्रयोगे कमलनामानि भवन्ति । वारुद्भवम्, वायुद्भवम्, कमुद्भवम्, पयउद्भवम्, अभउद्भवम्, अम्बुद्भवम्, पाथउद्भवम्, अर्णउद्भवम्, १५ सलिलोद्भवम्, जलोद्भवम्, शरोद्भवम्, वनोद्भवम्, कुशोद्भवम्, नीरोद्भवम्, तोयोद्भवम्, जीवनोद्भवम्, अम्बुद्भवम्, धिपोद्भवम् । तत्पर्यायधिरम्बुधिः । वाः शब्दा (शब्दपर्याया) ग्रे धिप्रयुज्ये धिशब्दप्रयोगे अम्बुधिनामानि ज्ञेयानि । वार्धिः, वारिधिः, कन्धिः, पयोधिः, अभोधिः, अम्बुधिः, पायोधिः, अर्णोधिः, सलिलधिः, जलधिः, शरधिः, वनधिः, कुशधिः, नीरधिः, तोयधिः, जीवनधिः, अग्निधिः, विपधिः ।

पृथुरोमा पडक्षीणो यादो वैसारिणो झपः ।

विसारी शफरी मीनः पाठीनो (ऽ) निमिपस्तिमिः ॥ १७ ॥

- २० एकादश मत्स्ये । पृथूनि विस्तीर्णानि रोमाण्यस्य पृथुरोमा । पट् अक्षीणि स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र-मनांसि यस्य सः पडक्षीणः । याति गच्छति जले, यादः । विसरति “प्रहादेयिन्”^४ विसारी मत्स्य इति । स्वार्थेऽण् । वैसारिणः । भ्रपति जन्तून् हिनस्ति भ्रपः । “सु गतौ” । सु श्रु गतौ वा” । सु विपूर्वा० विसरति विससत्ति वा इत्येवंशीलः, विसारी । “विप्रतिभ्यामाङ् सत्तेयिन् प्रत्ययः । अस्यो० (स्य) वृद्धिः । विसारिन् इति जाते सिः । “इन्हन् [पूर्ववत्] (पूर्वार्यम्णां शौ च)” । शफिति शफरः । शफाः (न्) शायन्ते (राति) शीघ्रगत्वाच्छफरी । मीयते हिंस्यतेऽन्योऽन्यतः, मीनः । बहुद्रष्टृत्वात् पाठयति भक्षयत्वेन पाठयते वा पाठीनः । निमिपति परस्परं हिनस्ति हन्तीति वा निमिपः । “नाम्युपध (धात्) पृकृगृज्ञां कः” । तिम्यति जलेनाद्रो भवति तिमिः । मत्स्यः, अण्डजः, शकली, विसारः, जलचरः, शल्की ।

- ३० घनाघनो घनो मेघो जीमूतोऽञ्च वलाहकः ।

पर्जन्यो मिहिरो नभ्राट्

१. का० सू० २।२।११ । २. का० सू० २।३।४३ । ३. का० सू० पू० सू० २५७ । ४. का० सू० ४।२।५० इति शिन् प्र० । ५. पा० सू० ३।२।७६ उत्प्रतिभ्यामाङ् सत्तेरुपसंख्यानम् इति काशिकावृत्तिः । ६. का० सू० २।२।२१ । ७. निमेषरहितत्वान्मीनानाम् । कोपान्तरेषु तेषामनिमिपसंज्ञादर्शनाच्च अत्राप्यनिमिप इत्येव छेदो युक्तः । न तु निमिप इति । तदुक्तम्-“विसारः शकली शल्की शंवरौऽनिमिपस्तिमिः” अ० चि० ४।१।१० । ८. का० सू० ४।२।५१ ।

नव मेघे । हन हिंसागत्योः । हन्तीति घनाघनः । “अच् घनाघनः” इति सूत्रेण घनाघन इति निपातः । अथवा “चिक्लिदचक्नसचराचरचलाचलपतापतवदावदघनाघनपाट्टपटा वा” इति नामभूता संज्ञा रूढाः । तत्र क्लिदेः “अनाम्युपधात्” कः । कनसिचरिचलिपतिवदिहनिपाट्यतिभ्योऽच्प्रत्ययो द्विर्वचननिपातनं चेति । वाशब्दात् क्लिदः, कनसः, चरः, चलः, पतः, वदः, घनः, पटः, इत्यपि भवति । हन्यते वायुना घनः । “मूतौ घनिश्च ।” अल् । मिह सेचने । मेहति सिञ्चति भूमिमिति मेघः । ५
“अन्य चाम् (दिभ्यश्च)” अच् । नामिनो गुणः । “न्यङ्कुः” इत्येवमादीनां चजोः कगौ भवतः । हश्च (हस्य च) घो भवति । जीवनस्य जलस्य मूतः पुटबन्ध इति निरुक्त्या जीमूतः । जीवन्त्यनेन भूतानि वा जीमूतः । जीव प्राणने । अभ्रन्त्यपो राति वा अभ्रम् । अभ्र गत्यर्थः । न भ्रश्यति तपो यस्मादित्येके । आप्नोति सर्वा दिशो वा अभ्रं क्लीबे । बलाकादिभिर्हीयते बलाहकः । वारिवाहको वा । प्रवर्षति जलं पर्जन्यः । उणादौ “पृजी सम्पर्के” पृङ्क्ते पृणक्ति वा पर्जन्यः । “पर्जन्यपुण्ये” १०
इति अन्यप्रत्ययान्तो निपात्यते । मेहति सिञ्चति विश्वं मिहिरः । महिरः मुहिरश्च । न भ्राजते न शोभते नभ्राट् । “क्विब्भ्राजिपृधुर्विभासाम्” एषां क्विब् भवति । अब्दः, स्तनयित्तुः, पयोधरः, धाराधरः, धूमयोनिः, तडित्वान्, वारिदः, अम्बुभृत्, मुदिरः, जलमुच् ।

शम्पा सौदामि (म) नी तडित् ॥१८॥

आकालिकी क्षणरुचिर्विद्युत्

षट् शम्पायाम् । शाम्यति शीघ्रं शम्पा । शम्बा च । शम्पिवति वा शम्पा । सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामि (म) नी । “तेनेकदिगित्यण्” शोभनस्य दाम्नो बन्धनरज्जोरियं सदृशी सौदामि (म) नी । सौदाम्नी । सौदामिनी च । ताडयति तडित् । ताडयतेर्णिलुक् । ताडयति मेघं ताडयतेऽसौ वेति तडित् । तान्तम् । आकलयति स्तोककालं रोचते वा आकालिकी । “आङ् मर्यादाऽभिविध्योः ।” क्षणे क्षणे रोचते शालते क्षणरुचिः । विद्योतते विद्युत् । चपला, क्षणिका, शतहृदा, हादिनी, अचिरांशुः, २०
ऐरावती, चञ्चला, चटुला, दिश्या ।

तत्पतिरम्बुदः ।

विद्युच्छ्रद्धाग्रे पतिशब्दे प्रयुज्यमाने अम्बुदनामानि भवन्ति । शम्पापतिः, सौदामनीपतिः, तडित्पतिः, आकालिकीपतिः, क्षणरुचिपतिः, विद्युत्पतिः, निर्घातपतिः, अशनिपतिः, वज्रपतिः, उल्कापतिः, इत्यादिमेघनामानि स्युः । २५

निर्घातमशनिर्वज्रमुल्काशब्दं च योजयेत् ॥१९॥

चत्वारो वज्रे । निर्हन्यतेऽनेनेति निर्घातम् । पर्वतादीनश्नाति, अशनिः । “ऋतुसृष्टृष्वभ्य-

१. हन्तेर्धत्वं च का० वार्तिकम् । अच् घनाघन इत्याकारकं वचनं न क्वचिदुपलब्धम् । शा० सू० ४।१।५५ घनाघन पाट्टपटम् इति । २. इदं तु नोपलब्धम् । चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्य वक्तव्यम् इति कात्या० वा० । ३. का० सू० ४।२।५१ । ४. का० सू० ४।५।५० इति हन्तेरल्प्र० घनिरादेशश्च । ५. का० सू० ४।२।४८ । ६. न्यङ्कुवादीनाम् इति का० सू० ४।६।५७ इति हस्य घः । ७. बलाकाभिर्हीयते । ओहाङ् गतौ । कर्मणि क्नुन् । अथवा बलेन हीयते आहायते वा क्नुन् इति रामाश्रमः । पृषोदरादित्वाद् वारिवाहकशब्दस्य बलाहक इति निपातश्च । ८. का० उ० ३।४। ९. का० सू० ४।४।५७ । १०. तेन प्रोक्तमित्यतस्तेनेत्यधिकारे “एकदिक्” इति जै० सू० ३।३।८१ । ११. समानकालावाद्यन्तौ यस्या इति विग्रहे आकालिकडाद्यन्तवचने इति पा० सूत्रेण समानकालशब्दस्याकाल आदेश इकट् प्रत्यये टित्वान्ङीपि आकालिकीति मूलोक्तमपि साधु । १२. का० उ० २।४३ ।

श्यविवृतिग्रहिभ्योऽनिः ।” एभ्योऽनिः प्रत्ययो भवति । “टु उ स्फूर्जा वज्रनिर्वापे” स्फूर्जतीति वज्रम्^१ । शूद्रादयः^२—“शूद्रोग्रवज्रविप्रभद्रगौरभेरीराः” एते रक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पर्वतेष्वपि वजति वज्रम् । उपति ज्वलति उत्का । उल् इति सौत्रोऽयं धातुर्वा ।

परिपत्कर्दमः पङ्कः

- ५ त्रयः कर्दमे । परि समन्ताद् भाराक्रान्तः सीदति गन्तुं न शक्नोतीति परिपत् । “^३सत्सू द्विपट्ट- हृदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजासुपसर्गे” एषासुपसर्गेऽपि नासुपधात्विष्यप् । कृणोति चेष्टां हिनस्तीति कर्दमः । “^४पृथग्रिचरिकर्दिभ्यांऽमः” । पञ्च्यते विस्तार्यते वर्षाकालेन पङ्कः । उभयम् । उणादौ ‘पन च’ पनायते पन्यते वा पङ्कः । “पसिपनिभ्यां कः”^५ ग्राम्यां कः प्रत्ययो भवति । तथा चामरसिंहः—

“^६निपद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ ।”

- १० निपद्वरः, जम्बालः, शादः, इचिकिलः, चिकित्सश्चानेकार्थे ।

तज्जम्

तस्मात् जम् उद्भवम् पङ्कजम्, कर्दमजम्, परिपजम्, इत्यादीनि कमलनामानि भवन्ति ।

तामरसं विदुः ।

कमलं नलिनं पद्मं सरोजं सरसीरुहम् ॥ २० ॥

- १५ खरदण्डं कोकनदं पुण्डरीकं महोत्पलम् ।

- दश कमलनामानि भवन्ति । ताम्र्यति जलं काङ्क्षति तामरसम् । अमरसिंहभाष्ये—“^७तामः प्रकर्षो रसोऽस्य तामरसम् । तमः प्रकर्षाऽर्थस्तारतम्यवत् ।” केन मस्तकेन मल्यते धार्यते कमलम् । श्रिया वासाऽर्थं काम्यते वा । “पटिकमिमुशिकुशिभ्यः कलः ।” एभ्यः कलः प्रत्ययो भवति । कमलं च । नलाः सन्त्यस्य नलिनम् । नलति आकर्षति श्रियं वा नलिनम् । “^८पुलिनलितलिमलिट्टुहिभ्यः किनः” । नलं च । पद्यते पाति लक्ष्मीरत्र पद्मम् । “^९अर्तिधृदुसुधृक्षिणीपदभायास्तुभ्यो मः ।” उभयम् । सरसि तडागे जातम् सरोजम् । सरस्यां रोहति प्रादुर्भवति सरसीरुहम् । “^{१०}खरञ्च तदण्डञ्च खरदण्डम् । कोकाश्चक्रवाका नदन्त्यत्र कोकनदम् । क्लीवे । [रक्त] कुमुदम्^{११} । रक्तकमलञ्च । विशेषणम् [कुमुदकमलविशेषे] । पुणति माङ्गल्यात्वात्पुण्डरीकम् । मट (मुट) प्रमर्दने स्थाने । पुण्डिरित्येके । पुण्डति पुण्डरीकम् । भाष्यकर्तृमते पुण शोभे । पुणति जल्पति शोभां पुण्डरीकः^{१३} । “अनुनासिकान्ताड्डः” अनुनासिकान्ताद्वातोर्डः प्रत्ययो भवति । महञ्च तदुत्पलं च महोत्पलम् । तथा च हुलायुधः—“पुण्डरीकं^{१४} सिताम्बुजम् ।”

१. स्फूर्जतीति विग्रहे स्फूर्जधातो वजादेशो रक्प्रत्ययश्च निपात्यः । वज गतौ । वजतीति विग्रहे केवलं रक् । २. का० उ० २।१७ । ३. का० सू० ४।३।७४ । ४. का० उणादौ एतत्सूत्रं नास्ति । पा० उ० सू० ४।८४ कलिकर्षोरम इष्यमग्र० । ५. का० उ० ५।३० । रामाश्रमस्तु पचि विस्तारे कर्मणि हलश्चेति घञ् इत्याह । ६. अमर० १।१०।९ । ७. ली० भा० १।९।४०। ८. का० उ० ६।१ । ९. का० उ० ६।६ । १०. का० उ० १।५३। ११. खरो दण्डो यस्येति विग्रहो न्याय्यः । १२. अथ कोकनदं रक्तकुमुदे रक्तपंकजे इति मेदिनी तद्विशेषे प्रमाणम् । १३-पुण्डरीकादयश्च पा० उ० ४।२० इति मुदधातो रीकन्-प्रत्ययान्तः पुण्डरीकशब्दो निपात्यते । रामाश्रमस्तु पुण्डिधातो रीकन्प्रत्ययमाह । भाष्यकर्तृमते पुण धातो रीकन्प्रत्ययो ङान्तागमश्चेत्युभयं विवेच्यम् । केवलं ङप्रत्ययस्तु न युक्तः । १४. हुलायुधः ३।५८ ।

इन्दीवरं चारविन्दं शतपत्रं च पुष्करम् ॥२१॥

स्यादुत्पलं कुवलयम्

सप्त नीलोत्पले । इन्दति शोभैश्वर्यं प्राप्नोति इन्दीवरम् । अरान् राजीः विन्दति इति अरविन्दम् । विदलृ लाभे, विद् अरपूर्वः । अरान् विन्दतीति अरविन्दः । “कर्मणि च विदः” श-प्रत्ययो भवति । इति परसूत्रम् । स्वमते-अन्यत्रापि चेति [कर्मण्यण्^१] अण् बाधकः । “^२साहिसाति-वेद्युदेजिचेतिधारिपारिलिपि(म्पि)विन्दां त्वनुपसर्गे” एषामनुपसर्गे शो भवति । चक्रस्याऽवयवः अर-विन्दम् । पिण्डी (पुण्डरीक) कमलेऽर्थे तु (अपि) अरविन्दम् । राजविशेषस्तु अरविन्दः । केचित्कम-लेऽपि पुंस्त्वं मन्यन्ते । शतं पत्राण्यस्य शतपत्रम् । वलीवे । शोभां पोषयति पुष्यति वा पुष्करम् । शोभासुत्कर्षेण पलति गच्छतीत्युत्पलम् । कौ वलते प्राणिति कुवलयम् । कुक्षितो बहिर्वलयः पत्रवेष्टन-मस्येति श्रीभोजः ।

५

१०

विशेषमाह—

अथ नीलाम्बुजन्म च ।

इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे ॥२२॥

नीलाम्बुजन्म । इन्दतीन्दीवरम्^३ । कुवलय [दलनीलेति] सामान्यस्य [नीले] विशेष-वृत्तिः । अस्मिन् सिते । रात्रौ विकासं करोति चन्द्रेण काम्यते वा कौ मोदते वा कुमुदम् । दान्तञ्च । के उदके जले रौति केरवो हंसः, तस्येदं प्रियं कैरवम् । वलीवे ।

१५

तद्वती

तस्य कमलस्य पर्याये ‘वती’ इति प्रयुज्यमाने कमलिनीनामानि भवन्ति । तामरसवती, कमलवती, नलिनवती, पद्मवती, सरोजवती, सरसीरुहवती, कोकनदवती, पुण्डरीकवती, महोत्पलवती, अर-विन्दवती, शतपत्रवती ।

२०

विसिनी ज्ञेया

दिनविकासिन्यामेकः^४ । विसमस्त्यस्या विसिनी । नलिनी । पुटकिनी । मृणालिनी ।

व्रततीर्वल्लरी लता ।

वल्लीनामानि योज्यानि—

चतुर्व^५ (चत्वारो व) ल्यार्थम् । वृणोतीति व्रतती । प्रकृष्टा ततिरस्या व्रततीः^६, व्रततिश्च । जपादित्वाद्वत्त्वम् । वल्लते वल्लरी । लाति ललति चित्तं वा लता^७ । वल्लते वेष्टते वल्ली । वल्लादीः । वल्लिगिदन्तोऽपि । स्त्रियामीः । वल्ली । व्रातश्च । वीरुक् (ध्), गुल्मिनी, प्रतानिनी, शारिवा^८, किर्मी च । वृक्षशाखायामपि ।

२५

१. का० सू० ४।३।१ । २. का० सू० ४।३-५।४ । ३. इन्दतीतीन्दीः लक्ष्मीः । सर्वधातुभ्य इन् उ० सू० ४।११७ इतीन् । कृदिकारादक्तिन इति ङीष् च । तस्यावरमिष्टम् इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्यूह्यम् । ४. एकः विसीनीशब्द इत्यर्थः । ५. अत्र चत्वारो वल्लर्यामिति युक्तम् । ६. व्रततीति व्रततिः । तन् धातोः क्तिच् । कौ च संज्ञायामिति क्तिच् । पृषोदरा-दित्वात्पस्य व इत्यन्यत्र । ७. लतिः सौत्रो धातुवेष्टनार्थो लततीति लता । पचाद्यच् इत्यन्यत्र । ८. शारिवाशब्दोऽनन्तमूलनामकौषधिविशेषवाचकः । किर्मीः स्त्री स्वर्णपुत्र्यां स्यादपि मालापलाशयो-रिति-विश्वलोचनप्रमाणतः किर्मिशब्दः । किर्मिशब्दो स्वर्णपुत्री-माला-पलाशवाचकः । वृक्षशाखायां लतायां वा उभावप्यप्रसिद्धौ । अतोऽत्रेदमेव प्रमाणम्

वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना ॥२३॥

अधुना इदानीं वारिधिर्वर्ण्यते कथ्यते । केन ? भाष्यकर्त्ता मुनिश्रीमदमरकीर्तिना ।
साम्प्रतं समुद्रनामानि प्रारभ्यन्ते—

स्रोतस्विनी धुनी सिन्धुः स्रवन्ती निम्नगाऽपगा ।

५

नदी नदो द्विरेफश्च सरित्रामा तरङ्गिणी ॥२४॥

एकादश नद्याम् । स्रोतः प्रवाहोऽस्त्यस्याः स्रोतस्विनी । धुनोति कम्पते धुनिः^१ । स्त्रियामीः ।
धुनी । स्रवन्ती जले चलति सिन्धुः । त्रिपु । “स्रन्देः^२ सम्प्रसारणं घञ् ।” तटेभ्यो जलं स्रवति स्रवन्ती ।
निम्नं गच्छति निम्नगा । आ समन्तादाप्नोति अद्भिरगति वा आपगा^३ । आपेन वा गच्छति आपगा ।
नदत्यव्यक्तं शब्दं करोति नदी । नदति नदः । “अच्^४ पचादिभ्यश्च” अच् । द्वौ रेफौ तटौ यस्य द्विरेफः ।
१० सरति समुद्रं गच्छति सरित् । तान्तम् । तरङ्गाः सन्त्यस्यां तरङ्गिणी । तटिनी, (नर्मरिणी, कूलङ्ग्या,
शेवलिनी, सरस्वती, समुद्रकान्ता, हादिनी, स्रोतः, कर्पुः^५, कुल्या, द्वीपवती, रोधोवक्त्रा ।

तत्पतिश्च भवत्यब्धिः,

तस्या धुन्याः पतिर्धुनीपतिरित्वादिसमुद्रनामानि भवन्ति । स्रोतस्विनीपतिः, धुनीपतिः, सिन्धु-
पतिः, स्रवन्तीपतिः, निम्नगापतिः, आपगापतिः, नदीपतिः, नदपतिः, द्विरेफपतिः, सरित्पतिः, तरङ्गिणीपतिः ।

१५

पारावारोऽमृतोद्भवः ।

अपारवारकूपारौ रत्नमीनाऽभिधाऽकरः ॥२५॥

समुद्रो वारिराशिश्च सरस्वान् सागरोऽर्णवः ।

नव समुद्रे । पारमावृणोति पारावारः । अनृतस्योद्भवः अमृतोद्भवः । अपारं वारं जलं
यत्राऽसौ अपारवाः । न कुं पृणोति मर्यादापालनादकूपारः । हलायुधे—“न कुं पृथिवीं पिपत्ति व्या-
२० प्नोतीति अकूपारः ।” अकूपारोऽपि । रत्नमीनशब्दयोरग्रे आकरे प्रयुज्यमाने समुद्रनामानि भवन्ति ।
रत्नाकरः, पृथुरोमाकरः, षडक्षीणाकरः, यादाकरः^६, वैसारिणाकरः, भ्रषाकरः, विसार्थ्याकरः, शफराकरः,
मीनाकरः, पाठीनाकरः, निमिषाकरः, तिम्याकरः । ‘उन्दी क्लेदने’ सम्पूर्वः । समन्तादुनच्यस्मादिति
समुद्रः^७ । “स्फायितञ्चिवञ्चिशक्तिपिबुदिरुदिमदिमन्दिचन्दुन्दीन्दिभ्यो रक्” “अनिदनुबन्धानाम-
गुणेऽनुषङ्गः” । तथा च हलायुधे^{१०}—“मुदन्ति मिश्रीभवन्ति भौमाऽन्तरिक्षनादेयजलान्यत्र समुद्रः ।”
२५ अपरसिंहे^९—“समुनत्ति समुद्रः” । वारीणां जलानां राशिर्वारिराशिः । सरांसि जलप्रसारणानि
सन्त्यस्य सरस्वान् । सागरस्यापत्यं सागरः, सगरतनयैः खातत्वात् । अर्णोसि सन्त्यस्य अर्णवः ।

१. धुनोति कम्पयति वेतसादीन् । धुञ् कम्पने । किप् । पृषोदरादित्वाञ्कु । नान्तत्वान्द्वीप् धुनी
इति रामाश्रमः । २. का० उ० १।७ । ३. अद्भिरगतीति विग्रहेऽपः पकारस्य जडत्वाभावोऽकारस्य
दीर्घत्वं च पृषोदरादित्वेन निपातात्साध्यम् । ४. का० सू० ४।२।४८ । ५. अत्र कर्पूरिति दीर्घोकारान्तपाठो
युक्तः । तदुक्तम्—कर्पूरं नदी करीषाग्न्योरिति शाश्वतः ६।७२ । ६. यादस् शब्दस्य सकारान्तत्वाद् याद आकर
इत्येव न त्र यादाकरः । ७. समन्तादुनत्ति आर्द्राकरोति भूभागानेतावानेव विग्रहः । अत्रास्मादित्यपा-
दानार्थष्टोकोक्तो नापेक्षणीयः । समीचीना मुद्रा जलचरविशेषा यस्मिन् सह मुद्रया मर्यादया वर्तते वेति
व्युत्पत्त्यन्तरमप्युक्तम् । ८. का० उ० २।१४ । ९. का० सू० ३।६।१ । १०. मुद संसर्गे चुरादिः सम्पूर्वः ।
कथादावदन्ते तत्पाठाच्चुरादिणिचो वैकल्पिकत्वान्मुदन्तीत्यपि पक्षे । समो मकारलोपः पृषोदरादित्वाच्चत्र
बोध्यः । ११. द्वी० भा० १।६।१ ।

तथा च क्षीरस्वामिभाष्ये—“^१ अर्णोऽस्यास्त्यर्णवः । ‘अर्णसो लोपश्च’ इति वः सलोपश्च ।”
उदधिः, उदन्वान्, तोयनिधिः, जलराशिः, वीचिमाली, शशध्वजः^२ । तद्भेदाः सप्त—लवणोदः, क्षीरोदः,
सुरोदः, इक्षूदः, स्वादूदः, दध्युदः, धृतोदः ।

सीमोपकण्ठं तीरञ्च पारं रोधोऽवधिस्तटम् ॥२६॥

सप्त समीपे । पिबू बन्धने । सिनोति बध्नातीति सीमा । “^३घर्मसोमाग्नीष्माऽधमाः”
एते मकूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठस्य समीपे उपकण्ठम् । तरन्त्यस्मात्तीरम्^४ । तरति प्लवते
इव के तीरं वा । “पिपतिं वृणोति जलेनेति पारम् । पार्यते समाप्यतेऽस्मिन्निति वा । रुणद्धि
जलं वेगेन रोधस् । सान्तम् । उभयम् । अवधानम् अवधिः । “^५उपसर्गे दः किः” । तटयते आहन्य-
तेऽम्भसा तटम् । त्रिषु । तटः । तटी । इदन्तो वा । तटिः । स्त्रियामीः, तटी । कूलम्, कच्छः,
प्रपातः, तीरम् ।

५

१०

भङ्गस्तरङ्गः कल्लोलो वीचिरुत्कलिकाऽवलिः ।

पाली वेला तटोच्छ्वासौ विभ्रमोऽयमुदन्वतः ॥२७॥

एकादश तरङ्गे । भज्यते जले स्वयमेव भङ्गः । तरति प्लवते तरङ्गः । “^६तृपतिभ्यामङ्गः”
आभ्यामङ्गप्रत्ययो भवति । “कल्लयन्तेऽनेन नद्यः कल्लोलः । कुत्सितं लोडति कल्लोल इत्येकः ।
याति (वयति) गच्छति वीचिः^७ । स्त्रियामीः, वीची । वृद्धिमुत्कर्षेण कलयति उत्कलिका । स्त्रि-
याम् । आ समन्ताद् वलते आवलिः । पाल्यते पालिः । स्त्रियामीः । पाली । वेलायति पूर्णिमादि-
कालमुपदिशति वेला । स्त्रियाम् । तटश्च उच्छ्वासश्च तटोच्छ्वासौ । तटति तटः । उच्छ्वसनम्
उच्छ्वासः । विभ्रमति विभ्रमः विकारः । कस्य ? उदन्वतः समुद्रस्य । ऊर्मिः, लहरी ।

१५

सम्प्रति मनुष्यवर्गं आरभ्यते श्रीमदमरकोटिना—

मनुष्यो मानुषो मर्त्यो मनुजो मानवो नरः ।

२०

ना पुमान् पुरुषो गोधा

एकादश मनुष्ये । मनोरपत्यं मनुष्यः । *^१“कुरुनिषादेभ्यः प्रथमाऽपत्येऽपि” । कुरुनिषादाभ्या-
मणीपि मनोः सान्तश्च । वचिच्द्विस्वरस्य न वृद्धिः । अण्वा । * मनुष्यः । मानुषः । उणादौ च ।
मन्यते सुखदुःखादिकमिति मनुष्यः । “^२मनेरुस्यः” उत्यप्रत्ययः । मानयति मान्यते इति वा मानुषः ।
“^३मानेरुसः” उस्प्रत्ययः । उभयम् ।

२५

१ क्षी० भा० १।६ । २. कोषान्तरेषु समुद्रस्य शशध्वज इति नाम नोपलब्धम् । कथं
चित्समाधानापेक्षायां शशध्वज इति पाठो बोध्यः । शशी चन्द्रो ध्वजश्चिह्नं वंशप्रख्यापकं यस्येति
तद्विग्रहः । चन्द्रस्य समुद्रप्रभवत्वं पुराणप्रसिद्धम् । ३. का० उ० १।५६ । ४. तू लवनतरणयोः । क-
प्रत्यये ऋत इर् दीर्घत्वं च । अत्रोणादिः शरणम् । सरलः पन्थास्तु पार तीर कर्मसमाप्ता । ततस्तीरय-
तीति विग्रहे पचाद्यच् । ५. पालनपूरणयोः पू धातुस्तेन पिपतीत्यस्य पूरयतीति पर्यायो युक्तो न तु
वृणोतीति । ज्वलादित्वाणः । क्षीरस्वामी तु परे पार्श्वे भवं कूलम् पारम् इत्याह । ६ का० सू० ४।५।७०
इति किः । ७. का० उ० ५।२२ । ८. कल्ल अव्यक्ते शब्दे कल्लन्ते इत्यस्य शब्दावन्ते इत्यर्थः । उणा-
दित्वादोलोचप्र० । कं जलम् तस्य लोलश्चञ्चलोऽवयवः । अनुस्वारस्य परसदृशो लकार इति रामाश्रमः ।
९. वेज् संवश्ये । वेजो ङिच् उ० सू० ४।७२ इतीचिप्र० । १०. * एवं चिह्नितांशस्थाने “मनोः पण्य्य”
का०रू०पू० ४९३ इति ष्य षण् प्रत्ययौ इति पाठो युक्तः । ११. का० उ० ६।१० । १२. का० उ० ६।११ ।

“रुहीय वाञ्छितं यान्तो वरमेते भुजङ्गमाः ।

न पुनः पक्षहीनत्वात् पङ्गुप्रायन्तु मानुषम् ॥”

ध्रियते मर्त्यः । “^१ह्रस्वः” । स्वार्थे त्यो वा । मनोजातिः मनुजः । मनोरपत्यं मानवः^२ ।
 ५ वृणाति विनयति नरः, ‘शीञ् प्रापणे’ नयतीति वा । “^३नियो ङाऽनुबन्धश्च” । अस्मात् ऋन् प्रत्ययो
 भवति, स च ङाऽनुबन्ध इष्यतेऽन्त्यस्वरादित्योपार्थः । पूर्यते कुलमनेन सान्तः—^४पुमान् । उणादौ
 पूङ्ः पवते पुनातीति वा पुमान् । “^५सिर्मनन्तश्च ।” अस्मात्सिः प्रत्ययो भवति, अय्य च मन् अन्तः
 चकाराद् ह्रस्वत्वं च । इकार उच्चारणार्थः । पुरि पुरि शयनात् पूरणाद्वा पुरुषः । पृणाति पूरयति वा
 स्त्रीणामुदरं गर्भेणेति पुरुषः^६ । “पृणातेः^७ कुपः” । अस्मात्कुपः प्रत्ययो भवति । कोऽनुबन्धः । अन्येषा-
 मपीति वा दार्ढ्यः । पूरुषः । लत्वे पुरुषः, पुलुपश्च । “गुध परिवेष्टने” । गुथयति गोधाः^८ ।

१०

धवः स्यात्तत्पतिनृपः ॥२८॥

तस्य मनुष्यशब्दस्याग्रे धव-पतिशब्दप्रयोगे नृपनामानि भवन्ति । मनुष्यधवः, मानुषधवः,
 मर्त्यधवः, मनुजधवः, मानवधवः, नरधवः, नृधवः, पुन्धवः, पुरुषधवः, गोधाधवः । मनुष्यपतिः, मानुषपतिः
 मर्त्यपतिः, मनुजपतिः, मानवपतिः, नरपतिः, नृपतिः, पुंस्पतिः, पुरुषपतिः, गोधापतिः ।

भृत्योऽथ भृतकः पत्तिः पदातिः पदगोऽनुगः ।

१५

भटोऽनुजीव्यनुचरः शस्त्रजीवी च किङ्करः ॥२९॥

एकादश सेवके । ध्रियते इति भृत्यः । “^१भृजोऽसंज्ञायाम्” । ध्रियते राज्ञा भृतः । स्वार्थे कः ।
 भृतकः । पतति अधो गच्छति पत्तिः^२, पतनं वा । [पादाम्याम्] अतति [पदातिः^३] । पादातिकः ।
 औणादिक इकः । “^४विनयादिस्वात्त्वार्थे ङण्” । पदभ्यां^५ गच्छतीति पदगः । अनु पश्चाद् गच्छति
 अनुगः । भटति युद्धं त्रिभर्ति भटः । अनुजीवतीत्येवंशीलः अनुजीवी । अनु पश्चाच्चरतीत्यनुचरः ।
 २० शस्त्रेण आयुधेन जीवतीत्येवंशीलः शस्त्रजीवी । किं कुत्सितं कार्यं विदधाति किङ्करः । सहायः, सेवकः,
 पदजेयः, पदगः, पदिकश्च । तथा च यशस्तिलके—(श्लो० १३०)

“सत्यं दूरे विहरति समं साधुभावेन पुंसां धर्मश्चित्तात्सह करुणया याति देशान्तराणि ।

पापं शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्धं सेवावृत्तेः परमिह परं पातकं नास्ति किञ्चित् ॥”

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुरङ्गना ।

२५

ललना कामिनी योपिद् योषा सीमन्तिनीति च ॥३०॥

१. का० उ० ६।१२ । २. वाणपत्ये का० सू० पू० ४७३ इत्यण् । ३. का० उ० २।४१ । ४.
 पाति पुनाति वा पुमान् । पातेर्ङुम्मुन् पूजो ङुम्मुन्, पा० उ० ४।१७० इति ङुम्मुन् इति प्रक्रियाऽन्यत्र ।
 ५. का० उ० ४।४२ । ६. पुरि शयनादिति तु निरुक्तप्रकारो विग्रहस्तु पृणातीत्यादिरेव । ७. का० उ० ३।५४ ।
 ८. गोधाशब्दस्य पुरुषार्थे कोषान्तरप्रमाणं नोपलब्धम् । तदुक्तम्—“गोधा तलनिहाकयोः” वि० लो० । गोधा
 प्राणिविशेषे स्य ज्वयाघातस्य च वारणे । आकारान्तस्त्रीलिङ्गत्वं च सर्वत्रास्योक्तम् । अ० सं० २४३ । अतोऽस्य
 मूलं मृग्यम् । गोद इति पाठे तु गोदो मस्तिष्कमस्यास्तीति गोदः मुख्यमस्तिष्कवत्त्वात् पुरुष इति समाधेयम् ।
 तदुक्तम् गोदं तु मस्तकस्नेहो मस्तिष्को मस्तुलुङ्गकः अ० चि० ३।२८९ । ९. का० सू० ४।२।२५ इति
 क्यप् । १०. औणादिकस्तिः, किच् कौ च संज्ञायामिति वा किच् । पतनं वा इति व्युत्पत्तिस्त्वप्रासङ्गि-
 कत्वादुपेक्ष्या । ११. अन्यतिभ्यां च पा० उ० ४।१३० इत्येतेरिञ् । पादस्य पदाव्यातिहतेषु इति पदादेशश्च ।
 १२. विनयादिष्टण् जै० सू० ४।२।४० । १३. पदाभ्यां पादाभ्यां वेति वक्तव्यम्, न तु पदभ्यामिति । पाद
 इत्यापत्तेः । पादस्य पदाव्यातीति पादस्य पद् ।

नितम्बिन्यवला बाला कामुकी वामलोचना ।

भामा तनूदरी रामा सुन्दरी युवती चला ॥३१॥

द्वाविंशतिः स्त्रियाम् । “स्तृञ् आच्छादने” स्तृणात्याच्छादयति स्वदोषान् परगुणानि-
ति स्त्री । उणादौ । स्तृणात्याच्छादयति लज्जयाऽत्मानमिति स्त्री । स्तृणातेष्ट्” प्रत्ययो भवति ।
अकारमात्रः । “रमृवर्णः” । अथवा डूट्पाठः । डाऽनुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । डकारो ५
नदाद्यर्थः । रकारमात्र एव । अमरसिंहभाष्ये—“स्त्यायत्य(तेऽ) स्यां गभः स्त्री ।” तथा च हलायुधे—
“स्तृणाति विवेकमाच्छिनत्ति स्त्री” । नरस्य स्त्री जातिश्चेत्तनारी । नरं वनति भजते वनिता । मुह वैचित्ये
कार्येषु मुह्यति मुग्धा । “मुहर्धक्” हस्य गः ।” भामते कुप्यते (ति) भामिनी । [भामः] क्रोधोऽस्त्यस्याः
वा भामिनी । विभेत्यस्माद्(त्यसौ)भीरुः । “भियो रुलुकौ च ।” भीरुः । प्रशस्तान्यङ्गान्यस्या अङ्गना ।
लाडयति, (लडति) विलसति, ललयति (ललति) नरमीप्सते वा ललना । “लल ईप्शायाम्” । भोगान् १०
कामयते कामिनी । युषः सौत्रोऽयं धातुः सेवाऽर्थे । योषति पुरुषं गच्छति रतेच्छया आत्मनो योषा ।
“कष शिष जष भष दष मष रुष रिष यूष जृष हिंसार्थाः” । योषति हिनस्ति हन्तीति योषित् । “हृस्तडि-
रुहियुषिभ्य इतिः” एभ्य इतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । अमरसिंहे—“यौति पुंसा योषित् ।”
अजादित्वादाप्रत्यये योषिता च । सीमन्तोऽस्त्यस्याः सीमन्तिनी । बध्नाति चित्तं बधूः । नितम्बोऽस्त्यस्या
नितम्बिनी । न विद्यते बलमस्या अवला । ‘वा’ सौभाग्यं लाति गृह्णातीति बाला । “कमु कान्तौ” कम् । १५
“कमेरिनिङ् कारितम्” इन् । “अस्थोप०” दीर्घः । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । “शृकमगमहनकृष-
भूस्थालपपतपदामुकञ् ।” “कारितलोपः । “निमि०” दीर्घाभावः । अकाराऽनुबन्धत्वात्पूर्वस्योप० दीर्घः ।
वामे सुन्दरे लोचने नेत्रे यस्याः सा वामलोचना । “भाम क्रोधे” चुरादौ । भामयति । “भाम क्रोधे”
भ्वादावकाराऽनुबन्ध आत्मनेपदी । भामते भामा । चक्षुर्दोषादिदर्शनात् । तनु सूक्ष्ममुदरं यस्याः सा
तनूदरी । नरेषु रमते, मनांसि रमयति वा रामा १६ । सुष्ठु द्वियते आद्रियते जनोऽत्र, शोभनो दरो २०
वराङ्गच्छिद्रमस्या वा १३ सुन्दरी । अथवा ‘सुन्दर’ इति सौत्रोऽयं धातुः । युवत्शब्दान्नदादिविहितस्तिः १४,
युवतिः । यु मिश्रणे यौति नरान् मिश्रयति औणादिको वा अतिः युवतिः । स्त्रियामीः । युवती ।
यूनीत्यन्यः । तथाहि प्रयोगः—

“भर्ता संगर एव मृत्युवसति प्राप्तः समंबन्धुभिः,
यूनी काममयं दुनोति च मनो वैधव्यदुःखाद् बधूः ।
बालो दुस्त्यज एक एव च शिशुः कष्टं कृतं वेधसा,
जीवामीति महीपते प्रलपति यद्बैरिसीमन्तिनी ॥”

चलचित्तानुपुषान् चालयतीति चला १५ । वामनेत्रा, पुरन्ध्री, वासिता, वर्णिनी, प्रमदा, रमणी,

१. का० उ० ४।३६ । २. का० सू० १।२।१० । ३. क्षी० भा० २।६।२ । ४. का० उ० ६।३८४ इति धिक् प्र० हस्य गश्च । ५. का० सू० ४।४।५६ । ६. का० उ० १।३५ । ७. क्षी० भा० २।६।२ । ८. का० सू० उ० ४६२ । ९. का० सू० ४।४।३४ । १०. कारितस्यानामिङ्विकरणे का० सू० ३।६।४४ इतीनो लोपः । इनः कारितसंज्ञा कातन्त्रव्याकरणे । ११. निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः इति परिभाषेन्दुशेखरे अकृतव्यूहपरिभाषार्थरूपः । १२. रमते रामा । ज्वलादित्वाण्यः । रमयतीति तु न युक्तम्, प्यन्तस्य ज्वलादित्वाभावात् । १३. सु-अतीव उनसि सुन्दरी । उन्दी क्लेदने । बाहुलकादप्र० । शकन्धादि-त्वादुकारस्य पररूपम् । गौरादित्वान्डीप् इति रामाश्रमः । १४. का० सू० २।४।५० । १५. चलचित्तैः पुरुषैश्चलतीति चलत्येव विग्रहः । पचायच् । शिञ्जन्तातु चाला इति स्यात् ।

दयिता, प्रतीपदर्शिनी, कान्ता, वशा, महिला, महेला च ।

भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्रं गेहिनी गृहम् ।

महिला मानिनी पत्नी तथा दाराः पुरन्ध्रयः ॥३२॥

- दश कलत्रे । कुम्भं धारणपोषणयोः । भ्रियते पुष्यते गर्भेण भार्या । “^१ऋवर्णव्यङ्गना-
 ५ न्तात्थ्यम्” । यकारमात्रः । अत्योपधावृद्धिः । भार्या इति जातम् । “^२स्त्रियामादा” । आप्रत्ययः । प्र०
 सिः । “^३श्रद्धायाः सिलोपम्” । सिलोपः । “^४व्या वयोहानौ” जा (वि) नाति जाया । ‘जनी प्रादुर्भावे
 च’ । सुखी जायते आत्माऽत्र जाया । “^५सन्ध्यादयः—सन्ध्या वन्ध्या जाया इत्यादयः शब्दाः यक्प्रत्ययान्ता
 निपात्यन्ते । जनयति पुत्राञ्जनिः । इः “^६सर्वधातुव्यः” । कुले साधुः कुल्या “^७यदुगवादितः” । “कड
 मदे” कड तौदादिः । कडति माद्यति यौवनेनेति “कलत्रम्” । “अमिनत्तिकडिभ्योऽत्रः” अत्रप्रत्ययः ।
 १० कडत्रम् । डलयोरैक्यम् । प्रथ० सि० नपु० “अका० सुरा० । “मोऽनु० । गेहमस्त्यस्या गेहिनी ।
 ‘ग्रह उपादाने’ । गृह्णाति प्रत्युपाजितं गृहम् । “^८गेहेत्वक्” अक्प्रत्ययः । “ग्रहिव्या^९” —सम्प्रसारणम् ।
 मल्लते पूज्यते । महिला । मानः प्रणयकोपोऽस्या मानिनी । पतिं पतति याति पत्नी । ‘ह विदारणे’ । ह०
 क० । दीर्यते शतखण्डीभवति पुरुष एभिरिति दाराः । “^{१०}भावे” घञ् । अकारमात्रः । “^{११}वृद्धिः । दार
 इति जातम् । प्रथमा जस् । प्रया बहुत्वं च । पुरं धमयन्ति, नेत्रान्ते पुरं शरीरं धरन्तीति “^{१२}पुरन्ध्रयः ।
 १५ क्षेत्रम्, सहधर्मचारिणी, गृहाः, सहचरी, सहचरा । “^{१३}

वल्लभा प्रेयसी प्रेष्टा रमणी दयिता प्रिया ।

इष्टा च प्रमदा कान्ता चण्डी प्रणयिनी तथा ॥ ३३ ॥

- एकादश वल्लभायाम् । वल्लते पत्युश्चितं संवृणोतीति वल्लभा । “^{१४}कृशलिगर्दिरासि-
 वलिवल्लिभ्योऽभः” अभः प्रत्ययः आप्रत्ययः । अतिशयेन प्रिया प्रेयसी । “तर^{१५}तमेयस्विष्टः” प्रकर्षाऽयं
 २० ‘तर तम ईयसु इष्ट’ इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन प्रिया प्रेष्टा । रमते जनोऽत्र, मनांसि रमयति

१. का० सू० ४।२।३५ इति ध्यणप्रत्ययः । २. का० सू० २।४।४९ । ३. का० सू० २।१।३७ ।
 ४. का० उ० ४।३० । ५. का० उ० ३।१४ । ६. का० सू० २।६।११ इति यत्प्र० । ७. का० उ० ३।५।
 गड सेचने । गडति गड्यते वा “गडेरदेव कः” पा० उ० इत्यत्रन् । डलयोरैक्यम् । कड शासने मदे ।
 कडति कड्यते वा बाहुलकादत्रन् । कलं मधुर ध्वनिं त्रायते रक्षति वा । त्रैङ् पालने कः इत्यन्यत्र ।
 ८. अकारादसम्बुद्धौ युश्च इति पूर्णं का० सू० २।२।७ इति सेलोपो सुरागमश्च । ९. मोऽनुत्वारं
 व्यङ्गने इति पूर्णं का० सू० १।४।१५ इत्यनुत्वारः । १०. का० सू० ४।२।६० । ११. का० सू० ३।४।२
 ग्राहव्यावयिव्यधिविष्टिव्यचिप्रच्छिन्नश्चिभ्रस्त्रीनामगुणे इति पूर्णसूत्रम् । १२. का० सू० ४।५।१३ । १३. का०
 सू० ३।६।५ । अत्योपधाया दीर्घां वृद्धिर्नामिनामिनिचट्क्षु इति सूत्रस्वरूपम् । १४. स्यात्तु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री
 २।६।६ । इत्यमरादिकोशेषु दार्वेकारान्तपुरन्ध्रीशब्दस्यैव सत्त्वादत्र पुरन्ध्रय इति पाठोऽयुक्त इति न
 भ्रमितव्यम् । पुरं धरन्तीति विग्रहे “अत्र इः” पा० उ० ४।१३९ इति इः । पृषोदरादित्वात्पुरोऽकारान्तत्वं
 सुमागमश्चेति रीत्या तस्याप्युपपत्तेः । अत एव “तौ स्नातकैर्वन्धुमता च राजा पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः
 प्रयुक्तम्” इति खडुः । पुरन्ध्रमयन्तीति न विचारसहम्, तत्साधकानुशासनविरहात् । १५. भार्यादिपुरन्ध्र्यन्त-
 शब्देषु सामान्यविशेषभावादर्थभेदो न विस्मर्तव्यः । तद्यथा—भार्या, जाया, कुल्या, कलत्र, गेहिनी, गृह, पत्नी
 दारा परिणीतोस्त्रीवाचकाः । महिलामानिन्यौ विशिष्टनायिके । पुरन्ध्री पतिपुत्रवती । १६. का० उ० ३।१२ ।
 १७. एतच्च कातन्त्रसूत्रं नोपलब्धम् । गुणाङ्गाद्वेष्टेयसू शा० सू० ३।४।७५ इतीयमुपलब्धो बोध्यः ।

वा रमणी । नरेषु दयते गच्छति ईष्टे वा दयिता । प्रीणाति पतिचिच्छं रञ्जयति प्रिया । इज्यते इष्यते वा इष्टा । प्रकृष्टो मदोऽस्याः प्रमदा । काम्यते नरेण कान्ता । चण्डते कुप्यति चण्डी । चण्डिका च । प्रणयोऽस्या अस्तीति प्रणयिनी ।

सती पतिव्रता साध्वी पतिवत्येकपत्यपि ।

मनस्विनी भवत्यार्या—

सप्त पतिव्रतायाम् । एकः पतिरस्तीति सती^१ । पतिव्रतं करोति, पतिरेव व्रतं सेव्यो नान्यो यस्या इति वा पतिव्रता । पतिसेवैव व्रतं यस्याः पतिव्रता । यस्मृतिः—“नास्ति^२ स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतमिति ।” साधयति साध्वी । पतिरस्या अस्तीति पतिवती^३ । एकः पतिर्यस्याः सा एकपती । मनोऽस्या अस्तीति मनस्विनी । अयं ते सेव्यते आर्या । सुचरिता ।

विपरीता निरूप्यते ॥ ३४ ॥

मया धनञ्जयेन, भाष्यकर्त्रा अमरकीर्तिना वा कथ्यते विपरीता असदृशा ।

बन्धकी कुलटा मुक्ता पुनर्भूः पुंश्चली खला ।

षड् बन्धक्याम् । बध्नाति तरुणचित्तानि बन्धकी । कुलमटति कुलटा । तथा चोणादौ “टल ट्वल वैकल्ये” हेताविन् । अस्थोपधाया दीर्घः । कुलपूर्वः । कुलं टालयति कुलटा । “कुले^४ टाले-रिलुक् डश्च” कुले उपपदे टालेरिन्नन्तस्य डः प्रत्ययो भवित इलुक् च । स्वाचारं मुच्यते (स्म) पत्या जनैर्वा मुक्ता । पुनर्भवतीति पुनर्भूः । पुमांसं चालयति पुंश्चली । खं पञ्चेन्द्रियोत्पन्नमुखं लाति गृह्णातीति खला, अन्यपुरुषलम्पटत्वात् । पांशुला, स्वैरिणी, असती, इत्वरी, धर्षणी, अविनीता, अभिसारिका, चपला ।

स्पर्शाऽभिसारिका दूती स्वैरिणी शम्फली तथा ।

पञ्च दूत्याम् । ‘स्पृश संस्पृशे’ । स्पृशति, स्पृश्यति, अस्प्रादीत्, पस्पर्श वा घञ् । स्पर्शः । “पद^५-रजविशस्पृशोचां घञ्” । नामिन^६श्च गुणः । “स्त्रियामादा” आप्रत्ययः । स्पर्शा । पुरुषान्तरमभिसरति अभिसारिका । दूयन्तेऽस्या^७ मौखर्यात् दूती । ‘ईर् गतौ कम्पने च’ । ईर् । ईरणम् ईरः । “भावे”^८ घञ् प्रत्ययः । स्वस्य ईरः स्वैरः । स्वैरो विद्यतेऽस्या स्वैरिणी । “तदस्याऽस्तीति^९ मन्त्वन्त्वीन्” इन् । “^{१०}नदाद्यञ्जिवाहू” ई प्रत्ययः । “रपृवर्णेभ्यः^{११}” नस्य णत्वम् । शं सुखम् फलति निष्पादयतीति शम्फली । तथा तेनैव प्रकारेण ।

गणिका लज्जिका वेश्या रूपाजीवा विलासिनी ।

पण्यस्त्री दारिका दासी कामुकी सर्ववल्लभा ॥ ३६ ॥

नव वेश्यायाम् । गणः पेटकोऽस्त्यस्याः, गणयतीश्वरानीश्वरौ वा गणिका । ‘लजि लाजि लाजा लज तर्ज भर्त्सने’ । लज्जयति निः स्वान्पुरुषान् तर्जयतीति लज्जिका । वेशे वेश्यावाटे भवा वेश्या^{१२} । रूपेण आ समन्ताजीवतीति रूपाजीवा । विलासोऽस्याऽस्तीति विलासिनी । तथा चोक्तम्—

“हावो मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः ।

विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमोऽत्र दृगन्तयोः ॥

१ अस्धातोः शतृप्रत्ययान्तो डीवन्तः सतीशब्दः । २ “नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे न हीयते” इति मनुस्मृतिः ५।१५५। ३. पतिवती, एकपती इति पाठो युक्तः । ४. का० उ० ५।४७ । ५. का० सू० ४।५।१ । ६. का० सू० ३।५।२ नामिनश्चोपधाया लघोः इति पूर्णसूत्रम् । ७. दूयन्ते परितप्यन्ते । अस्य कर्तारः स्त्रीपुमांसः । ८. का० सू० ४।५।३ । ९. का० सू० २।६।१५ । १०. का० सू० २।६।५० । ११. का० सू० २।४।४८। “रपृवर्णेभ्यो नोमन्त्यः स्वरह्यकवर्गाऽन्तरोऽपि” इति पूर्णसूत्रम् । १२. वेशेन नेपथ्येन शोभते, “कर्मवेशाद्यत्” इति यत् । वेशे भवा दिगादित्वाद्यत् ।

पण्यस्य स्त्री पण्यस्त्री । परिमाणं कृत्वा रमयतीत्यर्थः । दृष्टाति विदारयति कामिनम् दारिका । दस्यति परिकर्मणा क्षयति, ददात्यात्मानं वा दासी । दाशी । तालव्यदन्त्यः । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । सर्वेषां पुरुषाणां वल्लभा सर्ववल्लभा । सैरिन्ध्री ।

“चतुःषष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी ।

५

प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री कथ्यते बुधैः ॥”

गन्धकारिका । पण्यस्त्री च ।

कान्तेष्टौ दयितः प्रीतः प्रियः कामी च कामुकः ।

वल्लभोऽमुपतिः प्रेयान् विटश्च रमणो वरः ॥३७॥

- त्रयोदश कान्ते । काम्यतेऽभिलष्यते कान्तः । इष्यते इष्टः । दया कृपा संजाता अस्येति दयितः ।
 १० “तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् ।” ^३ “इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये पे च ।” आकारलोपः । सैरेकः । प्र प्रकर्षेण इं कामसुखम् इतः प्राप्तः प्रीतः । पृषोदरादित्वात् आकारलोपः । प्रीणातिस्म प्रीतः । प्रीणाति प्रीणीते वा प्रियः । “^४नाम्युपधप्रोक्कृज्जं कः” । “^५स्वरादाविवर्णान्तस्य धातोरिजुवौ ।” कामोऽस्यात्तीति कामी । कामयते इत्येवंशीलः कामुकः । वल्लभे वल्लभः । “^६कृश्लिगर्दि-
 रासिवलिवल्लिभ्योऽभः ।” अभः प्रत्ययः । असूनां प्राणानां पतिः असुपतिः । अतिशयेन प्रियः प्रेयान् ।
 १५ “^७प्रियस्थिरस्फिरोरुवहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रत्यस्फवर्गेहिगर्वपिन्नवृद्धाघिवृन्दाः ।” विट शब्दे विटति कामोद्रेकशब्दं करोतीति विटः । “इगुपधेति कः । ‘रमु क्रीडायाम् ।’ रम् । रमते कश्चित् । तं प्रयुङ्क्ते इन् । अस्थोपधादीर्घः । “^८मानुवन्धानां ह्रस्वः ।” रमयतीति रमणः । “^९नन्त्यादेयुः ।”
 ११ “युवुभानामनाकान्ताः” अनः । “^{१२}कारितस्य” कारितलोपः । “^{१३}रपृ०” नस्य णत्वम् । वृणोति वर-
 यति वा वरः । कमिता । पतिः । वरयिता । भर्ता । भोक्ता । धवः । रुच्यः । अभीकः । “^{१४}अम्य-
 २० नुभ्यां कामपितरि को वा दीर्घश्च” जनयति कः । अभिकः । अमुकः । प्राणाधिनाथः । सेक्ता ।

सचित्री जननी माता

त्रयः मातरि । सूते जनयति सचित्री । जनयति जायतेऽस्यां वा जननी । माति गर्भोज्ञ
^{१५}मानयति वा माता । अम्वा ।

जनकः सचिता पिता ।

२५

त्रयः पितरि । जनयति उत्पादयतीति जनकः । पुत्रान् सृजते (सूते) सचिता । अहितात् पाति रक्षतीति पिता । “उणादौ” पा रक्षणे, पातीति पिता । ‘स्वस्त्रादयः’^{१६} । “स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृ क्षत्तृहोतृप्रशास्तृपितृमातृदुहितृजामातृभ्रातरः” एते शब्दास्तृनप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

१. ‘चतुष्षष्टिकलाऽभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी । प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री स्ववशेति चेति कात्यः’ इत्यमरकोशे क्षी० स्वां० । २. कां० रू० पू० ५०८ । ३. का०सू० २।६।४४ । ४. का०सू० ४।२।५१ । ५. का०सू० ३।४।५५। इतीप् । ६. का० उ० सू० ३।१२ । ७. पा०सू० ६।४।१५७। इति प्रियशब्दस्य प्रादेशः । ८. “इगुपधज्ञाप्रोकिरः कः” पा०सू० ३।१।१३५। ९. का०सू० ३।४।६५। इति ह्रस्वः । १०. का०सू० ४।२।४९। इति युप्रत्ययः । ११. का०सू० ४।६।५४। इति योरनादेशः । १२. का०सू० ३।६।४४। इतीनो लोपः । १३. का०सू० २।४।४८। १४. कातन्त्रे नैतत्सूत्रमुपलब्धम् । जैनेन्द्रव्याकरणे-“शृङ्खलि-
 कोदरिके” त्यादि सूत्रम् ४।१।१७। तेन कप्रत्ययान्तः पक्षे दीर्घान्तश्चाभिकोऽभीक इति निपातितः । १५. मानयतीत्यर्थः, विग्रहस्तु मातीत्येव । मा माने । तृच् प्रत्ययान्तः । १६. का० उ० २।४२ ।

देहापघनकायाङ्गं वपुः संहननं तनुः ॥ ३८ ॥

कलेवरं शरीरं च मूर्तिः

दश देहे । देहश्च अपघनश्च कायश्च अङ्गं च । समाहारसमासत्वादेकवचनम् । दिह । देग्धीति देहः । “^१दिहिहिहिहिषिष्वसिष्वथ्यतीष्यातां च” । एषां णो भवति । अपहन्यते अपघनः । “मूर्तो^२ घनिश्च” अल् । चिञ् चयने । चि । चीयतेऽसौ कायः । “^३शरीरनिवासयोः कश्चादेः” चिनोतेः शरीरे निवासे चार्थे घञ् भवति आदेशश्च को भवति । उख, णख, वख, मख, रख, लखि, इखि, वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, स्वगि, इगि, रिगि, लिगि गत्यर्थाः । अङ्गति मरणं गच्छतीति अङ्गम् । उप्यन्ते पुरुषार्था अनेनेति वपुः । ‘ऋ^४पृवपिचक्षिजनितनिघनिभ्य उस्’ एभ्य उस् प्रत्ययो भवति । संहन्यन्ते संपद्यन्ते धातवोऽत्र संहननम् । धातुभिः रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुकैस्तन्यन्ते तनुः । तनूः । उणादौ तनुवित्तारे । तनोतीति तनूः । “कृषि^५चमितनिघनिघनिभ्य उस्” एभ्य ऊप्रत्ययो भवति । कलते स्थिरत्वं गच्छति कलेवरम्^६ । कडति माद्यति वा कलेवरम् । कडेवरं च । अमरसिंहभाष्ये^७ ‘कलयते कलेवरम् ।’ शीर्यते क्षयं गच्छति रोगज्वरादिभिः शरीरम् । ‘कृ^८शृशौण्डभ्य ईरः ।’ एभ्य ईरप्रत्ययो भवति । उणादित्वात् । ‘मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः’ मूर्छ । मूर्छनं मूर्तिः । स्त्रियां^९ क्तिः । ‘घोषवत्योश्च कृति’^{१०} इति नेट् । “राल्लोपः (प्यौ)”^{११} इति छकारलोपः । “नामिनावोदकुर्तुरोर्व्यञ्जने”^{१२} दीर्घः । व्यञ्जनम्^{१३} । प्रथ० सिः । “रेफ०^{१४} इति विग्रहः । १५ वर्षम् । पुरम् । पिण्डम् । क्षेत्रम् । गोत्रम् । घनः । पुद्गलः । प्रतीकः । अवयवः ।

अस्मिन् भवः

अस्मिन् काये भवः कायभवः । देहभवः । अपघनभवः । अङ्गभवः । वपुर्भवः । संहननभवः । तनुभवः । कलेवरभवः । शरीरभवः । मूर्तिभवः । कायजः । देहजः । अपघनजः । अङ्गजः । वपुर्जः । संहननजः । तनुजः । कलेवरजः । शरीरजः । मूर्तिजः । एतानि पुत्रनामानि भवन्ति । भव प्रयोगे । २०

सुतः ।

पुत्रः सूनुरपत्यं च तुक् तोकं चात्मजः प्रजा ॥ ३९ ॥

अष्टौ पुत्रे । सूयते सुतः । पुनातीति पुत्रः । “^{१५}पूजो ह्रस्वश्च ।” अस्मात् ऋक्प्रत्ययो भवति धातोर्ह्रस्वश्च । कोऽणुणार्थः । तथा च सोमनीत्याम्^{१६}—“य उत्पन्नः पुनाति वंशं स पुत्रः । अथ पुत्राभ्यो नरकात्त्रायते वा पुत्रः । सूयते सूनुः । “^{१७}सूविषिभ्यां णवत् ।” आभ्यां नु प्रत्ययो भवति, स च णवत् ।” पूङ् प्राणिगर्भविमोचने ।” पल शल पल्ल पथे च गतौ ।” पत् नञ्पूर्वः । न पतन्ति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ तदपत्यम् । “नञि^{१८} पतेर्यः” यप्रत्ययः । नस्य^{१९} तत्पु० सिः । नपु०

१. का० सू० ४।२।५८। २. का० सू० ४।५।५८। इत्यल् घन्यादेशश्च । ३. का० सू० ४।५।३५ । ४. का० उ० २।४६। ५. का० उ० १।३१। ६. कले शुके मधुराव्यक्तध्वनौ वा वरं श्रेष्ठम् । “हलदन्तादि” ति सप्तम्या अलुक् । इत्यन्यत्र । ७. क्षीर० भा० २।६।७०। ८. का० उ० ३।४८। ९. का० सू० ४।५।७२। इति क्तिप्रत्ययः । १०. का० सू० ४।६।८०। ११. का० सू० ४।१।५८। १२. का० सू० ३।८।१४। १३. “व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत्” इति पूर्णे कातन्त्रसूत्रम् । १।१।२१। इति व्यञ्जनस्य परवर्णयोगः । १४. “रेफसोर्विसर्जनीयः” इति पूर्णम् । का० सू० २।३।६३। इति सकारस्य विसर्गः । १५. का० उ० ४।४१। १६. नी० वा० समु० ५ सू० ११ । १७. का० उ० २।८। १८. का० उ० ६।३०। १९. “नस्य तत्पुरुषे लोप्यः” इति पूर्णम् । का० सू० २।५।२२। इति नलोपः ।

अक्रा०^१ । मोऽनु०^२ । तोजति^३ तुक् । स्तूयते लोकम्^४ । आत्मनो जातः आत्मजः । प्रकथं
जाता प्रजा । “सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्द्धः ।” बालः, पाकः, अर्भकः, गर्भपोतश्च । पृथुकः, शिशुः,
शावः, डिम्भः, वट्टः, माणवकः, भ्रूणः ।

उद्वहस्तनयः पोतो दारको नन्दनोऽर्भकः ।

स्तनन्धयोत्तानशयौ—

५

अष्टौ बालकं । उद्वहतीति उद्वहः । खश् । तनोति विस्तारयति वंशम्, तनयः । “तनेः^६
कयः ।” पवते वातेन पोतः^७ । दारयति दृणाति वा तरुणीनां मनांसि ‘दारकः । ‘दुनदि समृद्धौ ।
नद् । अत एव नन्द । नन्दति कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते । “धातोश्च हेतो (हेतौ)” इज् । नन्दयतीति
नन्दनः । “नन्दि” वासिमदिदूपिसाधिशोभिर्वर्ध्म्य इनन्तेभ्योऽसंज्ञायाम्” युप्रत्ययः । स्वमते “नन्दादे-
र्युः” यु प्रत्ययः “^{११}युवभानाम०”— इति युस्थाने अनः । “^{१२}कारितस्यानामि० कारितलोपः ।
‘अर्हं मह पूजायाम्’ अर्हत्यर्भकः । “^{१३}मूकादयः ।’ मूकयुकाऽर्भकपृथुकवृकलृकभूकाः एते कप्रत्य-
यान्ता निपात्यन्ते । स्तनौ धयतीति स्तनन्धयः । “^{१४}शुनीस्तनमुञ्जकूलास्यपुष्पेषु घेढः ।” खश् ।
उत्तानः शेते उत्तानशयः । “^{१५}उत्तानादिषु कर्तृषु” अच् ।

स्त्री चेद् दुहितरं विदुः ॥४०॥

पुत्र्यां दुहितरं^{१६} दोग्धि मातृकुलं दुनोति वा विदुः कथयन्ति । तनया, पुत्री ।

१५

वयस्याऽली सहचरी सत्रीची सवयाः सखी ।

षट् सख्याम् । वयसा तुल्या वयस्या । वयसी च । आ समन्ताच्चित्तं लाति आलिः ।
स्त्रियामीः । बाली । सह सार्धं चरतीति सहचरी । सहाञ्चतीति सख्यङ् । “सहसन्तिरसां सत्रिसमिति-
रयः ।” ईप्रत्यये सत्रीची । सह वयसा वर्तते सवयाः^{१७} । समानं ख्यातीति सखिः (खा) । स्त्रियामीः
सखी । “^{१८}सख्यादयः” सखि अश्रि प्रहि इत्यादयो डिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

२०

आलीविवर्जितं मित्रं सम्बन्धो मित्रयुक् सुहृत् ॥४१॥

चत्वारो मित्रे । आली रहितानि वयस्यादीनि नामानि मित्रवाच्यानि स्युरित्यर्थः । ‘जिमिदा
स्नेहने’ । मेदति स्म मेदते स्म वा स्नेहयुक्तो भवति स्म वा मित्रम् । “^{२०}“चिमिदिभ्यां ऋक्” आभ्यां^{२१}

१. “अकारादसम्बुद्धौ मुश्च” इति पूर्णम् । का० सू० २।२।७। इति सेलोपो मुरागमश्च ।
२. “मोऽनुत्वारं व्यञ्जने” इति पूर्णम् । का० सू० १।५।१५। ३. “तुज हिंसावलादाननिकेतनेषु” । चुरादौ
वा णिच् । तोजति पितृधनमादत्ते “तुक्” इति टीकाशयः । ४. तौति पूरयति पितृकार्यं पितुरभावेऽपीति
लोकम् । तुः सौत्रो धातुहिंसावृत्तिपूर्तिषु । बाहुलकात्कः इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्युक्तम् । ५. का० सू० ४।५।५१।
इति जनेर्द्धः । ६. का० उ० २।२५। इति तन् धातोः कयप्रत्ययः । ७. पवते वातेनेति विग्रहस्तु नौका-
वाचकपोते बोध्यः । पुत्रार्थे तु पुनाति पवते वा वंशं पोतः । ‘मृगवाहस्यमि’— इति का० उ० ४।२७।
सूत्रेण तप्रत्ययः । ८. युवतिमनोदारणं बालद्वारा न घटते । अतो दृणाति दारयति वा मातृयौवनम्,
पित्रोर्निस्सन्तानता जन्यातिवेति तदाशयोऽभ्युन्नेयः । ९. का० सू० ३।२।१०। १०. का० सू० ४।२।४९।
“नन्दादे र्युः” इति सूत्रे दुर्गवृत्तिः । ११. का० सू० ४।६।५४। १२. का० सू० ३।६।१४। इतीनो लोपः ।
इनः कारितसंज्ञा कातन्त्रे । १३. का० उ० २।५।८। १४. का० सू० ४।३।३१। १५. का० सू० ४।३।१८।
अत्र दुर्गवृत्तिः । १६. दोग्धि पितृकुलं दहति दुनोति वा मातृकुलं दुहिता । स्वसादित्वात्तृन्प्रत्यय
इत्याशयः । १७. का० सू० ४।६।७१। इति सहस्य सश्रयादेशः । १८. समानं वयो यस्या इति विग्रहो
न्याय्यः । ज्योतिर्जनपदेति समानस्य सादेशः । १९. का० उ० ४।९। २०. का० उ० ४।४० । २१. मेदति
मेदते इति वर्तमानकालिको विग्रहो युक्तः, न तु भूतकालिकः ।

त्रक् प्रत्ययो भवति । ककारो यणवद्भावाऽर्थस्तेनागुणत्वम् । सम्यक् स्नेहेन बध्नातीति सम्बन्धः । मित्रं युनवतीति मित्रयुक् । सुष्ठु हरति चित्तं सुहृद्^१ । शोभनं हृदयं यस्य वा । सखा, स्निग्धः ।

सहकृत्वा सहकारी सहायः सामवायिकः ।

चत्वारः सहाये । सहकृतवान् सहकृत्वा । “कृजश्च^२” कनिष् प्रत्ययः । प्र० सि० । “घुटि^३ चा०” दीर्घः । सह समन्तात्करोतीति सहकारी । “नाम्न्यजातौ^४ णिनिस्ताच्छीत्ये” । सह सार्धम् अयते गच्छति सहायः । समवाये नियुक्तः सामवायिकः । इकण् ।

सनाभिः सगोत्रो बन्धुश्च सोदर्यः

चत्वारो भ्रातरि । समाना नाभिर्यस्य सनाभिः । समानं गोत्रं यस्य सगोत्रः । बध्नाति स्नेहेन बन्धुः । “पट्यसि” वसिहनिमनित्रपीन्दिकन्दिबन्धिवह्यणिभ्यश्च” एभ्य एकादशभ्य उः प्रत्ययो भवति । सोदर्यः । समानोदर्यः, सगर्भः, सोदरः, समानोदरः, आत्मीयः, स्वजनः, आतः, जातिः, १० सनाभेयः, सपिण्डः ।

अवरजोऽनुजः ॥ ४२ ॥

कनीयान्-

द्वौ (त्रयो) लघुभ्रातरि । अवरं पश्चाज्जातः अवरजः । (अनु) पश्चाज्जातः अनुजः । “सतमी-६ पञ्चम्योर्ज (म्यन्ते ज) नेर्ङः” । अयमनयोरतिशयेन युवा कनीयान् । “युवाऽल्पयोः” कन्वा । कनिष्ठः । १५

अग्रजो ज्येष्ठः

अग्रे जातः अग्रजः । प्रकृष्टो वृद्धो ज्येष्ठः । “वृद्धस्य^८ ज्यः” वृद्धशब्दस्य ज्य आदेशो भवति । पूर्वजः, वरिष्ठः, वर्षीयान्, अग्रियः ।

भ्रातृजानी स्वसाऽनुजा ।

त्रयो भगिन्याम् । भ्रातृजाता भ्रातृजानी^९ । स्वस (स्य) ति क्षप्यति क्षिपति चित्तं स्वसृ^{११} । २० ऋदन्तः । अनु पश्चाज्जाता अनुजा । भगिनी । भगनी च । जामिः । यामिश्र ।

भर्तुः स्वसा ननान्दा स्यात्-

स्यात् भवेत् । भर्तुः स्वसा भगिनी । ननान्दा । “टुनदि समृद्धौ” । नद् । “अत^{११} एव०” नञ् पूर्वः । न नन्दति भ्रातृजाया यस्यां सत्यां सा ननान्दा । “नञि^{१२} च नन्देऽर्त्तु दीर्घश्च” नञि उपपदे

१. सुष्ठु हरतीतिव्युत्पत्तिस्तु तान्तसुहृत्शब्दे सम्भवति । मित्रवाचकदान्तसुहृत्शब्दे तु शोभनं हृदयं यस्येत्येव । हृदयस्य हृदादेशः समासे । २. का०सू० ४।३।९०। ३. “घुटि चासम्बुद्धौ” । ४. का०सू० २।२।१७ । का०सू० ४।३।७६। ५. का०उ० १।६। ६. का०सू० ४।३।९१। ७. वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ८. वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ९. नान्यस्मिन्कोषे भ्रातृजानीशब्द उपलब्धः, नाप्येतत्साधकं किमपि व्याकरणसूत्रम् । भ्रातृजातेति विग्रहोऽपि भगिन्यर्थेऽसंगतः । तथापि भ्रात्रा सह मातृजातेति विग्रह्य बाहुलकादौणादिकमण्यप्रत्ययं जनधातोः प्रकल्प्य अणन्तत्वाङ्गीपि भ्रातृजानीति शब्दो ग्रन्थकारप्रत्ययात् कथञ्चित् समाधेयः । १० स्वस्यति क्षिपति चित्तं भ्रातुः स्वसेति विग्रहो बोध्यः । “अनु क्षेपणे” दिवादौ । सुपूर्वकात्ततः “सुज्यसेऽर्त्तु” इति ऋन्प्रत्ययः । कातन्त्रोणादौ तु “स्वसादयः” इति ‘श्वस् प्राणने’ इत्यत ऋन्प्रत्यये शकारस्य सकारे च “श्चक्षितीति स्वसा” इत्याह । अत्र क्षिपतीति दर्शनात् ‘अनु क्षेपणे’ इत्येव भाष्यकर्तुरभिप्रेत इति शायते । ११. “अत एव वर्जनादिदमनुबन्धानां नोऽस्तीति” दुर्गवृत्तिः । का० सू० ३।६।१०। १२. का० उ० सू० २।३९।

सति नन्देर्धातोर्ऋन् प्रत्ययो भवति अकारो दीर्घश्च भवति । ननान्दा इति जातम् ।

मातुलानी प्रियाम्बिका ॥ ४३ ॥

द्वौ मातुलभार्यायाम् । मातुलस्येयं भार्या मातुलानी । “इन्द्र”वरुणभवशर्वरुद्रहिमंयमारण्य-
यवयवनमातुलचार्याणामानुक् ईप्च्” । अम्बैव अम्बिका । “अम्बादिभ्यो ङलोकाः” ङ, ल, इक, प्रत्यया
५ भवन्ति । प्रिया चासौ अम्बिका प्रियाम्बिका ।

वैर्यरातिरभित्रीऽरिद्विद् सपत्नो द्विपद्विपुः ।

भ्रातृव्यो दुर्जनः शत्रुर्दुष्टो द्वेपी खलोऽहितः ॥ ४४ ॥

पञ्चदश शत्रौ । विशिष्टाम् ईं लक्ष्मीम् ईरयति निर्गमयति वीरः, वीरस्य कर्म वैरम्^१ ।
[वैरमत्यास्तीति वैरी ।] वैरिपुरमियर्ति गच्छति आरातिः^२ आरातिश्च । न मित्रम् अमित्रम् ।
१० अधर्मानृतादिवत् । “विपक्षे नञ्” इति सारस्वत^३ सूत्रम् । शत्रुत्वमियर्ति अरिः । द्वेष्टीति द्विद् ।
“सत्”सूद्विप्द् हृदुह्युजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि” क्तिप् । एकार्याऽभिनिवेशेन समानं
पतति सपत्नः । द्विष्टे द्विपन् । निष्ठुरं रयति रिपुः । “अरञ्जुतर्कुवल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुलधवः ।”
एते उप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तप्रापणार्थं प्राप्तस्य बाधनार्थम् । लक्षणेन यद्यदसिद्धं तत्सर्वं
निपातनात्सिद्धम् । तथा क्षीरस्वामिनः—^४ “रेपयति रिपुः । रेपृ गतो । भ्रातरं व्ययति मारयति
१५ “भ्रातृव्यः । दुष्टजनः दुर्जनः । परमभटारकश्रीयशःकीर्तिसम्भाषितग्रन्थे—

“प्रशस्या न नमस्याऽपि दुर्जनैर्या विधीयते ।

कण्टकः पादलग्नोऽपि न शुभाय प्रजायते ॥”

तथा च सूक्तिमुक्तावल्याम्^५—

“वरं क्षिप्रः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे

वरं भम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।

वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो

न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्धम विदुषा ॥”

अत्र ये केचिद् दुर्जनाः सन्ति, तेषां मस्तकेऽशनिपातो भवतु । तथा च^६—

“दुज्जण सुहियउ होठ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।

अमिउ विसैं वासरु तिमिण जिमि मरगउ कच्चेण ॥”

शृणाति शीर्यते वा^७ शत्रुः । दूष्यते निन्द्यते लोके दुष्टः । द्वेष्टि^८ द्वेष्टोऽस्त्यस्य वा द्विपन् ।

१. पा० सू० ४।१।४९। अत्र सूत्रे यमेत्यधिकः पाठः । २. “हायनान्तयुवादिभ्योऽण्” युवादित्वादर्ण ।
ततो मत्वर्थे “अत इनुठनौ” इतीन् । ३. “ऋ गतौ” । आङ्पूर्वकाद् ऋधातोर्ग्राहुलकादातिप्रत्ययः ।
अन्यत्र तु न राति सुखं ददातीति नञ् पूर्वकात् ‘रा’ (दाने) धातोः क्तिच् कौच संज्ञायामिति क्तिच् ।
४. “तदन्यतद्विरुद्धतदभावेपु नञ् वर्तते” इति वक्तव्यम् । “अन् स्वरे” सार० समा० १४ सू० । ५ का०
सू० ४।३।७४। ६. का० उ० सू० १।६। ७. क्षीर० भा० २।८।१०। ८. “व्येज् संवरणे” धातूनामनेकार्थ-
त्वादिसाऽर्थे वृत्तिः । आतोऽनुपगं कः । ९. निर्णयसागरयन्त्रालयप्रकाशितकाव्यमालासतम गुच्छेसूक्ति-
मुक्तावलौ ६१ श्लो० । १० सावयध० दो० २ । ११. “जच्वादयः । जवुश्मलु शिशुश्चवः । एते वप्रत्य-
यान्ता निपात्यन्ते” । इति का० उ० दुर्ग० वृ० ३।६६। १२. द्वेष्टोऽस्त्यस्येति केवलमर्याऽभिप्रायेण ।
विग्रहस्तु द्वेष्टीत्येव । शत्रुप्र० ।

खलति सजनगुणानाच्छादयतीति खलः । न मैत्रीं हिनोति गच्छति, न हितो वा, 'अहितः । अभियातिः, प्रतिपक्षः, असहनः, जिघांसुः, परिपन्थी, परः, असुहृत्, अपथी, पर्यवस्थाता, शात्रवः, प्रत्यनीकः, द्वेषणः, दुर्हृद्, दस्युः, अभिमन्थी ।

दीधितिर्भानुरुखौऽशुर्गभस्तिः किरणः करः ।

पादो रुचिर्मरीचिर्भास्तेजोऽर्चिर्गौर्धुतिः प्रभा ॥४५॥

षोडश किरणे । दीधिते दीप्यते दीधितिः । "दीधीडो डितिः" दीधीडो धातोर्डितिः प्रत्ययो भवति । 'भा दीतौ' भाति भानुः । "दाभारिवृज्यो नुः ।" एभ्यो नुः प्रत्ययः स्यात् । वसति रवौ ४ लस्रः । पुंसि । अश्नुते जगद् व्याप्नोति अंशुः । स्त्री । उणादौ । अनच् । अनितीति अंशुः । अनेः ५ शुः" अनेधातोः शुप्रत्ययो भवति । ["भा दीतौ" भाति भानुः । "दाभारी"] गां भुवं वभस्ति ५ गभस्तिः ।

"वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

कीर्यते किरणः । हलायुधे—'किरति विक्षिपति तमांसि किरणः ।' "कृभूभ्यां कनः । कीर्यते करः । पद्यते पादः । "पदरुजविशस्पृशोच्चां घञ् ।" रोचते रुचिः । म्रियते तमोऽनेन मरीचिः । स्त्रीनोः । उणादौ । म्रियते मरीचिः । "मृकणिभ्यामीचिः" आभ्यामीचिः प्रत्ययो भवति । भास्ते १५ क्पि सान्तो भास् । स्त्रीनोः । पुंस्येवेति शब्दभेदः । भाः । भासौ । भासः । तेजयतीति तेजस् । अर्चयतीति अर्चिः । अर्च्यते पूज्यते अर्चिः । "अर्चिः १ शुचिरुचिहुसृपिष्ठुदिष्ठुर्दिभ्य इतिः ।" गच्छति तमोऽत्रोदिते गौः । स्त्रीनोः । द्योतनं द्युतिः । द्योतते (वा) द्युतिः । प्रभाति प्रभा । रोचिः, अभीशुः, प्रद्योतः, रश्मिः, धृणिः, रुचिः, विभा, धाम, वसुः, केतुः, प्रग्रहः, उपधृतिः, धृष्णिः, पृश्निः, मयूखः, विरोकः, शेकश्च ।

दीप्तिज्योतिर्महो धाम रश्मिरूर्जो विभावसुः ।

सप्त तेजसि । दीप्यते दीप्तिः । द्योतते ज्योतिः । 'ज्योतिरादयः १३ । ज्योतिर्वहिरादयः । महति महः १४ । सान्तम् । दीयते सूर्येण नान्तम् धामन् । रशिः सौत्रः । रशति अश्नुते रश्मिः । "ऊर्ज बलप्राणनयोः ।" ऊर्जयतीति ऊर्जः । कः । ["विभा वसुर्यस्य स विभावसुः ।] (विभा । वसुः ।)

शीतोष्णप्रायपूर्वाञ्चौ तदन्ताविन्दुभास्करो ॥४६॥

तयोरन्तौ १६ तदन्तौ । इन्दुभास्करो । इन्दुश्च भास्करश्च इन्दुभास्करो । कथंभूतौ ? शीतोष्ण-

१. न मैत्रीं हिनोतिस्मेति भूते विग्रहो बोध्यः । गत्यर्थत्वाकर्तरि क्तः । न हितमस्मादिति रामाश्रमः । २. का० उ० सू० ६।२६ । ३. का० उ० सू० २।७ । ४. "वस् निवासे" वस् धातोः "स्तायि तश्चौ" त्यादि उ० सूत्रेण रक्प्रत्ययः सम्प्रसारणं च । ५. का० उ० सू० ५।४८ । अंशयति विभाजयति "अंश विभाजने" उप्रत्ययः व्युत्पत्त्यन्तरं च । ६. पुनरुक्तत्वापरिहार्यः । ७. वभस्ति दीपयति । "भस भर्त्सनदी-प्योः" । तिप्रत्ययः । पृषोदरादित्वात्षोडशादौ वर्णविकारवदोकारस्याकारः । ८. शा० सू० २।२।७२ । "पृषोदरादयः" इत्यत्र कारिकारूपेण पठितः । ९. का० उ० सू० ६।१४ । १०. का० सू० ४।५।१ । ११. का० उ० सू० ३।४३ । १२. का० उ० सू० २।४४ । १३. का० उ० सू० २।४५ । १४. महन् महः । मद्यते पूज्यते वेति रामाश्रमः । १५. वस्तुतस्तु "विभा" इति "वसु" इति च तेजसः संज्ञा । समुदितो "विभावसु" शब्दस्तु सूर्याग्निवाची । तदुक्तं "सूर्यवह्नी विभावसु" इति श्रम० को० ३।३।२२६ । १६. ते दीधित्यादयः शब्दा अन्ते ययोस्तौ तदन्तौ इत्येवं समासो बोध्यः । तयोरन्ताविति समासस्तु लेखकप्रमादात्प्रयुक्तः ।

- (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतोष्णौ (प्रायेण) पूर्वाञ्चौ ययोरिन्दुभास्करयोः (तौ) शीतोष्ण (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतदीधितिः । शीतदीधितिमान् । शीतभानुः । शीतभानुमान् । शीतांशुः । शीतांशुमान् । शीतगभस्तिः । शीतगभस्तिमान् । शीतकिरणः । शीतकिरणवान् । शीतपादः । शीतपादवान् । शीतरुचिः । शीतरुचिमान् । शीतमरीचिः । शीतमरीचिमान् । शीतार्चिः । शीतार्चिष्मान् । शीतभाः । शीतभावान् । शीतगुः । शीतगोवा^१ (मा) न् । शीतद्युतिः । शीतद्युतिमान् । शीतप्रभः । शीतप्रभावान् । शीतदीतिः । शीतदीतिमान् । शीतज्योतिः । शीतज्योतिष्मान् । शीतमहाः । शीतमहस्वान् । शीतधामा । शीतधामवान् । शीतरश्मिः । शीतरश्मिवान् । शीतोर्जः । शीतोर्जवान् । शीतविभावसुः । शीतविभावसुमान् । किरणशब्दानां (व्देन्यः) पूर्वं शीतशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उष्णशब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । उष्णदीधितिः । उष्णदीधितिमान् । उष्णभानुः । उष्णभानुमान् । उष्णोस्रः । उष्णोस्रवान् । उष्णांशुः । उष्णांशुमान् । उष्णगभस्तिः । उष्णगभस्तिमान् । उष्णकिरणः । उष्णकिरणवान् । उष्णपादः । उष्णपादवान् । उष्णरुचिः । उष्णरुचिमान् । उष्णमरीचिः । उष्णमरीचिमान् । उष्णभाः । उष्णभास्वान् । उष्णतेजाः । उष्णतेजस्वान् । उष्णार्चिः । उष्णार्चिष्मान् । उष्णगुः । उष्णगोमान् । उष्णद्युतिः । उष्णद्युतिमान् । उष्णप्रभः । उष्णप्रभावान् । उष्णदीतिः । उष्णदीतिमान् । उष्णज्योतिः । उष्णज्योतिष्मान् । उष्णमहाः । उष्णमहस्वान् । उष्णधामा । उष्णधामवान् । उष्णरश्मिः । उष्णरश्मिवान् । उष्णोर्जः । उष्णोर्जवान् । उष्णविभावसुः । उष्णविभावसुमान् ।

शशी चिधुः सुधासूतिः कौमुदीकुमुदप्रियः ।

कलाभृच्चन्द्रमाश्चन्द्रः कान्तिमानोपधीश्वरः ॥ ४७ ॥

- दश चन्द्रे । शशोऽस्वास्तीति शशी । विदधात्यमृतं चिधुः । “वौ धाजश्च^२” । सुधा अमृतं स्यते सूधासूतिः । कुमुदानामियं विकाश (स) हेतुत्वात्कौमुदी (ज्योत्स्ना तस्याः प्रियः कौमुदीप्रियः) । कुमुदानां प्रियः अभीष्टः कुमुदप्रियः । कलां विभज्जीति कलाभृत् । “मा माने” चन्द्रं मातीति चन्द्रमाः^३ । “चन्द्रे^४ मातेः” चन्द्रे उपपदे अस्मादसन् प्रत्ययो भवति । अगुणवद्भावादकारलोपः । भिन्नयोगः स्वार्थ एव । चन्दतीति चन्द्रः । “रक्षावि” तद्विवञ्जिशक्तिपिबुदिरदिमदिमन्दिचन्द्युन्दीन्दिभ्यो रक्” । कान्तिरस्यस्ति कान्तिमान् । ओपधीनामीश्वरः ओपधीश्वरः । इन्दुः, सोमः, राजा, रोहिणीवल्लभः, अञ्जः, श्रुतेशः, अत्रिनेत्रप्रसूतः । तथा चोक्तं यशस्तिलके—^५

“आहु नैत्रोत्थमत्रेः सुतममृतनिवे यं हरेर्नर्मचन्दु”

मित्रं पुष्यायुधस्य त्रिपुरविजयिनो मौलिभूपाविधानम् ।

वृत्तिक्षेत्रं सुराणां चटुकुलतिलकं बान्धवं कैरवाणां,

सम्प्रीतिं वस्तनोतु द्विजरजनियतिश्चन्द्रमाः सर्वकालम् ॥”

१. “मादुपधायाश्च०” इत्यादि बत्वविधायकं सूत्रम् । मवर्णाऽवर्णाभ्यान्मवर्णावर्णापधाच्च मतोर्मकारस्य वकारं शास्ति । अत्र तथात्वाभावात् “शीतगोमान्” इति वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु शीतगोशब्दस्य कर्मधारये ततो “गोरस्तद्वितलुकि” इति द्रव्यो दुर्वास्त्वात् “शीतगववान्” इति लुक्चन् । विद्वान्तस्तु नेदृशस्यले मनुविष्टः । तदुक्तं “न कर्मधारयान्मत्वर्थयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः” । २. का० उ० सू० ५।२। कुप्रत्ययः । ३. चन्द्रं कर्पूरं माति तुलयति सादृश्येनेति ग्रन्थोक्तविग्रहार्थः । चन्द्रमाह्लादं मिमीते तुलयति सादृश्येनेति विग्रहान्तरमप्युक्तम् । ४. का० उ० सू० ४।५७ । ५. का० उ० सू० २।१४। ६. आश्विनो ३।४७ श्लो० ।

प्रालेयांशुः, श्वेतरोचिः, शशाङ्कः, द्विजराजः, रजनिकरः, पीयूषरुचिः, निशीथिनीनाथः, जैवातृकः, मृगाङ्कः, दानायणीरमणः, मा^१ अप्युच्यते, सत्यभामेतिवत् । सुधामूर्तिः अमृतनिर्गमः, समुद्रनवनीतम् । देश्याम्^२ ।

उडूनि भानि तारक्षं नक्षत्रम्—

चत्वारो नक्षत्रे । अत्रति प्रभाम् उडूः^३ । स्त्रीक्रीवे । तथा चामरसिंहे^४—

“नक्षत्रमृक्षं भन्तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम् ।”

५

भाति दीप्यते भम् । क्षीरस्वामिनि—“भा विद्यतेऽस्य भम् ।” तरन्त्यनया तारा^६ । तारयति वा । ऋक्षोति हिनस्ति तम् ऋक्षम्^७ । नक्षति खे याति न तमः क्षि (क्ष) णोति वा नक्षत्रम् । “अमि^८ नक्षिकडिभ्योऽत्रः” । तारकं क्लीवेऽपि । यच्च^९ शाश्वतः—

“नक्षत्रे वाऽक्षिमध्ये च तारकं तारकाऽपि च ।

१०

लक्ष्यं च—

द्वित्रैर्व्योम्नि पुराणमौक्तिकघनच्छायैः स्थितं तारकैः”

तत्पतिः

(नक्षत्र पदार्थाभ्यः परं) पतिशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उडुपतिः । तारापतिः । ऋक्षपतिः । नक्षत्रपतिः । उडुराजः । उडुस्वामी । उडुनाथः । नक्षत्रेश्वरः । तारेन्द्रः ।

१५

निशा ।

क्षणदा रजनी नक्तं दोषा श्यामा क्षिपा

सप्त रात्रौ । निशाति तनूकरोति चेष्टामिति निशा, निशो वा । “आत^{१०}श्चोपसर्गै” । क्षणमवसरं ददातीति क्षणदा । तमसा रञ्जति रजनिः । स्त्रियामी । रजनी । रजनशब्दाद् वा नदा-
दित्वादीः । नेनेक्ति नक्तम् । दुष्टं दूषयति याऽत्र दोषा । आदन्तोऽव्ययाऽनव्ययः । श्यायन्ते गच्छन्ति रात्रिञ्चरा अत्र श्यामा । तथाऽनेकार्थ^{११} (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

२०

“श्यामा रात्रिस्तु विट्श्यामा श्यामा स्त्री मुग्धयौवना ।

श्यामा प्रियङ्गुराख्याता श्यामा स्याद् वृद्धदारिका ॥”

क्षिप प्रेरणे । क्षिप् । क्षेपणं क्षिपा । “^{१२}पाऽनुक्त्वभिदादिभ्यस्त्वङ् ।” क्षिप्यते स्वापेन जनैः, निर्गम्यते वा । तमी । तमा आदन्तोऽव्ययानव्ययः । तमिस्त्रा । तमस्विनी । विभावरी । नक्तमुखा । शर्वरी । त्रियामा । निशीथिनी । यामिनी । वसतिः । वासतेयी । रात्रिः ।

२५

१. “लोपः पूर्वपदस्य च अच्प्रत्यये तथैवेष्टः” इति कात्यायनवार्तिकम् । १५।३।८३। पा० सूत्रस्थं पूर्वपदलोपविधायकमत्र प्रमाणं बोध्यम् । २. “देशी” शब्दः प्रान्तभाषावाचकः । क्षीरस्वामि-
कृताऽमरभाष्येऽपि बहुत्र उपलभ्यते । साधुत्वमस्य पचादेराकृतिगणत्वात् “देवी” इतिवद् बोध्यम् । वस्तुत-
स्त्वयं शब्दो देशिक एव । ३. अत्रति प्रभां रक्षतीति ऊः । “अव रक्षणे” क्षिप् । “ज्वरत्वे” त्यूङ् । डयते
इति डुः । डयतेर्दुःप्रत्ययः । ऊश्चासौ डुश्चेति कर्मधारयः । नक्षत्राणां रक्षणाहत्वादाकाशोत्पतनशीलत्वाच्च
उडुत्वमुपपन्नम् । “इको ह्रस्वः” इत्यूकारस्य ह्रस्व इति टीकाशयः । ४. अम० को० १।३।२१। ५. क्षीर०
भा० १।३।२२। ६. भिदादित्वादङ् । अङि परे गुणः । निपातनाद्दीर्घः । ७. ऋषति गच्छति “ऋषी गतौ”
तुदादिः । औणादिकः सप्रत्ययः क्तिन् । पत्वकत्वक्षत्वानि । ऋक्षमिति । ८. का० उ० सू० ३।५। ९.
“यच्च शाश्वतः” इत्यारभ्य “स्थितं तारकैः” इत्यन्तः पाठः १।२।२२। क्षीरस्वामिभाष्यस्योऽत्र गृहीतः ।
१०. का० सू० ४।५।८४। ११. ९६ श्लो० श्लोका० । १२. का० सू० ४।५।८२ ।

करः ॥४८॥

(निशापर्यायात्परं) करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । निशाकरः । जगदाकरः । रजनीकरः । नक्तङ्करः । दोषाकरः । श्यामाकरः । क्षपाकरः ।

तरणिस्तपनो भानुर्ब्रध्नः पूषाऽर्यमा रविः ।

५

तिग्मः पतङ्गो द्युमणिर्मार्तण्डोऽर्को ग्रहाधिपः ॥४९॥

इनः सूर्यस्तमोऽध्वान्ततिमिरारिविरोचनः ।

- सप्तदश सूर्ये । तरन्त्यनेनेति तरणिः । “ऋतृ^१सृष्टृज्धम्यश्चविष्टतिप्रहिम्योऽनिः ।” तपति त्रिलोकीं तपनः । भाति दीप्यते करैः भानुः । “^२दाभारिवृम्यो नुः” नुः प्रत्ययः । “ब्रन्ध ब्रन्धने” ब्रन्धाति जन्तुदृष्टीर्ब्रध्नः । “^३बन्धेव्रधिश्च” । अस्मान् क् प्रत्ययो भवति ब्रध्वादेशश्च । इकार उच्चारणार्थः ।
- १० पुष पुष्टौ । पुष्णाति वर्धते तेजसा पूषा । पूषादयः— “पूषन्नर्यमनुक्षध्वन्लोहन्मातरिध्वन्क्लेदन्स्नेहन्मूर्धन्शूषन्दोषन्” एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । इयतीति अर्यमा । ‘ऋ गती’ । रूयते सूर्यते रविः । “इः “सर्वधातुभ्यः” । तीतिक्षतीति तिग्मः । “युजिरुचित्वां ष्मक्” । पतति नक्षत्रपथे पतङ्गः । “तृ-^४पतिम्यामङ्गः” । आभ्यामङ्गः प्रत्ययो भवति । दिवो मणिरिव द्युमणिः । मृतण्डस्यापत्यं मार्तण्डः । मृतण्डश्च । आकाशमियति अर्कः । उणादौ “अर्च पूषायाम् ।” अर्च्यते अर्कः । “^५इण्भीकापाशत्य-
- १५ चिक्कदाधाराभ्यः कः” एभ्यः कः प्रत्ययो भवति । ग्रहाणामधिपः स्वामी ग्रहाधिपः । एतीति इनः । “^६इण्जिकृपिम्यो नक्” । सुवति (प्रेरयति कर्मणि) लोकान् सूर्यः । “सूर्यरुच्याव्यध्याः^७ कर्तरि” । सूर्य इति यप्रत्ययान्तो निपातः । तमश्च ध्वान्तं च तिमिरश्च तमोऽध्वान्ततिमिराः, तेषामरिः,— तमोऽरिः, ध्वान्तारिः, तिमिरारिः । विरोचते इत्येवंशीलो विरोचनः । “^८रुचादेश्च व्यञ्जनादेः” । रुचा-देर्गणाद् व्यञ्जनादेर्युः भवति । आदित्यः, सविता, सहस्रकिरणः, प्रद्योतनः, भास्करः, तिग्मांशुः, दिनमणिः,
- २० भास्वान्, विवस्वान्, हरिः, विकर्तनः, भगः, गोपतिः, दिनकरः, सूरः शूरश्च, अंशुमाली, मिहिरः, तिमिर-रिपुः, अंशुमान्, अंशुः, हरिदश्वः, सप्ताश्वः, प्रभाकरः, भानुमान्, हंसः, खगः, मित्रः, चित्रभानुः, अहर्पतिः, कर्मसाक्षी, जगच्चक्षुः, द्वादशात्मा, त्रयीतनुः ।

दिनं दिवाऽहर्दिवसो वासरः—

- पञ्च दिवसे । “दोऽवखण्डने” द्यति खण्डयति अन्धकारमिति दिनम् । “दोनात^{१२} इ (द्यतेरि) च” द्यते नैप्रत्ययो भवत्याकारस्येच्च । रविर्दी [र्वान् दी] प्यतेऽत्र; आदन्तमव्ययम् दिवा । अदन्तं क्लीबम् । दिवं विदन् । न जहाति काल (रवि)महः । “नजि^{१३} जहातेः” इति क्तिप् (कनिः) । दीव्यतीति दिवसः^{१४} । दिवसम् । “^{१५}वेतसवाहसदिवसकनसाः” एतेऽसप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वासयत्यत्र वासरः^{१६} । वासोऽपि । उभयम् । “देवि^{१७}वटिजठिभ्रमिवासिम्योऽरः” एभ्योऽर् प्रत्ययो भवति । द्युः । घसः ।

१. का० उ० सू० २।४३ । २. का० उ० सू० २।७ । ३. का० उ० सू० २।५२ । दुर्गवृत्तिश्च । ४. का० उ० सू० २।५ । ५. का० उ० सू० ३।१४ । ६. का० उ० सू० १।५७ । ७. का० उ० सू० ५।२२ । ८. का० उ० सू० २।५७ । ९. का० उ० सू० २।५१ । १०. का० सू० ४।२।३० । ११. का० सू० ४।४।३१ । १२. का० उ० सू० ६।३७ । १३. का० उ० सू० २।४ । १४. दीव्यन्ति क्रीडन्ति प्राणिनोऽत्र दिवस इत्यपि । १५. का० उ० सू० ३।११ । १६. “वास उपसेवायाम्” वासयति सूर्यालोकं प्राणिनं वा वासरः । विग्रहे “अत्र” इति पदमधिकम् । १७. नैतत्सूत्रम् का० उणादौ लब्धम् । तत्र “कृवाभ्यः सरक्” ३।६२ इति सूत्रम् । वातीति वासरः, वात्रातोः सरक् प्रत्यय इत्युक्तम् । तत्रैव चतुर्थपादे ३३ तमपरमपि सूत्रम् “मद्यसिचशिवासिभ्यः सरः” इति वासिधातोः सरप्रत्यय उक्तः । वासयतीति वासरः । कौमुदीस्यमुणादिसूत्रम् “अर्तिकमिचमिभ्र-मिदिविवासिम्यश्चि” ३।१२७ इति वासिधातोरसप्रत्ययः ।

तत्करश्च सः ॥ ५० ॥

दिनकरः, दिवाकरः, अहस्करः, दिवसकरः, वासरकरः, इत्यादि सूर्यनामानि भवन्ति ।

चक्रवाकाब्जपर्यायबन्धुः—

चक्रवाकश्च अब्जं च चक्रवाकाब्जे, तयोश्चक्रवाकाब्जयोः (परत्र) बन्धु शब्दप्रयोगे सूर्य-
नामानि भवन्ति । चक्रवाकबन्धुः । अब्जबन्धुः । पद्मबन्धुः । कमलबन्धुः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

५

कुमुदविप्रियः ।

कुमुदानां (परत्र) विप्रियशब्दे प्रयुज्यमाने सूर्यनामानि भवन्ति । कुमुदविप्रियः । कैरवविप्रियः ।
कुमुदविवल्लभः । इत्यादि ।

यमुनायमकानीनजनकः सविता मतः ॥ ५१ ॥

यमुनाजनकः । यमजनकः । 'कानीनजनकः । सविता । मतः कथितः ।

१०

वाहोऽथस्तुरगो वाजी हयो धुर्यस्तुरङ्गमः ।

सप्तिरर्वा हरी रथ्यः—

एकादशाश्वे । वाह्यते गम्यतेऽश्ववाहैर्वाहः । तथाऽनेकार्थं^२ (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

“वाहो युग्यं घनो वाहो वाहके वाह इत्यपि ।

वाहो मानविशेषश्च वाहो बाहुरिति स्मृतः ॥”

१५

“अशू व्यातौ ॥ अश् । अश्नुते व्याप्नोति वेगेनाभीष्टस्थानमित्यश्वः । अथवा “अश् भोजने”
अश्नाति भक्षयति मुद्गादीनित्यश्वः । “अशिलटिलटिविशिष्यः कः” । वमात्रः । “घोषवत्योश्च
कृति” नेट् । “उरो (रसा) गच्छतीति उरगः । “डोऽ^५ संज्ञायामपि” । पूर्वमश्वानां वाजा अभूवन्निति
श्रुतिः । वाजाः सन्त्यस्य वज्रतोत्येवंशीलो वा वाजी । इदन्तोऽपि, वाजिः । तथा हैमनाममालायाम्^७—

“वाजं वाजस्तु पक्षेऽपि मुनौ निःस्वनवेगयोः ।”

२०

हिनोति गच्छति वर्धते (वा) अनेन हयः । धुरि सङ्ग्रामे साधुर्धुर्यः^८ । “यदुगवादितः” । तुरं
(रेण) गच्छति तु (तो) तोर्त्ति त्वरते वा तुरङ्गमः^{१०} । “गमश्च^{११}” नाम्नुपपदे गमेश्च संज्ञायां खो भवति
“घात्वादेः^{१२} षः सः” । सप्तयध्वानं गच्छतीति सप्तिः । “सपेस्तिततितनः” सपेर्धातोस्ति तति तन् एते
प्रत्यया भवन्ति । अर्वति गच्छति अनेन नान्तः, ^{१४}अर्वन् । हरत्यनेन हरिः । रथे साधू रथ्यः^{१५} । गन्धर्वः,
ताक्ष्यः, ययुः, घोटकः, अर्दनिः^{१६}, वीतिः, पीतिः ।

२५

१. कानीनः कर्णः । कन्याऽवस्थायां कुन्त्याः कर्णादुत्पन्न इति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया ।

२. ११ श्लो० श्लोका० । ३. का० उ० सू० २।१।४. का० सू० ४।६।८०। ५. भ्रान्तोऽयं पाठः । उचितस्तु तुरेण
वेगेन गच्छतीति तुरगः । ६. का० सू० ४।३।४७। ७. अने० स० २।७।८। ८. धुरं वहतीति धुर्यः । “धुरो यङ्ङकौ”
इत्यन्यत्र । ९. का० सू० २।६।११। १०. तुरपूर्वकाद्गमेः “गमश्च” इति खे तुरङ्गमः । तोतोर्त्ति त्वरते वेति विग्रहे
तत्सिद्धिप्रकारोऽन्यथा कल्पनीयः । ११. का० सू० ४।३।४५। १२. का० सू० ३।८।२४। १३. का० उ० सू०
५।३।८। ४. “अर्व गतौ” बाहुलकात्कनिन् । १५. “रथं वहतीति सुवचः । “तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्”
इति यत् । १६. अर्दनिशब्दस्याश्वार्थे प्रमाणं मृग्यम् । कोशान्तरेऽर्दनिशब्दार्थश्चेत्यम्—“अर्दनी चार्दनि-
रपि स्त्रियः स्युः प्रार्थनाऽर्थना” कल्प० को० १।१।२१। अर्वतीशब्दोऽश्विनीपर्यायस्तु सर्वसम्मतः । “वीति”
“पीति” शब्दयोरश्वार्थे प्रमाणमघस्तात् । “वीतिः सप्तिर्दधिकावा वातस्कन्वार्थ इत्यपि” कल्प० को० १।५।
१९३। “पीतिः पाने सपूर्वा तु सहपाने ह्ये पुगान्” विश्व० ।

अश्वशब्दस्य (ब्दात्) पूर्वं यदि सप्तादि (तशब्दः) तदा सूर्यनामानि भवन्ति ।
सतवाहः । सप्ताध्वः । सततुरगः । सतवाजी । सतहयः । सतधुर्यः । सततुरङ्गमः । सतसतिः । सतार्वा ।
सतहरिः । सतरथ्यः ।

५

खं विहायो वियद् व्योम गगनाकाशमम्बरम् । द्यौर्नभोऽभ्रोऽन्तरीक्षं च-

- एकादश गगने । खनति शून्यत्वेन खन्यते वा 'खम् । विजहाति सर्वं विहायः । अवाय विहायसां
पक्षिणां मार्गं विहं यच्छति वियत् । (अथवा वीनां पक्षिणां मार्गं यच्छति वियत्) । अमरेन्द्रभाष्ये—
“वियच्छति^३ विरमति वियत् ।” वायुना वीयते (व्ययति व्ययते वा) व्योमम् । “स्त्रिव्यवि^५मविज्वरि-
१० त्वरासुपधायाः” एपासुपधाया वकारस्य चोऽट् भवति । “सर्वधातुभ्यो मन्^३” (इति विपूर्वकाद्वैमन्) । गम्यते
सर्वमनेन गगनम्^६ । क्लीवे वा । गच्छत्यनेन गगनं वा । आकाशान्ते सूर्यादयोऽत्राकाशम् । न काशते वा
छान्दसो दीर्घः । अग्नौते शब्दायते अम्बरम् । दीव्यन्ति पक्षिणोऽत्र द्यौः । स्त्रियाम् । नहति व्रज्जाति
सर्वमात्मना सान्तम् नभः । नभम् इत्यदन्तम् नभसं च । न भ्राजतेऽभ्रम् । अन्तः ऋक्षाण्यत्र अन्तरीक्षम् ।
पुषोदरादित्वम् । द्यावाभूम्योरन्तरीक्षयते वा अन्तरिक्षम्, अन्तरीक्षं च । मरुद्वर्त्मन् । तारापथः । पुष्करम् ।
१५ विष्णुपदम् । त्रिदिवम् । नाकम् । अनन्तम् । सुरवर्त्म । महाव^७ (वि) लम् । देश्याम् ।

मेघवायुपथोऽप्यथ ॥ ५३ ॥

- मेघशब्दाग्रे वायुशब्दाग्रे च पथशब्दे प्रयुज्यमाने आकाशनामानि भवन्ति । मेघपथः । मेघमार्गः ।
घनपथः । घनमार्गः । पर्जन्यपथः । पर्जन्यमार्गः । मिहिरपथः । मिहिरमार्गः । नभ्राट्पथः । नभ्रामार्गः ।
तडित्पतिपथः । तडित्पतिमार्गः । सौदामिनीपतिपथः । सौदामिनीपतिमार्गः । वायुपथः । वायुमार्गः ।
२० वातपथः । वातमार्गः । अनिलपथः । अनिलमार्गः । मरुत्पथः । मरुन्मार्गः । समीरणपथः । समीरण-
मार्गः । गन्धवाहपथः । गन्धवाहमार्गः । श्वसनपथः । श्वसनमार्गः । सदागतिपथः । सदागतिमार्गः ।

तच्चरः खेचरः-

- तत्र आकाशे चरतीति तच्चरः । आकाशाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने विद्याधरनामानि भवन्ति ।
खचरः । विहायश्चरः । वियचरः । व्योमचरः । नभश्चरः । गगनचरः । अम्बरचरः । आकाशचरः । अन्तरिक्ष-
२५ चरः । मेघपथचरः । मेघमार्गचरः । वायुपथचरः । वायुमार्गचरः । घनपथचरः । घनमार्गचरः । घनाघन-
पथचरः । घनाघनमार्गचरः । जीमूतपथचरः । जीमूतमार्गचरः । अभ्रपथचरः । अभ्रमार्गचरः । बलाहक-
पथचरः । बलाहकमार्गचरः । पर्जन्यपथचरः । पर्जन्यमार्गचरः । इत्यादिनामानि विद्याधरस्य ज्ञेयानि ।

तद्गः,

- तत्र गगने गच्छतीति तद्गः । गगनाग्रे “ग” शब्दे प्रयुज्यमाने शकुन्तनामानि भवन्ति ।
३० खगः । विहायोगः । वियद्गः । व्योमगः । नभोगः । गगनगः । द्योगः । आकाशगः । अन्तरिक्षगः ।

१. “खनु अवदारणे” डप्रत्ययः । “खर्व गतौ” खर्वत्यस्मिन्निति वा विग्रहः । अत्रापि डः । २. उक्त-
विग्रहे “अ्रोहाक् त्यागे” हाघातोः “वहिहाषाञ्च्यश्छन्दसि” ४।२२। इत्यसुन् शित्वं च । शित्वाद्युक् ।
विशेषेण हाययति गमयति विमानादीन् इत्यपि बोध्यम् । “हय गतौ” ण्यन्तादसुन् । ३. क्षीर० भा० १।२।२।
४. का० सू० ४।१।५७। ५. का० उ० सू० ४।२८। ६. “गमेर्गश्च” इति युच् गश्चान्तादेशः । ७. महाविल-
शब्दस्याकाशवाचकत्वेऽमरकोपमघस्तात्प्रमाणम्—“तारापथोऽन्तरीक्षं च मेघाच्चा च महाविलम्”
१।२।२। क्षेपक ।

मेघपथगः । मेघमार्गगः । इत्यादिनि ज्ञातव्यानि ।

पक्षी पत्री पतत्र्यपि ।

शकुन्तिः शकुनिर्विश्च पतङ्गो विष्करोऽन्यथा ॥५४॥

सप्त पतङ्गे । पक्षाः सन्त्यस्य पक्षी । पत्राणि सन्त्यस्य पत्री । नान्तः । पततीति पत्रिः । त्रिप्रत्यये इदन्तः । पतत्राणि सन्त्यस्य पतत्री । नान्तः । पततीति पतेः परतोऽत्रिप्रत्यये इदन्तो वा पतत्रिः । हलायुध-
भाष्यकारेण डाल्लणिकेन—पत्रिशब्दः पत्रिन् नकारान्तः पत्रिरिकारान्तश्च व्याख्यातः । अमरसिंह-
नाममालायाम्—

“पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजाः ।

नगौकोवाजिविकिरविविष्करपतत्रयः ॥”

इकारान्तः पत्रिशब्दः पठितोऽस्ति । भाष्यकर्त्रा क्षीरस्वामिना पतत्रिरिकारान्तो निषिद्धः । १०
“पतेरत्रिरिति” भ्रान्त्या पतत्रिं ग्रन्थकृदिदन्तं मन्यते । एवं कथितमस्ति श्रीमदमरकीर्तिना द्वयोर्वचनं प्रमाणम् । शब्दानां वैचित्र्यं वर्तते । नभसा गन्तुं शक्नोति शकुन्तः । शकुन्तिः । एवं शकुनिः । एवं शकुनी । शकुन्तः । शकुनः । द्वौ अदन्तौ । वयतीति विः । “वेजो ङिः” । पतेन वेगेन गच्छतीति पतङ्गः ।
विकिरति पत्राणि विष्किरः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

सुडागमः । विकिरश्च ।

जाङ्गलं पिशितं मांसं पलं पेशी च—

पञ्च मांसे । गत्यते अद्यते जाङ्गलं जङ्गलं च । पिश्यते रुधिरादिभिः पूर्यते पिशितम् । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेनेति मांसम् । “वृत्तु”वदिहनिमनिकस्यशिकषिभ्यः सः” । एभ्यः सः प्रत्ययो
भवति । पलयते (पालयते) देहं पलम् । रुधिरादिभिः पिश्यते (पिशति) शरीरम् पेशी । ग्रामिषम् ।
रुच्यम् । तरसम् ।

तत्प्रियः ।

तस्य मांसस्य प्रियः । आमिषशब्दाग्रे प्रियशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । जाङ्गल-
प्रियः । पिशितप्रियः । मांसप्रियः । पलप्रियः । पेशीप्रियः ।

यातुधानस्तथा रक्षो—

द्वौ यातुधाने । यातूनि यातना धीयन्तेऽस्मिन् यातुधानः । रक्षतीति रक्षः । राक्षसः ।
कौणपः । क्रव्यादः । नैऋतः । नैकसेयः । नैकषेयश्च । विपुसेऽपि (कर्तुरः) अस्त्रपः) । कीनाशो नानार्थे ।

रात्र्यादिचर इष्यते ॥ ५५ ॥

१. अम० को० २।५।३४। २. क्षीर० भा० २।५।३४ । ३. का० उ० सू० ४।३। रामाश्रमस्तु-
वातीति विः । “वातेर्ङिच्च” इत्याह । ४. पतेन वेगेन गच्छतीति विग्रहे तत्साधुचं कल्पनीयम् । तादृशसूत्राऽ-
नुपलम्भात् । पतत्युड्ढयते इति पतङ्गः । “तृपतिभ्यामङ्गः” का० उ० सू० ५।२२। इत्यङ्गप्रत्ययस्तु
युक्तः । “तृपतिभ्यामङ्गः” इत्यङ्गप्रत्ययः । ५. “पृषोदरादयः” २।२।१७२। शा० कारिका । ६. “पिश अचयवे”
पिशति पिश्यते स्म वा पिशितम् । “पिशोः क्चि” उ० सू० ३।६५। इतीतन् । अथवा क्तः । इति रामा-
श्रमः । ७. का० उ० सू० ४।५३ । ८. रक्षन्त्यस्मादिति रक्षः । “सर्वघातुभ्योऽस्तुन्” । “भीमादयोऽघाताने”
इत्यन्यत्र ।

रात्रिशब्दाग्रे चरशब्दं प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । रात्रिचरः । निशाचरः । क्षणदा-
चरः । रजनीचरः । नक्तञ्चरः । दोषाचरः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

प्रारभ्यते स्वर्गवर्गः

सुतोऽदितेस्-

- ५ अदितिशब्दाग्रे सुतशब्दे प्रयुज्यमाने दैत्य (देव) नामानि भवन्ति । अदितिमुतः । अदिति-
तनयः । अदितिपोतः । अदितिदारकः । अदितिनन्दनः । अदित्यर्भकः । अदितिस्तनन्धयः ।
अदित्युत्तानशयः ।

तडिद्धन्वा सेन्द्रो देवः सुरोऽमरः ।

- १० पञ्च देवे । सह इन्द्रेण वर्तते इति सेन्द्रः । “दिबु क्री०” — दिव् । दीव्यन्ति क्रीडन्ति स्वर्गेऽ
प्सरोभिः सह विलसन्ति देवाः । अत्रा सिद्धम् । अथवा दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे
देवः । सुण्ड राजते सुरः । तथा सुरन्ति सुराः । “सुर ऐश्वर्ये” सुरा एषामस्तीति वा । “अर्शसादिभ्योऽच्” ।
यतोऽब्धिजा सुरा तैः पीता । न म्रियते अमरः । आदित्याः । त्रिदशाः । सुमनसः । स्वर्गांकसः । देवताः ।
गीर्वाणाः । ऋभवः । मरुतः । वृन्दारकाः । निर्जराः । अस्वप्नाः । विबुधाः । त्रिविष्टपसदः । लेखाः ।
सुपर्वाणः । अमृताशनाः । अनिमिपाः । दैवतम् ।

१५ स्वर्गोऽथ नाकश्च,

चत्वारः स्वर्गे । मुदितो जनः स्वरति शब्दं करोत्यत्र सान्तमव्ययम् । स्वर । “दिबु क्रीडादिपु” ।
दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्तः इति द्यौः । “दिवेर्दिविः” प्रत्ययो भवति । असौ सुण्ड अर्ज्यते स्वर्गः ।
“सू^३ भृम्यां गः” गप्रत्ययः । नास्त्यकं दुःखमत्र नाकः । उभयम् ।

तद्वासस्त्रिदशो मतः ॥ ५६ ॥

- २० तस्य स्वर्गस्य वासः, तद्वासः—स्वर्गवासः । द्योवासः, स्वर्गवासः, इत्यादीनि देवनामानि भवन्ति ।
तत्पतिः
तस्य देवस्य (स्वर्गस्य च) पतिः, तत्पतिः । देवपतिः, सेन्द्रपतिः, स्वर्गवासपतिः, स्वर्गपतिः,
नाकपतिः, नाकेन्द्रः, इत्यादिपर्यायनामानि इन्द्रस्य ज्ञेयानि ।

शक्र इन्द्रश्च शुनासीरः शतक्रतुः ।

२५ प्राचीनवर्हिः सुत्रामा वज्री चाखण्डलो हरिः ॥ ५७ ॥

शत्रुर्वलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि ।

वृत्रहा च सहस्राक्षो गीर्वाणेशः पुरन्दरः ॥ ५८ ॥

विडौजाश्चाप्सरोनाथो वासवो हरिवाहनः ।

मरुतश्च मरुत्वाँश्च वृषा चैरावणाधिपः ॥ ५९ ॥

३० शतमन्युस्तुरापाट् च पुरुहूतश्च कौशिकः ।

संक्रन्दनोऽथ मधवान् पुलोमारिर्मरुत्सखः ॥ ६० ॥

त्रयस्त्रिंशदिन्द्रे । पातुं शक्नोतीति शक्रः । “स्फायितश्चिवश्चिशकिक्षिपिभुदिरुदिमदिचन्दु-

१. “अर्श आदेरः” जै० सू० ४।११।५०। २. का० उ० सू० ६।५३। ३. का० उ० सू० ५।६०।

४. तस्मिन् स्वर्गे वसतीति तद्वासः । गप्रत्ययः । स्वर्गपर्यायार्थात् परत्र वासशब्दे प्रयुज्यमाने त्रिदशनामानि
भवन्तीत्यर्थः । ५. का० उ० सू० २।१४।

न्दीन्दिभ्यो रक्” । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवति इन्द्रः । रक् । शुन आदित्यः शीरो वायुस्तयोरपत्यमणो लुक्प्रभेदाद्वा, दीर्घे शुनाशीरः । तालव्यद्वयम् । शोभनं नासीरं कटकं वा यस्य स सुनासीरः । द्वौ दन्त्यौ । शु अव्ययं तालव्यमपि । अत्र पक्षे प्रथमस्तालव्यो द्वितीयो दन्त्यो भवति । तथा च शोभना नासीरा अग्रेसरा अस्य, शुनासीरः । शुः पूजायाम्, श्वशुरवत्^१ । शुनासीरयोरपत्यमित्येके । शतं क्रतवो यशस्य शतक्रतुः । प्राचीना प्राचीनमुखा बर्हिषी दर्भा यस्य सः । सुष्ठु त्रायते नान्तः सुत्रामा । वज्रं विद्यते यस्य स वज्री । आखण्डयति भिनत्त्यरीनाखण्डलः । हियते शचीकटाक्षैर्हरिः ।

“शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि”-

बलशत्रुर्गोत्रशत्रुः पाकशत्रुर्नमुचिशत्रुः, इत्यादीनि इन्द्रनामानि भवन्ति । वृत्रं दानवं यज्ञं वा हतवान् वृत्रहा । किप् । “(२) किब्) ब्रह्मभूणवृत्रेषु” किप् सहस्रमक्षीणि यस्य स सहस्राक्षः । गोर्वाणानां देवाना मीशः (गीर्वाणेशः) । विट्सु प्रजासु ओजो यस्य । पृषोदरादित्वाद् वृद्धिः । विड भेदने वा । विडं भेदकमोजो यस्य वा (विडौजाः^३) । अप्सरसां नाथोऽप्सरानाथः । वस्वपत्यं वासवः । हरिर्वाहनं^४ यस्य हरिर्वाहनः । पुण्यक्षये म्रियते च्यवते मरुत् । तान्तम् । मरुतो देवाः सन्त्यस्य मरुत्वान्^५ । वर्षति, नान्तम्, वृषा । ऐराव-
णानामधिपः (ऐरावणाधिपः) । शतं मन्यवः क्रतवोऽस्य शतमन्युः । “पह मर्षणे” । । षड् । “धात्वादेः^६ षः सः” । सहते कश्चित्तमपरः प्रयुङ्क्ते “धातोश्च^७ हेतौ” इज् । अस्योप० दीर्घः । साहि जाते । तुरपूर्वकः । तुरं त्वरितं साहयत्यभिभवत्यरीनिति तुराषाट् । “सहश्छन्दसि^८” विण् । “कारित्या०^९” कारितलोपः ।
वेलोपः^{१०} । “नहि^{११} वृत्तिवृष्टिव्यधिरुचिसहितनिषु कौ” किबन्तेषु प्रायकाराणां दीर्घः । तुरा जातम् । तुरासाह्-
निष्पन्नः । सिः । “व्यञ्जनान्ताच्च^{१२}” सिलोपः । “हश्च^{१३} च्छान्तेजादीनां डः” हस्य डः । “सहेः साडः षः^{१४}”
सस्य पत्वम् । रपरत्वात्परपदेऽपि सस्य षत्वम् । स्वमते अपिशब्दत्वात् । अथवा तुरं वेगं सहते तुराषाट् ।
“सह^{१५} श्छन्दसि” विण् पूर्ववत् । पुरु प्रभूतं हूतं यज्ञे यज्ञेष्वा (जे आ) हानं यस्य पुरुहूतः । जातमात्रोऽ-
दित्या कुशैराच्छादितत्वात् (कौशिकः) । तथा पुराणम्^{१६}—

“जातमात्रोऽथ भगवानदित्या स कुशैर्वृतः ।

तदा प्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥”

कुशैर्दमैश्चरति वा । अरिल्लीः सङ्क्रन्दयति सङ्क्रन्दनः । मङ्घ्र्यते पूज्यते नान्तो मघवा । “मङ्घ्रे^{१७} नर्लुगवन्तश्च” मङ्घ्रेः कनिः प्रत्ययो भवति, नलुगवन्तश्च । पुलोमस्या (ग्नोऽ) रिः पुलोमारिः । मरुतां पवनानां सखा मित्रः (त्रं) मरुत्सखः । दुश्च्यवनः । वृत्रारिः । बलसूदनः । वृद्धश्रवाः । जिष्णुः ।
वज्रधरः । वास्तोष्पतिः । गोपतिः । पर्जन्यः । हरिहयः । पूर्वदिक्पतिः । स्वराट् । गोत्रभिद् । अग्रधन्वा ।
हरिमान् । पाकशासनः । दिवस्पतिः ।

१. शु पूजायाम् अश्नुते व्याप्नोति “श्वशुरः” इति व्युत्पत्त्या “श्वशुर” शब्दो निष्पन्नः । तद्व-
च्छुनासीरशब्देऽपि शु शब्दः पूजार्थ इत्याशयः । २. का० सू० ४।३।८३। ३. वेवेष्टि व्याप्नोति विट् ।
“विण्लृ व्याप्तौ” किप् । विड् व्यापकमोजो यस्य स विडौजाः । पृषोदरादित्वादोकारस्योकारः । इत्यप्यु-
ह्यम् । ४. त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णाभानि यस्य त्र । हरिः स वर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेयसप्रभः । इति
शालिहोत्रोक्तप्रकारोऽश्वो हरिः । ५. मरुतो देवाः शास्यत्वेन सन्त्यस्येति यावत् । ६. का० सू० ३।८।२४।
७. का० सू० ३।२।१०। ८. का० सू० ४।३।६०। ९. का० सू० ३।६।४४। १०. “वेरपृक्तस्य” पा० सू०
६।१।६७। ११. पा० सू० ६।३।११६। १२. का० सू० २।१।४९। १३. का० सू० २।३।४६। १४. पा० सू०
८।३।५६। १५. का० सू० ४।३।६०। १६. श्लोकोऽयम् अभि० चि० २।८७। टीकायामप्येवमेवोपलभ्यते ।
१७. का० उ० सू० ५।४।

काष्ठा ककुब् दिगाशा च दक्षकन्या तथा हरित् ।

पङ् दिशायाम् । काशन्ते राजन्ते (नक्षत्रादयोऽत्र) काष्ठा^१ । कं स्कुम्भाति विस्तारयति ककुब्^२ । भान्तम् । दिशत्यवकाशं दिक् । “अन्विदधृक् स्तग्दिगुष्णिहश्च” इति साधुः । आश्रुते आशा । दक्षः प्रजापतिः, तस्य कन्या, दक्षकन्या । हरत्यनया हरित्^३ ।

५

तत्पर्यायपरं योज्यं प्राज्ञैः पालगजाम्बरम् ॥ ६१ ॥

काष्ठादिनामतः परं योज्यं प्राज्ञैः विद्वद्भिः पालगजाम्बरम् । काष्ठापालः । ककुप्पालः । दिक्पालः । आशापालः । दक्षकन्यापालः । हरित्पालः । पालप्रयोगे दिग्गजनामानि भवन्ति । काष्ठागजः । ककुब्गजः । दिग्गजः । आशागजः । दक्षकन्यागजः । हरिद्गजः । अम्बरशब्दप्रयोगे दिग्गजनामानि भवन्ति । काष्ठाऽम्बरः । ककुब्गम्बरः । दिग्गम्बरः । आशाऽम्बरः । दक्षकन्याम्बरः । हरिदम्बरः ।

१० तथा च—

“गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिग्गम्बराः ।

पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्तु परमा गतिम् ॥”

एवंविधा मुनयो भव्यानां शरणं भवन्तु जन्मनि जन्मनि ।

पवनः पवमानश्च वायुर्वातोऽनिलो मरुत् ।

१५

समीरणो गन्धवाहः श्वसनश्च सदागतिः ॥ ६२ ॥

नभस्वान् मातरिश्वा च चरण्युर्जवनस्तथा ।

प्रभञ्जनः—

पञ्चदश वायौ । पवते जगत् पवित्रीकरोति पवनः । शुच् । “पूङ् पवने ।” पू । पवते पवमानः ।

“पूङ् यजोः शानङ्” आनमात्रः । अन्वि०^६ अनिच०^७ नाम्यन्तगुणः । “ओअव् ।” “आन्मोऽन्त

२०

आने” मोऽन्तः । वातीति वायुः । “१० कृवापाजी”—ति उण् । वाति सर्वत्राऽस्वलितं वा वायुः । वाति

अस्वलितं याति, वातः । “११ मृगूवाहस्यमिदमिल्लूपम्यस्तः” । अनेन जगत् अनिति प्राणिति, न

निलति वा अनिलः । “निल गहने” । क्षुद्रजन्तवो भ्रियन्ते स्पर्शेनास्य मरुत् । तान्तम् । “१२ मृगोवतिः”

उतिप्रत्ययः । समन्तादीरयति समीरणः । गन्धं वहति गन्धवहः । गन्धवाहः । गन्धवाही । श्वसन्त्यनेन

श्वसनः । सदा सर्वकालं गतिर्यस्य स सदागतिः । नभ आकाशमस्यास्तीति नभस्वान् । मातरि

२५

रेतः श्वयति वर्धते नान्तो मातरिश्वन् । मातरिश्वेव भवति^{१३} मातरिश्वा । चराचरं याति चरे-

१. “काशु दीतौ” “हनिकुशि” इत्यादि २।२। पा० उ० सूत्रेण कथन् । २. कं वातं स्कुम्भाति विस्तारयति । क्तिप् । पृषोदरादित्वात्सलोपः । केनादित्येन जलेन वा कुत्सितानि भानि नक्षत्राणि यस्यामिति “ककुभा” इत्यावन्तोऽपीति केचित् । ३. का० सू० ४।३। ७३। ४. हरन्ति नयन्ति अनया हरित् दिग्-ज्ञानेनैव कञ्चित् कुतश्चित् कुत्रचिन्नयति । “दृसृहियुपिम्य इतिः” इतीतिः । ५. का० सू० ४।४। ८ । ६. “अन्विकरणः कर्तरि” इति पूर्णं सूत्रम् । का० सू० ३।२। ३२। इत्यन्विकरणः । ७. “अनि च विकरणे” का० सू० ३।५। ३। ८. का० सू० १।२। १४। ९. का० सू० ४।४। ७। १०. का० उ० सू० १।१। ११. का० उ० सू० ४।२७। १२. का० उ० सू० १।३०। १३. मातरि जनन्यां रेतः प्रसिक्तं यथा वर्धते, तथाऽन्तरीक्षे वर्धमानो वायुः “मातरिश्वा” इत्याशयः । क्षीरस्वामी तु—“मातरि खे श्वयति” इत्याह । रामाश्रमस्तु—“मातरि जनन्यां श्वयति वर्धते सप्तसत्करूपत्वात्” इत्याह । आपन्नसत्त्वाया दितेर्निद्राऽवस्थायां तत्कुक्षिप्रविष्टे नेन्द्रेण कुलिशद्वारा तद्गर्भस्यैवोनपञ्चाशच्छुक्लीकरणस्य पुराणप्रसिद्धत्वात्सप्तसत्कत्वमुपपन्नम् । “दु ओशिव गतिवृद्धयोः ।” विवधातोः “श्वन्नुन्नन्ति” ति कनिन्नन्तो निपातः सप्तम्या अलुक् च ।

रप्युः । “केवयुसुरण्वध्वर्वादयः” केववादयः शब्दा बहुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । तथा च द्विसन्धानकाव्ये^२—

“असूययाऽगम्य निशाम्य यां पुरो
विलज्जयाऽम्भःपरिणामिनीदशाम् ।

गता इवाभान्ति कुलाद्रिपेशला-

श्चरण्युलोलाः परिखाऽम्बुवीचयः ॥”

५

“जु” इति सौत्रो धातुर्गतौ । सौत्रा धातवोऽपि भ्वादौ पठ्यन्ते । जवतीति जवनः । “^३जुचङ्-
कम्यदन्द्रम्यसृग्धिज्वलशुचपतपदाम्” एभ्यो युर्भवति । सर्वा दिशाः प्रभनक्ति प्रभञ्जनः । जगत्प्राणः ।
पृषदृष्वः । स्पर्शनः । समीरः । हरिः । महाबलः । आशुगः ।

अस्य पर्यायपुत्रौ भीमाञ्जनात्मजौ ॥६३॥

अस्य पर्यायात् प्रभञ्जनादिशब्दात्परत्र पुत्रशब्दो दीयते तदा भीमहनुमतोर्नामानि भवन्ति । १०
पवनपुत्रः । पवनतनयः । पवमानतनयः । वायुपुत्रः । वायुतनयः । वातपुत्रः । वाततनयः । अनिलपुत्रः ।
अनिलतनयः । समीरणपुत्रः । समीरणतनयः । गन्धवाहपुत्रः । गन्धवाहतनयः । श्वसनपुत्रः । श्वसनतनयः ।
सदागतपुत्रः । सदागतितनयः । नभस्वत्पुत्रः । नभस्वत्तनयः । मातरिश्वपुत्रः । मातरिश्वतनयः ।
चरण्युपुत्रः । चरण्युतनयः । जवनपुत्रः । जवनतनयः । चलपुत्रः । चलतनयः । प्रभञ्जनपुत्रः । प्रभञ्जन-
तनयः । भीमस्य हनुमतश्च नामानि ज्ञातव्यानि ।

१५

तत्सखाऽग्निः,

तस्य वायोः सखा, तत्सखः । वायुशब्दाग्रे सखशब्दे प्रयुज्यमाने अग्निनामानि भवन्ति ।
पवनसखः । वायुसखः । अनिलसखः । वातसखः । मरुत्सखः । गन्धवाहसखः । समीरणसखः । श्वसनसखः ।
सदागतिसखः । नभस्वत्सखः । मातरिश्वसखः । चरण्युसखः । जवनसखः । चलसखः । प्रभञ्जनसखः । पवनेष्टः ।
पवमानेष्टः । इत्यादीनि अग्नेर्नामानि ज्ञातव्यानि ।

२०

शिखी वह्निः पावकश्चाशुशुक्षणिः ।

हिरण्यरेता सप्तार्चिर्जातवेदास्तनूनपात् ॥ ६४ ॥

स्वाहापतिर्हुताशश्च ज्वलनो दहनोऽनलः ।

वैश्वानरः कृशानुरुच रोहिताश्वो विभावसुः ॥ ६५ ॥

वृषाकपिः समीगर्भो हव्यवाहो हुताशनः ।

२५

एकविंशतिरग्नौ । “अक अग कुटिलायां गतौ ।” अगति वायुवशादूर्ध्वं गच्छतीत्यग्निः ।
शिखाऽस्त्यस्य शिखी । उह्यते वह्निः^४ । “^५अगिश्नुश्रियुवहिभ्यो निः” एभ्यो धातुभ्यो निः प्रत्ययो
भवति । पुनाति पावकः । आशु शोषयति रसान्^६ आशुशुक्षणिः । “^७आशौ शुपेः सनिक्” । “शुप

१. चरण्युशब्दोऽयम्; न तु चरेण्युः । द्विसन्धानेऽपि चरण्युशब्दस्यैव दर्शनात् । एतत्साधकमुष्णा-
दिसूत्रम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् (३।४८३) उपलभ्यते; नैवान्यत्र । वस्तुतस्तु वैदिकोऽयं प्रयोगः ।
“चरण् वरण् गतौ” कण्वादौ चरण् धातुर्यक् प्रत्ययान्तः । ततः “क्याच्छन्दसि” पा०सू० ३।२।७० । इत्यु-
प्रत्ययः । सुम्नयु, तुरण्यु, भुरण्य, सपर्यु, आदिशब्दवदस्य सिद्धिः । विशेषतस्तु “क्याच्छन्दसि” इत्यस्य
तत्त्वत्रोधिभ्यां द्रष्टव्यः । चरण्यतीति चरण्युः । २. स० १ श्लो० १९ । ३. का० सू० ४।४।३२ । ४. वहति
हव्यं वह्निरिति व्युत्पत्तिरन्यत्र । ५. का० उ० सू० ३।५० । ६. आशोष्टुमिच्छतीति आङ्पूर्वभाच्छुपेः
सन्नन्तात् “आङिशुपेः सनश्छन्दसि” पा०उ०सू० २।१०६ । अग्निः । आशु शीघ्रम्, आशुं ग्रीहिं वा शु
सुष्ठु क्षणोतीति वा । “सर्वधातुभ्य इन्” इत्यन्यत्र । ७. का० उ० सू० ५।१५ ।

शोपे ।” अन्तर्भूतकारितायांऽयम् । आशुपूर्वः । आशाशुपपदे शोपेः सनिक् प्रत्ययो भवति । हिरण्यं
रेतोऽस्य स हिरण्यरेताः । यत् स्मृतिः^१—“अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्” । सप्तार्चिपो यस्य स सप्त-
र्चिः । भवन्ति “हिरण्या, कतका, रक्ता, कृष्णा, प्रसुप्तभावाऽन्या । अतिरिक्ता बहुरूपेति सप्त
सप्तार्चिपो जिह्वाः ।” जाते जाते विद्यते सान्तो जातवेदस् । जाता वेदा अस्माद् वा जातवेदाः^२ ।
५ तन् न पातयति तनूनपात् । अपि तान्तो दान्तो वा । “स्वाहा” इत्यस्य (स्याः) पतिः भर्ता
स्वाहापतिः । हुतं वपट्कारकृतं वस्तु अश्नातीति हुताशः । हुतम् आशो भोजनं यस्य वा । ज्वलती-
त्येवंशीलो ज्वलनः । दहतीत्येवंशीलो दहनः । अनिति प्राणित्यनेन अनलः । विश्वानरस्यापत्यं
चैश्वानरः । कश्यति तनूकरोति कृशानुः । रोहिताऽख्यो मृगोऽश्वो वाहनमस्य रोहिताश्वः । विभा
वमुर्धनं यस्य स विभाचसुः । वृषो धर्मः कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च तद्वत्त्वात् वृषाकपिः । “पुराणम्—

१०

“कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।

तस्माद् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः ॥”

हमीनाममालायाम्—

“वृषाकपिर्षोमुदेवे शिवेऽग्नौ च ॥”

शम्यां गर्भो यस्य स शमीगर्भः । हव्यं वहतीति हव्यचाट् । हुतमश्नातीति हुताशनः । बहुलः ।
१५ वसुः । सितेतरगतिः । अर्चिष्मान् । धूमध्वजः । वहिर्व्योतिः । उपबुधः । चित्रभानुः । शुचिः । कृषीट-
योनिः । दमुना । कृष्णवर्मा । अपांपित्तम् । वीतहोत्रः । बृहद्भानुः । आश्रयाशः । धनञ्जयः । तमोघ्नः ।
दमूना इत्येके । दमेरूनसि ।

तदादिसूनुः,

अग्निसूनुः । वह्निपुत्रः । वृषाकपिसूनुः । वृषाकपिपुत्रः । इत्यादीनि स्कन्दनामानि भवन्ति ।

२०

सेनानीः स्कन्दश्च शिखिवाहनः ॥ ६६ ॥

कार्तिकेयो विशाखश्च कुमारः पण्डुस्यो गुहः ।

शक्तिमान् क्रौञ्चभेदी च स्वामी शरवणोद्भवः ॥ ६७ ॥

द्वादश स्कन्दे । सेनां नयतीति सेनानीः । “सत्सू^३द्विपदुहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुप-
सर्गेऽपि” एषामुपसर्गेऽन्युपसर्गेऽपि नाम्नयनाम्युपपदे क्विप् भवति । स्कन्दत्यरीन् स्कन्दः । स्कन्नं^४
२५ शुष्कं रेतोऽस्य वा । शिखी मयूरो वाहनमस्य शिखिवाहनः । कृत्तिकानामपत्यं कार्तिकेयः । दानव-
बलौजस्तेजांसि इयति विशेषेण तनूकरोति विशाखः^५ । विशाखासुतो वा । कुमारो ब्रह्मचारित्वात् ।

१. अम. को० क्षीर० भा० १।१।५५ । २. सर्वत्रोत्पन्नपदार्थे वर्तमानत्वाद् वेदोत्पत्ति-
रणत्वेन चाग्नेरुक्तत्वाच्च । जातं वेदो धनं (सुवर्णं) यस्मात्, जातं वेत्ति वेदयते वा इति न्युत्पत्तिरपि ।
३. तन् स्वस्वरूपं न पातयति दहतीत्यर्थः । क्विप् । “नभ्राणून्पात्” इति नलोपाभावः । तन् न पाति
रक्षति जाते जाते विनष्टत्वादिति वा । पातेः शत्रुप्रत्ययः । तन्वा ऊनं पाति रक्षतीति तनूनं पृतं
तदतीति । “आदोऽनन्ने” इति विट् । इत्यप्युह्यम् । ४. कृशोऽप्यनिति वर्धते कृशानुरिति वा ।
५. श्लोकोऽयम्, अमि० चि० २।१२९ । टीकायामेवोपलभ्यते । ६. अनेका० सं० ४।२१८ ।
७. का० सू० ४।३।७४ । ८. स्कन्नं रेतोऽस्येत्यर्थाभिप्रायेण । विग्रहस्तु स्कन्दति शुष्करेता भवतीति स्कन्द
इत्येवंरूपः । ब्रह्मचारिणां शुष्करेतस्त्वमागमात्सिद्धम् । पचाद्यच् । ९. विपूर्वात् “शो तनूकरणे”
इत्यस्माद् बाहुलकात्प्रत्ययः, विशाखानक्षत्रे जातो वा । विशाखयति विशेषेण व्याप्नोति दानवबलमिति
वा । “शाखुं व्यातौ ।” पचाद्यच् ।

कुत्सितो मारोऽस्येति कुमारः^१ । पण्डितानि यस्य स परमुखः । गूहति रक्षति देवसैन्यं गूहः । “नाम्युपध-
प्रीकृगृहां कः ।” शक्तिर्विद्यतेऽस्य शक्तिमान् । क्रौञ्चं पर्वतं भिनत्तीति क्रौञ्चभेदी । स्वमस्त्यस्य स्वामी^२ ।
शराणां वनम्, शरवणम्, तस्मिन्नुद्भवः शरवणोद्भवः । गौरीपुत्रः । शक्तिपाणिः । तारकारिः । अग्निभूः ।
बाहुलेयः । गाङ्गेयः । ब्रह्मचारी । महासेनः । महातेजाः । पार्वतीनन्दनः ।

तत्पिता शङ्करः शम्भुः शिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।

५

त्र्यम्बको धूर्जटिः शर्वः पिनाकी प्रमथाधिपः ॥ ६८ ॥

त्रिपुरारिर्विशालाक्षो गिरीशो नीललोहितः ।

रुद्रेन्दुमौलिर्यज्ञारिस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ॥ ६९ ॥

उग्रः शूली कपाली च शिपिविष्टो भवो हरः ।

उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वरूपः कपर्धपि ॥ ७० ॥

१०

एकोनविंशदीश्वरे । तस्य स्कन्दस्य पिता । शं सुखं करोतीति शङ्करः । शम्भवती (त्यस्मादि)
ति शम्भुः । “भुवो” दुर्विशम्भेषु च । शेते प्रलयकाले जगदत्र शिवः^३ । जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठति
स्थायुः । महाश्वाशौ ईश्वरः महेश्वर । त्रीण्यम्बकानि अक्षीण्यस्य त्र्यम्बकः । त्रयाणां लोकानाम् अम्बकः
पितेत्यागमः । धूर्भारभूता जट्यो जटा यस्य, धूर्गङ्गा जटिषु यस्य वा धूर्जटिः । शृणाति दैत्यान् शर्वः ।
“शर्वजिह्वाग्रीवा” एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पिनाकमस्त्यस्य पिनाकी । प्रमथाया “अधिपः, प्रम- १५
थाधिपः । त्रिपुरासुरस्वारिस्त्रिपुरारिः । विशाले विस्तीर्णो अक्षिणी यस्य विशालाक्षः । “सकथ्यक्षिणी
स्वाङ्गे ।” गिरीणामीशो गिरीशः । कालकूटभक्षणात्रीलं कृष्णं लोहितं यस्य स नीललोहितः^{१०} । “नीलः^{११}
कण्ठे लोहितश्च केशो इति नीललोहितः” इति पुराणम् । रोदयत्यरिस्त्री रुद्रः । “स्फायितस्त्रिवस्त्रि-^{१२}
शक्तिपिधुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्रुन्दीन्दिभ्यो रक् ।” इन्दुमौलिमुकुटं यस्य (सः) इन्दुमौलिः^{१३} ।
यज्ञानां पशुकारणलक्षणानाम् अरिः, यज्ञारिः । त्रीणि नेत्राण्यस्य त्रिनेत्रः । वृषभो बलीवदो ध्वजायां २०
यस्य स वृषभध्वजः । कोपमूर्जति उग्र^{१४} । शूलमस्त्यस्य शूली । कपालं मनुष्यकरोटिरस्त्यस्य कपाली ।
शिवः पिण्डो हतौ अस्थिरूपो (विण्डे) मूर्ध्नि यस्य स शिपिविष्टः^{१५} । भवतीति भव^{१६} । हरत्यघं हरः ।

१. “कुमार क्रीडायाम् ।” कुमारयतीति पचाद्यच् । कौ पृथिव्यां मारयति दुष्टानिति वा
विग्रहो बोध्यः । २. का० उ० सू० ६।६८ । इतीन्रप्रत्ययः । ३. स्वशब्दादामिन् प्रत्ययः । “स्वामिन्नेश्वर्ये”
पा० सू० ५।२।१२६ । अथवा शोभनममति रक्षतीति स्वामी । “सावमेरिन् दीर्घश्च” का० उ० सू० ६।६८
इतीन् प्रत्ययः । ४. शम्भवति भावयतीत्यर्थो वा । अन्तर्भावित्यर्थोऽत्र भवतिः । ५. का० सू० ४।४।५६।
६. उक्तविग्रहे श्रोत्रैर्गुलकाङ्गुविप्रत्ययः । शिवं करोतीति शिवयति, ततः पचाद्यचि शिवो वा । शिवम-
स्यास्त्यस्मिन्वेत्यपि विग्रहो बोध्यः । ७. का० उ० सू० २।२। ८. प्रमथाया दुर्गायाः परन्तु “प्रमथाः न्युः
पारिपदाः” इत्यमरादिषु प्रमथशब्दस्य शिवपर्यायत्वेन प्रसिद्धेः, दुर्गात्वेनाप्रसिद्धेः प्रमथानामधिपः
इति सुवचम् । ९. “राजादीनामदन्तता” का० सू० २।६।४१। वृत्तिः ५०। १०. नीलं कण्ठे लोहितं जटाया-
मङ्गं यस्येति विग्रहार्थः । तदुक्तम्—“नीलं येन ममाङ्गन्तु रसाकं लोहितं त्विषा । नीललोहित इत्येव
ततोऽहं परिकीर्तितः ॥ इति स्कान्दे” इति मुकुटः । ११. अम० को० नीर० भा० १।१।३३। १२. का० उ० सू०
२।१४। १३. इन्दुमौली यस्येति विग्रहः सरलः । १४. उच्यति क्रुधा समर्थेति उग्रः । “उच् समवाये”
उच् धातुः । ततो रक् । गङ्गान्तादेशः । ऋज्रेन्द्रादि उ० सू० । १५. शिवपिण्डशब्दयोराद्यङ्गोपादानेन
शिपिशब्दोऽ । १६. भव्याय भवति कल्पते इत्यर्थः ।

उमायाः पतिः उमापतिः । विरूपाण्यक्षीण्यस्य विरूपाक्षः । विश्वेषु रूपं यस्य स विश्वरूपः । कपर्दीऽ
स्त्यस्य कपर्दी । कपर्दी जटाजूटः । कं शिरः पिपतीति कपर्दः । औणादिको दः । अपिशब्दात्-ईशानः ।
शशिशेखरः । पशुपतिः । शम्भुः । गिरिशः । शोकण्ठः । सर्वजः । त्रिपुरान्तकः । भूतेशः । परमेश्वरः ।
अन्धकरिपुः । दक्षाध्वरध्वंसकः । सृष्टा । वामदेवः । कामध्वंसी । व्योमकेशः । वहिरेताः । भीमः । भर्गः ।
५ कृत्तिवासाः । वृषाङ्कः ।

भागीरथी त्रिपथगा जाह्नवी हिमवत्सुता ।

मन्दाकिनी—

पञ्च गङ्गायाम् । भगीरथेन राज्ञाऽवतारितत्वात्तस्यापत्यं वा भागीरथी । त्रिभिः पथिभि-
रञ्चति त्रिपथगा^१ । त्रिमार्गगा च । जलुना पीता श्रोत्रेण त्यक्ता जाह्नवी । जह्वापत्यं वा जाह्नवी ।
१० हिमवतो हिमाचलस्य सुता हिमवत्सुता । मन्दाका मन्दा गतिरस्त्यस्या मन्दाकिनी । सुरसरि ।
विष्णुपदी । सरिद्वरा । त्रिदशदीर्घिका । त्रिस्रोताः । भीष्मसूः । सुरनिम्नगा ।

द्युपर्यायधुनी

आकाशशब्दतो (तः परत्र) नदीपर्यायेषु गङ्गानामानि भवन्ति । खलोतस्विनी । विहायो-
धुनी । वियत्स्विन्युः । व्योमस्रवन्ती । नभोनदी । गगननिम्नगा । अम्बरापगा । द्योनदी । आकाशनदी ।
१५ अन्तरीक्षद्विरेका । मेघपथसरि । वायुपथतरङ्गिणी । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

गङ्गानदीश्वरः ॥ ७१ ॥

भागीरथ्यादिशब्दतः (परत्र) ईश्वरपर्यायेषु हरनामानि भवन्ति । भागीरथीराजः । त्रिपथ-
गाधिपः । जाह्नवीपतिः । हिमवत्सुतास्वामी । मन्दाकिनीनाथः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

विधिवेधा विधाता च द्रुहिणोऽजश्चतुर्मुखः ।

२० पद्मपर्याययोनिश्च पितामहविरश्चिनौ ॥ ७२ ॥

हिरण्यगर्भः सृष्टा च प्रजापतिस्सहस्रपात् ।

ब्रह्मात्मभूरनन्तात्मा कः

सप्तदश ब्रह्मणि । विधति^३ सृजति विधिः । विधत्ते वा विधिः । “उपसर्गे दः किः^४ ।” विधति
सृजति वेधाः । ““सर्वधातुभ्योऽसन् ।” “विध विधाने ।” विदधाति धारयति भूतानीति विधाता ।
२५ द्रुह्यत्वसुरेभ्यो द्रुहिणः । न जायतेऽजः । चत्वारि मुखानि वक्त्राण्यस्य चतुर्मुखः । “पद्मपर्याययोनिः”—
पद्मपर्यायशब्दाग्रे योनिशब्दे प्रयुज्यमाने धातुर्नामानि भवन्ति । तामरसयोनिः । कमलयोनिः ।
नलिनयोनिः । पद्मयोनिः । सरोजयोनिः । सरसीरुहयोनिः । खरदण्डयोनिः । पुण्डरीकभवः । महोत्प-
लजः । अरविन्दयोनिः । शतपत्रयोनिः । पुष्करयोनिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । दक्षमन्त्रादीनां लोक-
पितृणां पिता पितामहः । आत्मनो भूतानि विरिङ्क्ते पृथक् करोति विरिञ्चनः । विरिञ्चः । विरिञ्चिश्च ।

१. त्रयाणां पथां समाहारत्रिपथं तेन गच्छतीति वा । इत्थं च पूर्वं समाहारद्विगौ कृते तत्र
समासान्तविधानेन त्रिपथशब्दस्याकारान्तत्वं सूच्यमाद्यं भवति । गंगायास्त्रिपथगामित्वे भारतोक्तं वचनम्-
“क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागाँस्तारयतेऽप्यधः । दिवि तारयते देवाँस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥” २. मन्द-
मक्तिं गन्तुं शीलमस्या इति वा । “अक कुटिलायां गतौ ।” णिन् । ङीप् । ग्रन्थोक्तविग्रहे मन्दाकशब्द-
स्य मन्दगत्यर्थे प्रमाणं भूयम् । ३. “विध विधाने” । तुदादिः । सर्व धातुभ्य इन् क्त्वं च । ४. का० सू०
४।५।७० । ५. का० उ० सू० ४।५६ ।

हिरण्यं गर्भे यस्य, हिरण्यं गर्भो वा यस्य हिरण्यगर्भः । 'पुराणम्—

“हिरण्यगर्भमभवत्तत्राण्डमुदके तथा ।

तत्र यज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूर्लोकविश्रुतः ॥”

सृजतीत्येवंशीलः स्रष्टा । प्रजानां पतिः प्रजापतिः । “पद गतौ ।” पद् । पद्यन्ते गम्यन्ते (गच्छन्ति) प्राणिनः, तान् पद्यमानान् जन्तून् चरणा एव प्रयुज्जते । “^२धातोश्च हैतौ” इच् । अस्योप० दीर्घः । पादि जा० । पादयन्तीति पादः । क्तिप् च । “^३कारितस्या०” कारितलोपः । वेलोपः । पाद् । सहस्रं पादो यस्य स सहस्रपाद् । वृंहन्ति वर्धन्ते चराचराण्यत्र ब्रह्मा । उभयम् । इदं ब्रह्मा । अयं ब्रह्मा । अथवा वृंहन्ति व्रतानि यस्मिन्निति ब्रह्मा । वृंहः ^४मन् प्रत्ययो भवति, अच्च हकारात् पूर्वम् । आत्मना भवति आत्मभूः । न अन्तो विद्यते यस्य सोऽनन्तः, अनन्तो विनाशरहित आत्मा यस्य सः अनन्तात्मा । कायतीति “कः । परमेष्ठि । सुरज्येष्ठः । शतानन्दः । स्वयम्भूः । जगत्कर्ता । शतधृतिः । स्थविरः ।

तत्पुत्रोऽथ नारदः ॥७३॥

तस्य पुत्रस्तत्पुत्रः । ब्रह्मणः शब्दात् (परत्र) पुत्रशब्दे प्रयुज्यमाने नारदनामानि भवन्ति । विधिपुत्रः । वेधःपुत्रः । विधातृपुत्रः । विरिञ्चिपुत्रः । द्रुहिणपुत्रः । अजपुत्रः । चतुर्मुखपुत्रः । पद्म-योनिपुत्रः । पितामहपुत्रः । हिरण्यगर्भपुत्रः । प्रजापतिपुत्रः । सहस्रात्पुत्रः । ब्रह्मपुत्रः । आत्मभूसुतः । अनन्तात्मपुत्रः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

कृष्णो दामोदरो विष्णुरुपेन्द्रः पुरुषोत्तमः ।

केशवश्च हृषीकेशः शार्ङ्गी नारायणो हरिः ॥ ७४ ॥

केशी मधुर्बलिर्वाणो हिरण्यकशिपुर्मुखः ।

तदादिसूदनः शौरिः पद्मनाभोऽप्यधोऽक्षजः ॥७५॥

गोविन्दो वासुदेवश्च—

एकविंशतिनारायणे । कर्षत्यरीन् कृष्णवर्णत्वाद्वा कृष्णः । “^६इण्जिह्विभ्यो नक् ।” दाम उदरे यस्य स दामोदरः । यत्लक्ष्यम्^७—बालो हि चापलाद्दाम्ना बद्धोऽभूत् । वेवेष्टि व्याप्नोति विष्णुः । “^८सूविप्भ्यां यण्वत् ॥” उपगतमिन्द्रमुपेन्द्रः । इन्द्र उपगतोऽनुजत्वाद् वा उपेन्द्रः । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः । केशाः सन्त्यस्य केशवः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशो वशित्वाद् हृषीकेशः । शार्ङ्गं धनुस्त्यस्य शार्ङ्गीः । नारा आपः अयनं यस्य नारायणः^९ । यत्स्मृतिः^{१०}—

“आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥”

१. “पुराणम्” इत्यारम्य “लोक विश्रुतः” इत्यन्तम् अभिधानचिन्तामणिटीकायान् २।१२७। उपलभ्यते । २. का० सू० ३।२।१०। ३. का० सू० ३।६।४४। ४. “सर्वधातुभ्यो मन्” का० उ० सू० ४।२८। ५. “कै शब्दे” वेदध्वनिकर्तृत्वेन ब्रह्मणि कायतीति क इति विग्रहः । “कच दीर्घः” कचते वा । “अन्येभ्योऽपि ह्रस्यते” पा०सू० ३।२।१०१। सूत्रवार्तिकेन डः । ६. का० उ०सू० २।५१। ७. बालकृष्णो हि यशोदया तच्चापत्यनिवारणाय कटिप्रदेशे बद्ध इति पौराणिकी कथा “लक्ष्यम्” इति पदेन स्मार्यते । ८. का० उ० सू० २।२८। ९. नाराणां समूहो नारम्; तदयनं यस्य, नराद् विराट्पुरुषाज्जातं तत्त्वं नारम्; तदयते जानाति वा, आश्रयति प्रवर्तयति वा, “नारायणः” इत्यपि बहुवचनम् । १०. मनुस्मृतिः १।१०। वृत्तयचरणे “ता पदस्यायनपूर्वम्” इति पाठो लभ्यते ।

- नरस्यापत्यं वा । नरानयते इति वाक्येन नरायणोऽपि । हरत्यत्रं हरिः । वेशाः सन्त्यस्य केशी ।
 “मन्यते जनैः मधुः । “मनिजनिनमां मधजतनाकाश्च” एषामुप्रत्ययो भवति मधजतनाकाश्च यथासंख्य-
 भादेशा भवन्ति । “वल वल्ल च ।” वलतीति वलिः । “इः^३सर्वधातुस्यः ।” वण्यते वाणः । तदादि-
 सूदनः । तदादीनां केश्यादीनां सूदनां नाशकर्ताऽरिः । केशी, मधुः, वलिः, वाणः, हरिण्यकशिपुः, सुरः,
 ५ एभ्यः शब्देभ्यः परचारिशब्दं प्रयुज्यमाने नारायणनामानि भवन्ति । केशिवैरी । केश्यरातिः । केश्वमित्रः ।
 केशिद्रिड् । केशिसपत्नः । मधुवैरी । मध्वरातिः । मध्वमित्रः । मध्वरिः । मधुद्रिड् । मधुसपत्नः । मधुरिपुः ।
 वलिवैरी । वल्यरातिः । वल्यमित्रः । वलिद्रिड् । वलिसपत्नः । वलिरिपुः । वाणवैरी । वाणारातिः । वाणा-
 मित्र । वाणारिः । वाणद्रिड् । वाणसपत्नः । वाणरिपुः । हरिण्यकशिपुद्रिड् । हरिण्यकशिपुसपत्नः ।
 हरिण्यकशिपुरिपुः । सुरवैरी । सुरारिः । सुरारातिः । सुरद्रिड् । सुरसपत्नः । सुररिपुः । मधुशत्रुः । वाण-
 १० शत्रुः । मधुसूदनः । वलिसूदनः । वलिवन्धनः । वाणसूदनः । हरिण्यकशिपुसूदनः । केशिसूदनः । इत्यादि
 पर्यायनामानि । शूरस्तस्यादिपुरुषस्तस्यापत्यम्, शौरिः । सौरिर्वा । पद्मं नाभावस्य पद्मनाभः ।
 “सैत्रायां नाभिः ।” अधोक्षाणां जितेन्द्रियाणां जायते प्रत्यक्षीभवति, अधोक्षजः^४ । गां भुवं विन्दति
 गोविन्दः । वसुदेवस्यापत्यं चासुदेवः । मञ्जुकेशः । श्रीवत्साङ्गः । श्रीपतिः । पीतवासाः । विष्वक्सेनः । विश्व-
 रूपः । मुकुन्दः । धरणिधरः । सुपर्णकैतुः । वैकुण्ठः । जलेश्वरः । रथाङ्गपाणिः । दाशार्हः । ऋतुप्ररपः ।
 १५ वृषाकपिः । अच्युतः । इन्द्रावरजः । वभ्रुः । विण्टरश्रवाः । वनमाली । सनातनः । जिनः । शम्भुः ।
 इत्याद्याह्यम् ।

लक्ष्मीः श्रीर्गोमिनीन्दिरा ।

- चत्वारः श्रियाम् । “लक्ष् दर्शनाकाङ्क्षयोः ।” लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणं जनमिति लक्ष्मीः ।
 “लक्ष्मेमांस्तश्च” अस्मादीप्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च । “भञ् शिञ् (सेवायाम्) ।” पुण्यकृतं श्रयतीति
 २० श्रीः । “वचिप्रच्छिश्चिद्रुपुञ्चां क्रिद्दीर्घश्च” एभ्यः क्रिप्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च स्वरस्य चैपम् । गां मिनो-
 तीति गोमिनी^{१०} । इन्दति परमैश्वर्ययुक्ता भवति इन्दिरा । कमला । पद्मा । पद्मवासा । हरिमिया ।
 क्षीरोदतनया । माया । मा । ता^{११} । ई । आ । रमा । सीता । वला (चला) । भर्भरी । अविजडापि ।

तत्पतिः शैलभूम्यादिधरश्चक्रधरस्तथा ॥ ७६ ॥

- तस्याः पतिस्तत्पतिः । लक्ष्मीपतिः । श्रीपतिः । गोमिनीपतिः । इन्दिरापतिः । इत्यादीनि हरि-
 ३५ नामानि स्युः । शैलभूम्यादिधरः । पर्वतधरः । शैलधरः । दरीभृद्धरः । अचलधरः । शृङ्गिधरः । सानुम-
 दधरः । गिरिधरः । नगधरः । शिलोच्चयधरः । भूमिधरः । भूधरः । पृथ्वीधरः । गह्वरीधरः । मेदिनीधरः ।

१. मन्यते जनैः “खलत्वेन” इति शेषः । २. का० उ० सू० १।८ । ३. का० उ० सू० ३।१४ ।
 ४. का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः । ८ । ५. अधः कृतमक्षजमैन्द्रियकं ज्ञानं येन, अधो न क्षीयते जातु इति
 वा विग्रहोऽधिकोऽन्यत्र । ६. “मञ्जुकेश” शब्दस्य “विष्णु” पर्यायत्वे कल्पद्रुपि प्रमाणम्—“मञ्जुकेशः
 कौस्तुभोराः सोमगर्भो धराधरः ।” ३।२।७ । ७. वभ्रुशब्दस्य नारायणार्थेऽमरोऽपि प्रमाणम् । “विपुले
 नकुले विष्णोर्वा वभ्रुः स्वात्पिङ्गले त्रिषु ।” ३।३।१७० । ८. का० उ० सू० ३।३५ । ९. का० उ० सू०
 २।२३ । १०. “गोमिनी” शब्दस्य लक्ष्म्यर्थे प्रमाणं मृग्यम् । अवत्यविग्रहोऽपि चिन्त्यः । मत्स्ये गोशब्दा-
 निमिप्रत्यये लीपि गोपालिकार्थे तस्य प्रसिद्धौ कोपान्तरसंवादः । ११. ता, ई, आ, एषां लक्ष्म्यर्थे प्रमाणम्—
 “लक्ष्मी पद्मा रमा या मा ता धी कमलेन्दिरा” अभि० चि० २।१४० । “या” इत्यत्र ई आ इति
 च्छेदः । “लक्ष्म्यान्तु भर्भरी विष्णुशक्तिः क्षीराविमानुषी ।” इति तट्टीकायाम् ।

महीधरः । धराधरः । वसुन्धराधरः । धात्रीधरः । क्षमाधरः । वसुमतीधरः । विश्वम्भराधरः । अश्वनीधरः । धरणीधरः । क्षमाधरः । धरित्रीधरः । क्षितिधरः । कुधरः (ध्रः) । कुम्भिनीधरः । इलाधरः । उर्वरीधरः । उर्वीधरः । गोधरः । जगतीधरः । इत्यादीनि हरेर्नामानि शतव्यानि । तथा चक्रधरोऽपि ।

तत्पुत्रो मन्मथः कामः सूर्पकाराति (कारि) रनन्यजः ।

कायपर्यायरहितो मदनो मकरध्वजः ॥ ७७ ॥

५

पट् कामे । तत्पुत्रः । कृष्णपुत्रः । दामोदरपुत्रः । विष्णुपुत्रः । उपेन्द्रतनयः । पुरुषोत्तमसूनुः । केशवपुत्रः । हृषीकेशपुत्रः । हृषीकेशतनयः । शार्ङ्गिनन्दनः । नारायणोद्बहः । हरिसूनुः । गोविन्दतुक् । इमानि मदनस्य पर्यायनामानि शतव्यानि । मथ्नाति चित्तं ^१मन्मथः । कामयते जनः (अनेन) कामः । ^२सूर्पकारातिः । मनसोऽन्यस्मान्न जायते अनन्यजः । कायपर्यायरहितः । विदेहः । अकायः । अनङ्गः । अनपघनः । अवपुः । असंहननः । अकलेवरः । अमूर्तिः । इत्यादि (दीन्यपि तस्य) पर्यायनामानि । जनं ^{१०} मदयतीति मदनः । मकरो ध्वजे यस्य स मकरध्वजः । प्रद्युम्नः । मनसिजः । सङ्कल्पजन्मा । अङ्गजः । पञ्चेपुः । श्रीनन्दनः । हृच्छयः । मधुसखः ।

शिलीमुखः शरो बाणो मार्गणो रोपणः कणः ।

इपुः काण्डं क्षुरप्रं च नाराचं तोमरं खगः ॥ ७८ ॥

द्वादश बाणे । शिलीव सूक्ष्माग्रं मुखं यस्य ^३शिलीमुखः । “शू हिंसायाम्” । शृणान्त्यनेनेति ^{१५} शरः । ^४“पुंसि संज्ञायां घः” घप्रत्ययः । वणति ^५बाणः । ^६“व्यञ्जनाच्च” घञ् । मार्गयति अन्वेपयति मार्गणः । रोप्यते देहे निखन्यते रोपणः । कणति ^७कणः । “इप गतौ” । इष्यते गम्यते शत्रुसंमुखमिति ^८इपुः । जन्तुमिष्यति हिनस्तीति वा इपुः । ^९“इषिषिभिदिशुधिमृदिपृथ्यः कुः” । काम्यते रिपुवधाय ^{१०}काण्डम् । उभयम् । खनति भिनत्ति ^{११}क्षुरप्रम् । नारं नरसमूहम् अञ्जतीति ^{१२}नाराचम् । स्तोम्यते श्लाघ्यते तोमरम् ^{१३} । खमाकाशं गच्छतीति खगः । कङ्कपत्रः । चित्रपुङ्खः । विशिखः । कलम्बः । ^{२०} कदम्बोऽपि । सायकः । प्रदहः । पृषत्कः । रोपः । गादर्धपक्षः । ^{१४}खरुः । भल्लिः । भल्लः ।

१. विग्रहे चित्तस्थाने मनःशब्दपाठो योज्यः । मनसष्टलोपार्थं पृषोदरादिगणपठायासोऽपि तस्य कार्यः । क्षीरस्वामिरामाश्रमौ तु मननं मत् चेतना । मथ्नातीति मथः । पचायच् । मतश्चेतनाया मथः “मन्मथः” इत्याहुतः । २. छन्दोभङ्गभयाच्छूर्पकारिरिति पाठो बोध्यः । शूर्पको नाम कश्चिद् दानवस्तस्य नाशकारित्वात्कामः शूर्पकारिः । तदुक्तम्— अभि० चि० २।१४२ । “पुष्पाण्यस्वेपुचापास्त्राण्यरी शस्त्ररसूर्पकौ ।” ३. शिली नाम गण्डूपदः । “केचुवा” इति लोके ख्यातः । ४. का० सू० ४।५।९६ । ५. वणति शब्दायते पुङ्खोऽस्मिन्निति पूर्णो विग्रहः । ६. का० सू० ४।५।९९ । ७. कणति शब्दायते कणः । पचायच् । ८. इपति गच्छति शत्रुसंमुखमिति वा । ९. का० उ० सू० १।१० । १०. कनति दीप्यते काण्ड इति रामाश्रमः । “कनी दीप्तौ” । “क्षादिभ्यः कित्” उ० १।१२ । इति डः । अनुनातिकर्येतुपधादीर्घश्च । अमरकोट्युक्तविग्रहे “कमु कान्तौ” कमधातोः स एव प्रत्ययः । कणत्यनेनाहतः काण्ट इति हेमचन्द्रः । “कण शब्दे” इत्यतो डः । ११. क्षुरं तैद्वयेन प्राति गच्छतीति क्षुरप्रम् इत्यपि । क्षुरानं लोहं प्राति गच्छति वा । १२. नारमाचामतीति रामाश्रमः । नरमञ्जतीति नराची, नराच्यास्तुत्यो नाराच इति हेमचन्द्रः । १३. “तु गतौ” सौत्रः । तौतीति तौ । विच् । म्रियतेऽनेनेति मरः । पुंसि संज्ञायां घः । तौऽपार्थः मरश्चेति तोमर इत्यन्यत्र । १४. खरुर्बाणः । तदुक्तं कल्पद्रुकोशे १।५।२६९ । “विदर्शः पञ्चाह्वयः चित्रपुङ्खः शरः खरुः ।” इति ।

कामुकं धन्य चापं च धर्म कोदण्डकं धनुः ।
शिलीमुखादेरसनम्—

पङ् धनुषि । कर्मणे शत्रुवधलक्षणाय प्रभवतीति ^१कामुकम् । दधन्ति मारयत्यनेन ^२धन्यम् ।
अदन्तम् धन्यम् । चपरस्य वेणोर्विकारश्चापम् । उभयम् । धरति ^३धर्मम् । धर्मे च । “कुट्ट अमृतभाषणे” ।
५ कोदयत्यनेन ^४कोदण्डम् । शत्रुवधायं धन्यते अर्थ्यते धार्यते वा धनुः । उभयम् । उणादौ दधन्तीति
धनुः (नृः) । “कृषिचमितनिधनिवधिसन्निधिव्य ऊः” । शिलीमुखादेरसनम् । शिलीमुखासनः ।
शरासनः । मार्गणासनः । रोपणासनः । कणासनः । इष्वासनः । काण्डासनः । क्षुरासनः । नाराचासनः ।
तोमरासनः ।

तत्कोटिमटनीं त्रिदुः ॥ ७६ ॥

१० तस्य धनुषः कोटिमप्रभागम् । कामुककोटिः । धन्यकोटिः । चापकोटिः । काण्डकोटिः ।
धनुकोटिः । शिलीमुखासनकोटिः । शरासनकोटिः । वाणासनकोटिः । रोपणासनकोटिः । मार्गणासन-
कोटिः । इत्यादिकमटनीति कथ्यते । अटति गच्छति भूमिमटनिः । इयाम् । अटनी । ह्यो स्त्रियाम् ।

पुष्पं सुमनसः फुल्लं लतान्तं प्रसवोद्गमौ ।
प्रसूनं कुसुमं ज्ञेयम्—

१५ पट् (अष्ट) पुष्पे । पुष्पयति विकसति पुष्पम् । सुष्ठु मन्यन्ते आभिः सुमनसः ^१ । स्त्रीत्वबहुत्वे ।
“जिकला विशरणे” । फल् । फलति स्म फुल्लः । फुल्लं वा । “गत्ययाऽकर्मक” तः । “आदनुवधाच्च”
इति नेट् । “अनुपसर्गाऽफुल्लक्षीवक्रशोलावाः” निष्ठातकारस्य लत्वम् । “चरफलोद्दस्य” तकारादावगुणे
उत्त्वम् । सिः । रेफः । लताया अन्तं पतितं लतान्तम् । प्रसू (य) ते प्रसवम् । उद्गच्छति प्रादुर्भ-
वति उद्गमः । श्रियं प्रसूते प्रसूनम् । सूनं सूनकं च । एता उभयम् । कौ शोभां सूते ^२कुसुमम् ।
२० सुमं च । ज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।

तदाद्यस्त्रशरः स्मरः ॥ ८० ॥

पुष्पपर्यायतो (तः परत्रा) स्त्रपर्यायेषु तथा वाणपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति ।
पुष्पेषुः । पुष्पवाणः । पुष्पशिलीमुखः । पुष्पशरः । पुष्पमार्गणः । पुष्परोपणः । पुष्पकाण्डः । पुष्पकणः ।
पुष्पक्षुरग्रः । पुष्पनाराचः । पुष्पतोमरः । सुमनःक्षुरग्रः । सुमशिलीमुखः । सुमनोनाराचः । लतान्तेषुः ।

१. “कर्मण उक्ञ्” पा० सू० ५।१।१०३ । इति प्रभवत्यर्थे उक्ञ् । टिलोपः । २. “धन धान्ये”
जुहोत्यादिः । वनप्रत्ययः । धातूनामनेकार्थत्वान्मारयतीत्यर्थः । धात्वर्थानुरोधे तु दधति धान्यमर्जयत्यनेने-
त्यर्थो बोध्यः । वीराणां धनधान्यार्जनसाधनत्वाद् धनुषः । धन्यति गच्छति धन्वेति क्षीरस्वामिरामाश्रम-
हेमचन्द्राः । कनिन्प्रत्ययः । ३. धरती रक्षत्यापन्नस्त्वानित्यर्थः । मनिन्प्रत्ययः । अकारान्तधर्मशब्द-
स्य धनुर्वाचित्वे मेदिनी प्रमाणम्—“धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ । अहिंसोपनिषन्त्याये ना
धनुर्वमसोमपे ॥” मान्तव० १६ श्लो० ॥ ४. बाहुलकादण्डप्रत्ययः । रामाश्रमस्तु “कुट्ट अमृतभाषणे”
कोटती विग्रहमाह । “स एव प्रत्ययः । पुषोदरादित्वाट्टस्य दः । कदिः सौत्रः । कचतेऽनेनेति हेमचन्द्रः ।
“कु शब्दे” कौलीति कौः । कौः शब्दायमानो दण्डोऽस्येत्यप्यन्यत्र । ५. का० उ० सू० १।३१ । ६. सुप्रीतं
मन आभिरिति मुकुटः । ७. का०सू० ४।६।४९ । ८. का०सू० ४।५।९१ । ९. का०सू० ४।६।१५ । १०. का०
सू० ४।१।७६ । ११. कुस्यति कुसुमम् । “कुस संश्लेषणे” दिवादिः । “कुसेरुभोमेदेताः” पा० उ० सू०
४।१०६ । इत्युमप्रत्ययः । इति रामाश्रमः ।

लतान्तकाण्डः । लतान्तक्षुरप्रः । लतान्तनाराचः । लतान्ततोमरः । प्रसवमार्गणः । प्रसवरोपणः । प्रसवकणः ।
 प्रसवेषुः । प्रसवकाण्डः । प्रसवक्षुरप्रः । प्रसवनाराचः । प्रसवतोमरः । उद्गमशिलीमुखः । उद्गमशरः ।
 उद्गमवाणः । उद्गममार्गणः । उद्गमरोपणः । उद्गमकणः । उद्गमेषुः । उद्गमक्षुरप्रः । उद्गमनाराचः ।
 उद्गमतोमरः । प्रसूनशिलीमुखः । प्रसूनशरः । प्रसूनवाणः । प्रसूनरोपणः । प्रसूनकणः । प्रसूनकाण्डः ।
 प्रसूनेषुः । प्रसूनक्षुरप्रः । प्रसूननाराचः । प्रसूनतोमरः । कुसुमशिलीमुखः । कुसुमशरः । कुसुमवाणः । कुसुम- ५
 मार्गणः । कुसुमरोपणः । कुसुमकणः । कुसुमेषुः । कुसुमकाण्डः । कुसुमक्षुरप्रः । कुसुमनाराचः । कुसुमतोमरः ।
 पुष्पशब्दाग्रे धनुषि शब्दे प्रयुज्यमाने कन्दर्पनामानि भवन्ति । पुष्पकामुकः । पुष्पधन्वा । पुष्पचापः ।
 पुष्पधर्मा । पुष्पकोदण्डः । पुष्पधनुः (न्वा) । लतान्तकामुकः । लतान्तधनुः (न्वा) । लतान्तचापः ।
 लतान्तधर्मः (र्मा) । लतान्तकोदण्डः । लतान्तधन्वा । प्रसवकोदण्डः । प्रसवधनुः (न्वा) ।
 प्रसूनकामुकः । कुसुमधन्वा । कुसुमचापः । कुसुमधर्मः (र्मा) । कुसुमकोदण्डः । कुसुमधनुः (न्वा) । १०
 इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

स्वान्तमास्वनितं चित्तं चेतोऽन्तःकरणं मनः ।

हृदयं विशिखाऽकृतम्-

नव चित्ते । “स्यम स्वन ध्वज शब्दे ।” आङ्पूर्वः । स्वनति स्म, आस्वनति स्म इति
 स्वान्तम्, आस्वान्तम् । “गत्यर्थो”^१ निष्ठा क्तः । “वा रूप्यमत्वरसंघुषाऽस्त्वनाम्” एभ्यः क्तै विभाषयेद् १५
 भवति । वेट् । “पञ्चमो”^३ । “मनोरनुस्वारो”^४ धुटि । मनोऽर्थे “क्षुभिवाही”^५ त्यादिना क्तो नेट् । कथि-
 तत्वकथनेऽपि परत्वात्पूर्वोक्तपरोक्तयोः परोक्तविधिर्बलवान् इति वचनात् । अनेन सूत्रेणायमेव विकल्पो
 भवति । मनोऽभिधानेऽपि परत्वादयमेव विधिर्भवति । चेतति चित्तम्^७ । चेतति जानाति अनेनात्मा
 चेतस् सान्तम् । अन्तः निश्चयः क्रियतेऽनेन, अन्तःकरणम्^८ । मन्यते बुध्यतेऽनेन सान्तम् मनस् ।
 बुद्ध्याऽर्थं हरति हृदयम् । “हृजो”^९ दोऽन्तश्च । दान्तं च हृद् । विगतं (ता) नष्टं (ष्टा) शिखं (खा) २०
 यस्य तत्, विशिखम्^{१०} । आ समन्तात् कूयते आकूयते (आकृतम्) । तथा चाष्टसाहस्यम्^{११}—
 “जाताकृतेनाकारेणेति मानसम्” ।

मारस्तत्रोद्भवो मतः ॥ ८१ ॥

तत्र चित्ते उद्भवो मारो मतः कथितः । स्वान्तसम्भवः । स्वान्तजः । आस्वनितजः । चित्त-
 सम्भवः । चित्तजः । चेतस्सम्भवः । चेतोजः । अन्तःकरणसम्भवः । हृदयसम्भवः । हृदयजः । विशिखसम्भवः । २५
 विशिखजः । आकृतसम्भवः । इत्यादीनि कन्दर्पनामानि ज्ञातव्यानि ।

मौर्वी जीवा गुणो गव्या ज्या-

पङ् गुणे । मूर्वति दिनस्त्यनया मूर्वा । तदाख्यस्य तृणस्य विकारो मौर्वी । धनुरनया जीवतीति

१. का० सू० ४।६।४९। २. का० सू० ४।६।९७। ३. का० सू० ४।१।५५। ‘पञ्चमोपधाया
 धुटि चागुणे’ इति पूर्णं सूत्रम् । ४. का० सू० २।४।४४। ५. का० सू० ४।६।९३ । ६. आस्वनितमित्यत्र
 मनोऽर्थेऽपि परत्वात् “वा रूप्यमत्वरसंघुषाऽस्त्वनाम्” इति वेट् । आङ्पूर्वकत्वाभावे तु स्वान्तमित्यत्र “क्षुभिवाही” त्यादिनेट्-
 प्रतिषेधः । तेन स्वान्तमित्येकमेव रूपम् । आङ्पूर्वकत्वे तु आस्वनितमास्वान्तमित्युभयमित्याशयः ।
 ७. “ज्यनुबन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क्तः” इति का० ४।४।६६। सूत्रेण शानार्थत्वाद्वर्तमाने क्तः । ८. अन्तः-
 शब्दस्याऽत्राधिकरणशक्तिप्रधानरेफान्ताव्ययत्वेनान्तो निश्चय इति व्युत्पत्तिर्न युक्ता । अन्तर्गतं करणम्,
 करणानामन्तर्गतं वेति व्युत्पत्तिर्बोद्धव्या । ९. का० उ० सू० २।२६ । १०. विशिखशब्दस्य हृदयार्थं न किम-
 प्यन्यत्र प्रमाणमुपलब्धम् । अथोमुखपुण्डरीकाकारत्वाद्धृदयस्य शिखारहितत्वं कथञ्चिन्नेयम् ।

जीवा । गुण्यते अभ्यस्यतेऽनेन गुणः । पुंसि । गोभ्यो हिता गव्या^१ । जीयतेऽनया ज्या^२ । बाणासनम् । हुणा ।

अलिर्भृङ्गः शिलीमुखः ।

अमरः पट्पदो ज्ञेयो द्विरेफश्च मधुव्रतः ॥ ८२ ॥

सप्त भृङ्गे । अलति मण्डयति पुष्पजातीः अलिः^३ । मधुना विभर्त्यात्मानं भृङ्गः ।^४ “भृङ्ग-
५ भृङ्गाङ्गानि” एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शिलीसदृशं शिलासदृशं वा मुखमस्य शिलीमुखः । भ्रमन्
रौतीति निरुक्त्या अमरः । “शकन्ध्वादयः” शकन्धुप्रभृतीनाम् अकारस्य लोपो भवति । आदिशब्दान्
नकारस्य लोपः । उणादौ “भ्रमु चलने” । भ्रमतीति अमरः । “देवि^५ वटिजटिभ्रमिवासिभ्यांऽरः” ।
पट् पदानि चरणा अस्य पट्पदः । द्वौ रेफौ यस्य द्विरेफः^६ । मधु व्रतयति भुङ्क्ते मधुव्रतः । मधुकरः ।
पुष्पलिङ् । इन्दिन्दिरः । पट्चरणः । पडङ्घ्रिः । चञ्चरीकः । भसलः । रोलम्बः । देश्याम् ।

१०

मौर्व्यादिग्रान्तमल्यादिकन्दर्पस्यैक्षवं धनुः ।

इक्षोर्विकार ऐक्षवम् । अलिमौर्वी (कम्) । भृङ्गमौर्वी (कम्) । शिलीमुखमौर्वी (कम्) ।
अमरमौर्वी (कम्) । पट्पदमौर्वी (कम्) । द्विरेफमौर्वी (कम्) । मधुव्रतमौर्वी (कम्) । अलिजीवा (वम्) ।
भृङ्गजीवा (वम्) । शिलीमुखजीवा (वम्) । अमरजीवा (वम्) । पट्पदजीवा (वम्) । द्विरेफजीवा (वम्) ।
मधुव्रतजीवा (वम्) । अलिगुणः (णम्) । भृङ्गगुणः (णम्) । शिलीमुखगुणः (णम्) । अमरगुणः (णम्) ।
१५ पट्पदगुणः (णम्) । द्विरेफगुणः (णम्) । मधुव्रतगुणः (णम्) । अलिज्या (ज्यम्) । भृङ्गज्या (ज्यम्) ।
द्विरेफज्या (ज्यम्) । मधुव्रतज्या (ज्यम्) । इत्यादीनि कन्दर्पशिलीमुख (धनुः) नामानि ज्ञेयानि ।

हेतिरस्त्राऽयुधं शस्त्रम्—

चत्वारः शस्त्रे । हिनोति अनया हेतिः^१ । स्त्रियाम् । “सातिहेतिजृतिभूतयंश्च” । एते
क्तिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अस्यते क्षिप्यतेऽनेनेति अस्त्रम् । आयुध्यतेऽनेन आयुधम् । उभयम् ।
२० शस्यतेऽनेन शस्त्रम् ।^२ “नीदापशसुयुजस्तुतद्विसिचमिहपतदंशनहो करणे” प्रुन् । त्रमात्रः । “व्यञ्जनम्”^३
इति सपरगमनम् । ननु अस्थेदप्रतिषेधाभावात् प्रुनि प्रत्यये इडागमः कथं भवति । आगमशास्त्रमनित्यमिति
वचनात् शसुधातोः प्रुनि प्रत्यये इट् न भवति । “युग्यं”^४ पत्रे” इति शापकादेव (द्वा) ।

पुष्पाद्यस्त्रः स्मरो मतः ॥ ८३ ॥

पुष्पपर्यायतः अस्त्रपर्यायेषु शरपर्यायेषु तथा चापपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति । पुष्प-

१. गोभ्यो बाणेभ्यो हितेत्यर्थः । २. जिनाति जीयतेऽनया । “ज्या वयोहानौ” । “अन्येष्वपि
दृश्यते” इति डः । ३. अल भूषणादौ । सर्वधातुभ्य इन् । ४. का० उ० १।४८ । ५. का० सू० वृ० ।
६. कातन्त्रोणादौ नोपलब्धम् । ७. अमरपदे रेफद्वयसत्त्वाद् द्विरेफः । ८. कन्दर्पस्य धनुरैक्षवम् । इक्षुदण्ड-
निर्मितम् । अत एव काम इक्षुधन्वेत्युच्यते । मौर्व्यादयः शब्दा अन्ते यस्य, अलिः अलिपर्याय आदौ यस्येदृशं
तदधनुरिति यथाश्रुतपाठार्थः । अस्मिन्नर्थे धनुर्विशेषणतया अलिमौर्वीकम् भृङ्गमौर्वीकम् इत्यादि
टीकायां वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु मौर्व्यादिप्रोक्तमल्यादिरिति पाठो युक्तः । तत्र पदार्थयोजनाऽपि साधु संगच्छते ।
अल्यादिः कन्दर्पस्य मौर्व्यादि धनुश्च ऐक्षवम् इत्यर्थः । तदुक्तम्—“मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिलाः
कौस्तुभाः पुष्पकतोः” इति साहित्यदर्पणे । टीकया तु यथाश्रुतपाठानुगामिनी । ९. “हि गतौ वृद्धौ च” ।
इयं व्युत्पत्तिरग्निशिखार्थे बोध्या । शस्त्रार्थे “हन् हिंसायाम्” हन्यतेऽनयेति सुवचम् । १०. का० सू०
४।५।७३ । ११. का० सू० ४।४।६१ व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत् । १२. का० सू० १।१।२१ इति सकारस्य
परगमनम् । १३. का० सू० ४।२।३३ ।

4

१०

35

30

३५

१. “ध्वज गतौ” । पचाद्यच् । २. अम० को० २।८।९१। ३. का० उ० ३।४०। ४. का० उ० १।२८। ५. विजयते विजयन्तः, विजयशाली पुरुषः । औणादिको भूचप्रत्ययः । भूत्यान्तादेशः । विजयन्तस्येयं पताका वैजयन्तीति । ६. ते ते ध्वजपर्याया अन्ते यस्य भूपादिर्मानपर्यायश्चादौ यस्य ईदृशस्तथा शम्भुविघ्नकरश्च स्मरः कामः । तेऽपि स्मरपर्यायाः । तद्यथा भूपध्वजेत्यादि । ७. कुलकुट्टि-जीवान्यः श्वाऽस्यलङ्कारेषु” पा०सू० ४।२।६। इति खड्गार्थे ढकञ् । ८. हृषां नुदति हृषाण इत्यपि । ९. का० उ०सू० ५।१७। १०. “वल वेष्टने” । ज्वलादित्वाण्णः । वलनं वालो वेष्टनम् । करे वालो दत्स, करेण वल्यते वोभयमप्यन्यत्र । ११. का० उ० सू० ५।५२। १२. का०सू० वृ० १।२।७। १३. का० उ०सू० ४।५३।

वदिहनिमनिकम्यशिकपिभ्यः सः” स प्रत्ययः । “लृशोश्च^१”प । “पढोः कः^२से” अक् प । “^३कप्रसंयोगे कः” । अन् इति जातः । ऊहनं ऊहः । ऊहो विद्यते यस्याः सा ऊहिनी । अश्वाणामूहिनी अक्षौहिणी । “समा-
सान्तसमीपयोरसुवादेः” अस्यार्थः समासस्य अन्ते समासस्य समीपे च नकारस्य पूर्वपदस्यात् निमित्तात्
(परस्य) णो भवति वा । इदानीम् अक्षौहिणीप्रमाणं क्रियते । यद्भारतम्—

५

“एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।

त्रयश्च तुरगास्तज्जैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥

पत्त्यंगैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।

सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥

अनीकिनी”

१०

पत्तेस्त्रिगुणं सेनामुखम् । गजाः ३, रथाः ३, अश्वाः ९, पदातयः १५ इति सेनामुखम् । गजाः
९, रथाः ९, अश्वाः २७, पदातयः ४५ इति गुल्मम् । गजाः २७, रथाः २७, अश्वाः ८१, पदातयः १३५,
इति गणः । गजाः ८१, रथाः ८१, अश्वाः २४३, पदातयः ४०५ इति वाहिनी । गजाः २४३, रथाः २४३,
अश्वाः ७२९, पदातयः १२१५, इति पृतना । गजाः ७२९, रथाः ७२९, अश्वाः २१८७, पदातयः ३६४५
इति चमूः । गजाः २१८७, रथाः २१८७, अश्वाः ६५६१, पदातयः १०९३५ इत्यनीकिनी । दशानी”

१५

किन्त्योऽक्षौहिणी । गजाः २१८७०, रथाः २१८७०, अश्वाः ६५६१०, पदातयः १०९३५० । बलते
संबृणोति परभूमिं बलम् । उभयम् । अनिति प्राणिति तूर्यस्वनैः न नीयते पराभवं वा अनीकम् । बाहा
अश्वाः सन्त्यस्यां वाहिनी । साध्यते (अग्नेन) साधनम् । परान् शत्रून् चमति ग्रसते चमूः । “^४कृपि-
चमितनिधनिविधिसर्जिर्जिभ्य ऊः ।” चमुश्च । ध्वजाः सन्त्यस्यां ध्वजिनी । नायकं पिपतिं पृतना ।
अङ्गैः सिनोति बध्नाति सेना । “सिनोतेर्नः^५” । सेनायाः स्वायै यणि सैन्यम् । दाम्यति दण्डः । वरूथो रथ-

२० गुतिरस्त्यस्या वरूथिनी । पताकिनी । चक्रम् । अनीकिनी । “गूढः । तन्त्रम् ।

कदनं समरं युद्धं संयुगं कलहं रणम् ।

संग्रामं सम्परायाजी संयदाहुर्महाहवम् ॥ ८७ ॥

एकादश युद्धे । कथ्यते कदनम्^६ । समियूति प्रतिविकला भवन्त्यत्र नराः समरम् । युध्यते^७
(त्रा) रिभिर्युद्धम् । भटाः संयुज्यन्ते मिलन्त्यत्र संयुगम् । कलं मधुरं वाक्वं हन्त्यत्र कलहः । रणन्ति
२५ दुन्दुभयोऽत्र रणम् । संग्रस्यन्ते सत्वान्यनेनेति संग्रामः^८ । पुंलि । संपरैति मृत्युरत्र सम्परायः । भटा अज्यन्ते
क्षिप्यन्तेऽत्र आजिः । स्त्रीत्रोः । संयतन्तेऽत्र तान्तं संयत् । महाश्चासौ आहवः^९ महाहवः । तम् आहुः

१. का० सू० ३।६।६०। २. का० सू० ३।८।४। ३. “कप्रयोगे कः” । का० सू० पू०
२५६ सू० । ४. प्रथमः श्लोको महाभारत उपलभ्यते । तस्योपलब्धस्तु द्वितीयाध्याये पञ्चदशश्लोकत्वेन ।
इतरस्तत्र नोपलभ्यते । तत्र “एको रथः” इति श्लोकानन्तरम् — “पत्तिन्तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं
बुधाः । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥ त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः । स्मृता-
स्तिस्त्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्ष्णैः ॥ चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चमूस्त्वनीकिनी । अनीकिनीं दशगुणं
प्राहुः सेनामुखं बुधाः ॥ इति । श्लो० १६, १७, १८ । ५. अभि० चि० २।४।१३। ६. का० उ० सू० १।३।१।
७. का० उ० सू० ६।३६। ८. गूढशब्दस्य सेनायैज्यत्र प्रमाणं मृग्यम् । ९. “कद वैकल्ये” । कथ्यते
शिकूलयतेऽनेनास्मिन्वा । करणेऽधिकरणे वा ल्युट् । १०. सङ्ग्राम युद्धे” । सङ्ग्रामयन्तेऽवेति । हेमचन्द्रः ।
सङ्ग्रामणं सङ्ग्राम इति रामाश्रमः । ११. आदूयन्ते योद्धारोऽत्रेत्याहवः ।

ब्रुवन्ति । आयोधनम् । जन्यम् । प्रधनम् । प्रविदारणम् । मृद्यम् । आत्कन्दनम् । संख्यम् । समीकम् । अनीकम् । विग्रहः । समुदायः । अभ्यागमः । संस्फोटिः (टः) । समितिः । समित् । द्वन्द्वम् । सम्मर्दः । संगरः ।

गजो मतङ्गजो हस्ती वारणोऽनेकपः करी ।

दन्ती स्तम्बेरमः कुम्भी द्विरदेभमितङ्गमाः ॥ ८८ ॥

शुण्डालः सामजो नागो मातङ्गः पुष्करी द्विपः ।

करेणुः सिन्धुरः—

विंशतिर्गजे । गजति माद्यति गजः^१ । अच् । मतङ्गाद्वर्जातो मतङ्गजः । ^२सतमीपञ्चम्यन्ते जनेर्दः^३ । हस्तो विद्यतेऽस्य हस्ती । “जातौ तु दन्तहस्ताभ्यां कराच्चैव इनेव हि” । वारयति परान् शत्रून् वारणः । न एकेन पिबत्यनेकपः । करोऽस्त्यस्य करिन् । इदन्तोऽपि करिः । दन्तो विद्यतेऽस्य १० दन्ती । स्तम्बे वृणे रमते स्तम्बेरमः । “स्तम्बकर्णयो रमिजपोः” खच् । कुम्भो विद्यतेऽस्य कुम्भी । द्वौ रदौ यस्य द्विरदः । एति गच्छति शत्रुसम्मुखमितीभः । “इणो” यणवत् भ्रष्टय्यो भवति स च यणवत् । मितं गच्छतीति मितङ्गमः । “गमेरच्” खप्रत्ययः । “हत्वा रुपोर्मोन्तः”^४ । शुण्डां लाति गृह्णातीति, शुण्डालः^५ । सामः^६ सामवेदाज्जातः सामजः । नागे पर्वते भवो नागः । मन्यते जनेन मातङ्गः । पुष्करं विद्यतेऽस्य पुष्करी । द्वाभ्यां पिबति द्विपः । करोति कार्यं करेणुः । “हङ्कुञ्भ्यामेणुः”^७ १५ आभ्यामेणुः प्रत्ययो भवति । स्यन्दते स्रवति मदं सिन्धुरः^{११} । दन्तावलः । पञ्जी^{१२} । पीलुः । कालिङ्गः ।

तेषु यन्ता याता निपाद्यपि ॥ ८९ ॥

त्रयो हस्तिपके । यच्छतीति यन्ता । यातीति याता । निषीदति इत्येवंशीलो निपादी । गजयन्ता । गजयाता । हस्तियन्ता । हस्तियाता । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । अपिशब्दात्—आधोरणः । हस्तिपः । हस्त्यारोहः । गजाजीवः । महामात्रः । २०

नागाद्यरिः कण्ठी^{१३} (ण्ठि) रवो मृगेन्द्रः केसरी हरिः ।

चत्वारः सिंहे । नागारिः । गरिपुः । मतङ्गवैरी । हस्तिद्विद् । वारणवैरी । अनेकपसपनः । करिरिपुः । दन्तिवैरी । स्तम्बेरमरिपुः । क्वचिद्दृश्यते ईदृशः पाठः । कुम्भिवैरी । इभवैरी । मतङ्गशत्रुः । शुण्डालरिपुः । सामजद्वेषी । नागारिः । पुष्करिरिपुः । द्विपवैरी । करेणुरिपुः । सिन्धुरवैरी । इत्यादीनि पर्यायनामानि सिंहस्य ज्ञातव्यानि । कण्ठे रवो ध्वनिर्यस्य कण्ठीरवः । २५

१. गजति माद्यति गर्जति वा गजः । २. का० सू० ५।३।११ । ३. का० सू० २।६।१५। वृत्तिः । ४. का० सू० ४।३।१६ । ५. का० उ० सू० २।२६ । ६. का० सू० ४।३। ४५ । ७. का० सू० ४।१।२२ । ८. शुण्डाऽस्त्यस्येत्यपि । “प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्” पा०सू० ५।२।९६ इति मत्वर्थो लच्प्रत्ययः । ९. सामवेदो हि गीतपरः । तत्स्वरेण समाकृष्टा हस्तिनो वद्धा अभवन् । वद्धाश्चाकृष्य जनपदे समानीताः । गीतमूढा यतो वद्धसमानीताः । अत एव सामजा इत्युच्यन्ते । इति सङ्गतिः । प्रमाणान्तरमपि मृग्यम् । सामवेदमुच्चारयन् विधिर्गजान् सवर्जं । साम्ना सह जातत्वात्सामजा इति । १०. का० उ० सू० २।६ । ११. स्यन्दधातोरकर्मकत्वात्सवति मदमित्यर्थश्चिन्तनीयः । १२. अत्र कल्पद्रुकोपः १।५।१४४। प्रमाणम्— “करी मतङ्गजः पद्मी सूर्यकर्णो लतारसः” । इति । १३. छन्दो भङ्गनिपात्र कण्ठिरव इति पाठः प्रतिभाति । वर्णागमो गवेन्द्रादावित्येकारस्य इकार ईकारश्च विधेयः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिद्धे वर्णविपर्ययः ।
पोढशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

इत्यनेन एकारस्य ईकारः । मृगाणां चतुष्पदानां मध्ये इन्द्रः सृगेन्द्रः । केसराः स्कन्धकेशाः
मन्थस्य केसरी । क्रमप्राप्ते हरति ३हरिः । पञ्चाननः । हर्षज्ञः । नखरायुधः । मुगरिपुः । सिद्धः ।

५

व्याघ्रश्चमूरः शार्दूलः—

त्रयो व्याघ्रे । व्याजिघ्रति प्राणान् उवादत्ते व्याघ्रः । चमति अति पशून् चमूरः । परान्
शृणाति दिनस्ति ३शार्दूलः । द्वीपी । पुण्डरीकः । तरुः । चित्रकायः । मृगारिः ।

शरभोऽष्टापदोऽष्टपात् ॥ ६० ॥

त्रयोऽष्टापदे । शृणाति दिनस्ति शरभः । “४कुश्रालिगर्दिगसवलिवल्लिभ्याम्” । अष्टौ
१० पदान्यस्य अष्टापदः । अष्टौ पादा यस्यासौ अष्टपात् ।

क्रोडो वराहो दंष्ट्री च घृष्टिः पोत्रो च शूकरः ।

अष्टौ (पद्) शूकरे । पत्न्यलं संक्रमति क्रोडः^१ । वरानाहन्ति वराहः^२ । दंष्ट्राः सन्त्यस्य दंष्ट्री ।
घर्षतीति घृष्टिः । घृष्टिश्च । पृष्ठ पवने । पृ० भा० । पृष्ठ पवने वा । क्रै० । उभयपदी । पूषतेऽनेनेति पोत्रम्
“३दलशूकरयोः पुषः” घृन् । त्रमात्रः । नाम्यन्तगुणः । सि० नपु० । पोत्रमस्यस्य पोत्रो । सृते प्रचुश-
१५ पत्यग्नि, श्वयति वर्धते वा पीनत्वेन शूकरः^४ । शूकरश्च । दन्त्यतालव्यः । कौलः । किरः । किरिश्च ।

उट्रो मयः शृङ्खलिकः कलभः शीघ्रगामुकः ॥ ६१ ॥

पत्रोष्ट्रे । उष्यते दहते मरौ उट्रः^१ । “१०सर्वधातुभ्यः घृन्” । मद्यते गच्छति मयः^२ । मयंते
इत्यंके । शृङ्खलं बन्धनमस्य शृङ्खलिकः^३ । कं शिरो रभते उन्नमयतीति कलभः । करभश्च । शीघ्रं
गच्छतीति शीघ्रगामुकः । दासेरकः । दीर्घजङ्घः । ग्रीवी । खणः । धू प्राकोः (धूपकः) ।

२०

कौलेयकः सारमेयो मण्डलः श्वा पुरोगतिः ।

जिह्वापो ग्रामशार्दूलः कुक्कुरो रात्रिजागरः ॥ ६२ ॥

नव सारमेये । कुले गृहे भवः कौलेयः^१ (वकः) । सरमाया अपत्यं सारमेयः । मण्डं लाति
मण्डलः । चारंरादीन् श्वयति गच्छति श्वा । श्वानोऽदन्तोऽपि । पुरो गच्छति पुरोगतिः ।^२ जिह्वां शरीरं

१. “पृषोदरादयः” इति शा० सू० २।२।१७२। कारिका । २. प्राणान् हरतीत्यंता-
चानेवान्यत्र । ३. बद्ध्वा शारयतीति शार् । छिप् । दूयते इति दूलः । अन्तर्भावितण्यज्ज्यां दूङ् । शार्-
चासौ दूलश्चेति विग्रहः । ४. का० उ० सू० ३।१२। ५. “कुड घनत्वे” । क्रोडनं घनत्वं सोऽस्यास्तीति क्रोडः ।
“अर्श आद्यच्” इति रामाश्रमः । ६. वरमाहन्तीति, वर आहारो यस्येति वा पृषोदरादित्वात् । ७. का० सू०
४६।६२। ८. सुवं प्रसवं करोतीति । शूकोऽन्त्यस्य शूकरः खरोमत्वात् । शूकं राति वा । शू इतिष्वनि
करोति वा । ९. वष्टि इच्छति कण्टकवृक्षादनं मरुभूमिं वा इति उट्रः । “सर्वधातुभ्यः घृन्” इति का० उ०
४।२६। सृते दुर्गसिंहः—“वश कान्ता” । वष्टाति उट्रः करभः । अस्य घृन्नन्तस्य सम्प्रसारणं निपातना-
त्यस्य च” । इत्याह । १०. का० उ० सू० ४।३९ । ११. मीनात्यहीन् मयः । “मीज् हिंसायाम्” । पचाद्यच् ।
इति वा । १२. शृङ्खलमस्य बन्धनं करमे” पा० सू० ५।२।७९ । इति कन् । तेन शृङ्खलक इति साधुः ।
“स तु शृङ्खलकः काष्ठमयैः स्यात्पादबन्धनैः” । इति अभि० चि० । १३. “कुलकुक्षिप्रीवाभ्यः श्वाऽस्थलङ्कारेणु”
पा० सू० ४।२।९६। इति श्वाऽर्थे ढकच् । १४. जिह्वया रसनया पिवतीति विग्रहः सुवचः । जिह्वा शरीरं
पातीत्यपि सम्भवति ।

पाति रक्षति जिह्वापः । ग्रामाणां शार्दूलो व्याघ्रः ग्रामशार्दूलः । कुक् शब्दं करोतीति कुक्कुरः^१ । कुर शब्दे । कुकुरश्च । रात्रौ जाग्रति रात्रिजागरः । लेड्वहः । बुक्कणः । भषणः । मृगदंशः । शालावृकः ।

हेम चाष्टापदं स्वर्णं कनकार्जुनकाञ्चनम् ।

सुवर्णं हिरण्यं भर्मं जातरूपं च हाटकम् ॥ ६३ ॥

तपनीयं कलाधौतं कार्तस्वरशिलोद्भवम् ।

५

पञ्चदश स्वर्णे । हिनोति वर्धतेऽनेन हेमन् । नान्तम् । अदन्तं हेमं च । अष्टसु लोहेसु पदं प्रति-
ष्टास्य अष्टापदम् । “अष्टनः^२ संज्ञायाम्” इति दीर्घः । शोभनो वर्णोऽस्य स्वर्णम् ।
उकारलोपः । अथवा समासे वर्णस्य वा वलोपमाहुः । यथा पञ्चाणो मन्त्रः । कनति दीप्यते कनकम् ।
“कनिचनिभ्यामकः^३” । कनी दीतिकान्तिगतिपु । अर्जं सर्जं अर्जने । अर्जतीत्यर्जुनम्^४ । “अकृतवृज्वमि”-
दार्यजिभ्य उनः” । काञ्चति शोभां बध्नाति काञ्चनम् । शोभनो वर्णो यस्य सुवर्णम् । उभयम् । पुण्यं जिहीते
हिरण्यम् । अथवा ओहाक् त्यागे । हीयते हिरण्यम् । “हो^५ हिरश्च” अस्मादन्यः प्रत्ययो भवति
हिरादेशश्च । भ्रियते धार्यते नान्तम् भर्मन् । अदन्तं च भर्मम् । जातं रूपं यस्य जातरूपम्^६ । क्लीवे ।
तथा च “यशस्तिलके—“असङ्गस्पृहोऽपि जातरूपस्पृहः ।” इति हाटकम् । इट दीर्घः । अग्निना
तप्यते तपनीयम् । कला धावति गच्छति कलधौतम्^७ । कृतस्वराकरे भवं कार्तस्वरम् । शिलायाः
पाषाणादुद्भवो यस्य शिलोद्भवम् । शातकुम्भम् । गाङ्गेयम् । कर्तुरम् । चामीकरम् । महारजतम् ।
रक्मम् । रुम्मम् । जम्बूनदम् । कल्याणम् । गिरिकं । चन्द्रवसु च ।

१०

१५

रूप्यं रजतं गुलिका-

त्रयो रूप्ये । रूप्यते जना मुह्यतेऽनेन रूप्यम्^{११} । जनं रजति रजतम् । रज्यते हेम्ना रजतं वा ।
गुड रक्षायाम् । गुडति रक्षति आपदः सकाशाद् गुलिका । गुडिका च । कलाधौतम् । तारम् । सितम् ।
दुर्बर्णम् । खर्जूरम् । श्वेतम् ।

२०

शुक्तिज मौक्तिकं तथा ॥ ६४ ॥

द्वौ मौक्तिके । शुक्त्या जलादियानोपकरणद्रव्यविशेषाज्जातम् शुक्तिजम् । मुक्तानां समूहो
मौक्तिकम् । समूहेऽर्थे इकण् ।

वित्तं वस्तु वसु द्रव्यं स्वार्थं रा द्रविणं धनम्-

कस्वरं

२५

दश धने । विन्दति पुण्यकृतं वित्तम् । धात्वर्थेन व्युत्पत्तिः क्रियतेऽमरकीर्तिना । ‘विद्लृ लाभे ।
विद् । विद्यते स्म भुज्यते (स्म) वित्तम् । निष्ठाक्तः । “भित्तिर्वित्ताः^{१२} शकलाधमर्णभोगेषु” वित्तमिति

१. कुक् इति शब्दं कुरति उच्चारयतीति विग्रहः । द्गुपधत्वात्कप्रत्ययः । यद्वा क्रीक्रे
ऽस्थ्यादिक्मादत्ते कुक् । “कुक् आदाने” । क्प् । कुरति शब्दायते कुरः । कुक् चासौ कुर्येति
विग्रहः । २. पा० सू० ६।३।१२५ । ३. का० उ० सू० ३।४८ । ४. अर्ज्यते पुण्यैरर्जुनम् । ५. का०
उ० सू० २।६० । ६. का० उ० सू० ३।३ । ७. अकृतकरूपमित्यर्थः । अथवा प्रशस्तं जनं जातरूपम् ।
प्रशंसायां रूपप्रत्ययः । ८. सुदत्तमुनिवर्णने आ० । ९. हाटकाकरभवत्वाद् वा हाटकम् । १०. कला
सुवर्णकलिका धौता गता धावति गच्छति वा यत्मादिति कलधौतम् । ११. रूप रजतिनायान् । प्यन्तः ।
अचो यत् । १२. का० सू० ४।६।११४ ।

निपातः । निपातस्येङ् न भवति । “दाहस्य^१ च” तो नो न भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “कमि^२-
मनिजनिवसिहिभ्यश्च” एभ्यस्तुन् प्रत्ययो भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “पय्य^३सिवसिहनिमनि-
त्रपीन्दिकन्द्रिब्रिन्नयणिभ्यश्च” एभ्य एकादशभ्यः उः प्रत्ययो भवति । द्रूयते गम्यते द्रव्यम् । परं स्वति
अन्तं नयति अथवा पुण्यं स्वनति स्वः^४ स्वम् । उभयम् । पुण्यकृतमियर्ति अर्थम् । गुणान् राति रैः ।
५ “राते^५डैः ।” स्त्रीभ्रोः । द्रूयते गम्यते द्रविणम् । दधाति धारयति सारत्वं धनम् । कश गतौ । कशतीत्येवं
शीलं कस्वरम् । “^६कसिपिसिथियासीशस्याप्रमदां च” वरप्रत्ययः । युग्नं । सारम् । स्वापतेयम् । ऋ-
क्थम् । रिक्थम् । हिरण्यम् । विभवः ।

तत्पतिं प्राहुः कुवेरं चैकपिङ्गलम् ॥ ६५ ॥

वैश्रवणं राजराजमुत्तराशापतिं तथा ।

१० अलकानिलयं श्रीदं धनपर्यायदायकम् ॥ ६६ ॥

सत कुवेरे । तस्य पतिः तत्पतिः तं कुवेरं प्राहुर्वृन्ति । वित्तपतिः । वसुपतिः । वस्तुपतिः ।
द्रव्यपतिः । स्वपतिः । अर्थपतिः । रा(रै)पतिः । द्रविणपतिः । धनपतिः । कस्वरपतिः । इत्यादिपर्यायनामानि
कुवेरस्य ज्ञातव्यानि । कुत्सितो वेरो देहः कुञ्जत्वाद्यस्य स कुवेरः । पिङ्गलैकनेत्रत्वादेकपिङ्गलः । विश्र-
वसोऽपत्यमणि शिवादित्वात् । शादेशो वैश्रवणः । राज्ञां यद्वाणां राजा राजराजः । उत्तराशयाः पतिः
१५ उत्तराशापतिः । अलका निलयो गृहं यस्य अलकानिलयः । श्रियं दयते श्रीदः । धनपर्यायदायकः ।
धनदायकः । धनदः । वित्तदायकः । वित्तदः । वसुदायकः । वसुदः । द्रव्यदायकः । द्रव्यदः । स्वदायकः ।
स्वदः । रैदायकः । रैदः । द्रविणदायकः । द्रविणदः । कस्वरदायकः । कस्वरदः ।

राष्ट्रं जनपदो निर्गो जनान्तो विषयः स्मृतः ॥

पञ्च जनपदे । राजते राष्ट्रम् । तथा च सोमनीतौ—“पशुधान्यहिरण्यसंपदा राजते
२० शोभते इति राष्ट्रम्” । जनी प्रादुर्भावे । जन् । जायते कश्चित्तमन्ये प्रयुञ्जते । “धातोश्च^१हेतौ” इन् प्रत्ययः ।
अस्योप० दीर्घः । जानिरिति जातम् । “जनिबध्योश्च” ह्रस्वः । जनि जातम् । जनयन्ति प्रजां धनमिति
जनाः । “अच्^२ पचादिभ्यः” अच् प्रत्ययः । “कारितस्याना०^३” कारितलोपः । पद गतौ । पद् । जनैर्वर्णाश्रम-
लक्षणैः पद्यते गम्यते प्राप्यते आश्रीयत इति जनपदः । “अच् पचादेः^४” अच् प्रत्ययः । जनपद इति जातः ।
तथा च सोमनीतौ—“^५जनस्य वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेर्वा स्थानमिति जनपदः ।” निर्गम्यते
२५ यस्मिन्निति निर्गः । “निर्गो^६ देशेऽधिकरणे” इति डप्रत्ययः । देशादन्यत्र—निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गमनो
गिरिः । जनानामन्तो निकटे जतान्तः । पिङ् वन्धने । “धात्वादेः^७ पः सः” सि० विपू० । विषिष्वन्ति
अस्मिन्निति विषयः । “पुंसि संज्ञायां^८ घः” नाम्न्यं^९ गुणः । “ए^{१०} अय्” तथा । च सोमनीतौ—
“^{११}विषिधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सद्गानि गजान् नृवाजिनश्च सिनोति बध्नातीति विषयः ।”

पूः पुरी नगरं चैव पट्टनं पुटभेदनम् ॥ ६७ ॥

१. का० सू० ४।६।१०२। २. का० उ० सू० १।२७। ३. का० उ० सू० १।६। ४. “पोऽन्त-
कर्मणि” । वप्रत्ययः । “स्वन शब्दे” डप्रत्ययो वा । ५. का० उ० सू० २।२७। ६. का० सू० ४।४।५७।
७. जन० समु० १।८. का० सू० ३।२।१०। ८. का० सू० ३।४।६७। १०. का० सू० ४।२।५८। ११. का०
सू० ३।६।४४। १२. घञर्थे कविधानम्, पुंसि संज्ञायां घः इति कर्मणि कप्रत्ययो घप्रत्ययो वा वक्तव्यः ।
न तु पचाद्यच्; तस्य कर्तरि विधानात् । १३. जन० समु० ५। १४. हे० श० ५।१।१३३। १५. का० सू० ३।८।२४।
१६. का० सू० ४।५।६६। १७. का० सू० ४।५।१। १८. का० सू० १।२।१२। १९. जन० समु० ३।

षट् (पञ्च) नगरे । पृ पालनपूरणयोः । पृ । क्रै० । पृणातीत्येवंशीला पूः । “^१क्रिञ्जिपृथुर्वि-
भासाम्” क्रिप् । “^२उरोष्ठयोपधस्य च” उर् । पुर् जातम् । “^३नामिनोर्वोर०” पूर् । वेलोपः^४ । सिः ।
“व्यञ्जनाच्च” सिलोपः । “^५रेफसोर्विसर्जनीयः” रस्य विसर्गः । पूः । अदन्तः । पुरं पुरी च । इदन्तोऽपि
पुरिः । नगाः सन्त्यत्र, ग्राम्यत्वं नश्यत्यत्र वा नगरम्^७ । क्लीवे । नगरी च । नानादिग्देशागतानां
वणिजां भाण्डानि पतन्त्यत्र पत्तनम् । पट्टनं च । अत्र स्मृतिभेदः—

“पट्टनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव वा ।
नौभिरेव तु यद्गम्यं पत्तनं तत्प्रचक्षते ॥”

पुटा वासा भिद्यन्तेऽत्र पुटभेदनम् । क्लीवे । अधिष्ठानम् । निगमः । द्रङ्गः । स्थानीयम् ।

वक्त्रं लपनमास्यं च वदनं मुखमाननम् ।

पणमुखे । वक्त्र परिभाषणे । उच्यतेऽनेन वक्त्रम् । “सर्वधातुभ्यः^८ वृन्” । रप् लप् जल्प् व्यक्तायां १०
वाचि । लप्यतेऽनेन लपनम् । युट् । अत्यतेऽस्मिन्नास्यम्^९ । “^{१०}कृत्यल्युटो बहुल”मिति ण्यच् । वद व्यक्तायां
वाचि । उच्यतेऽनेन वदनम् । महति मुखति स्तोत्रेण वा मुखम्^{११} । खन्यते वा मुखम् । उणादौ । सुख
दुःख तत्क्रियाम् । चौरादिकत्वादिन् । सुखयति अन्नादिखादनेनेति मुखम् । “सुखेः^{१२} को मुखश्च” ।
सुखेः कः प्रत्ययो भवति धातोर्मुखश्च । इकार उच्चारणार्थः । आ अनिति श्वसित्यनेन आननम् । तुण्डम् ।

श्रवणं श्रोत्रं श्रवश्चापि कर्णं चैव श्रुतिं विदुः ॥ ६८ ॥

पञ्च कर्णे । श्रूयतेऽनेन श्रवणम् । श्रूयतेऽनेन श्रोत्रम् । क्लीवे । श्रुणोत्यनेन सान्तम् श्रवः ।
क्लीवे । करोति शब्दावधानं कर्णः^{१३} । कर्णयति वा कर्णः । छिद्रः कर्णभेदे । श्रूयतेऽनया श्रुतिः ।
त्रियाम् । विदुः कथयन्ति ।

दृग्दक्षि चक्षुर्नयनं दृष्टिर्नेत्रं विलोचनम् ।

सप्त नेत्रे । दृश्यतेऽनया दृक् । तालव्यान्तः । अशू व्याप्तौ । अश्रुते व्याप्नोत्यनेनात्मा घटादीन- २०
र्थानिति अक्षि । “^{१४}अशिक्षुषिभ्यां सिक्” । चण्टे हृदयाकृतं सान्तम् चक्षुः । “^{१५}ऋपृवपिचक्षिजीव-
तनिधनिभ्य उस्” । नीयते चित्तं विषयेषु अनेन नयनम् । दृश्यते प्रकटार्थोऽनया दृष्टिः । नीयतेऽनेन
दृश्यं नेत्रम् । उभयम् । विशेषेण लोच्यते अवलोक्यतेऽनेन विलोचनम् । अक्षम् । तारका । ज्योतिः ।

कटाक्षं केकरापाङ्गं विभ्रमस्तस्य वैकृतम् ॥ ६९ ॥

तस्य नेत्रस्य वैकृते षट् (पञ्च) । कटयतीति ^{१६}कटाक्षम् । उभयम् । के (शिरसि) २५

१. का० सू० ४।४।५७। २. का० सू० ३।५।४३। ऋकारस्योत्वम् । ३. का० सू० ३।८।१४। इति
दीर्घः । ४. का० सू० ४।१।३४। ५. का० सू० २।१।४६। ६. का० सू० २।३।६३। ७. “नगपां-
पाण्डुभ्यश्चेति” पा० सू० ५।२।१०७। वार्तिकेन मत्वर्थयो रः । अथवा नश् धातोरौणादिकोऽरप्रत्ययः
शस्य गत्वे च । ८. का० उ० सू० ४।३।१। ९. आस्यन्दतेऽग्लादिना प्रक्षयत्यत्रेति । १०. “कृत्यल्युटो-
न्यत्रापि” इति का० सूत्रम् । ४।५।९२। टीकोक्त्यथाश्रुतसूत्रन्तु पाणिनीयम् ३।३।१९३। ११. खन्यते-
वदार्थते फलादिकमनेनेत्यपि । “दित्खनेर्मुट् चोदात्तः” उ० अच् स च डित् मुडागमश्चेत्यन्यत्र । “मुदि-
तानि खानोन्निद्रयाण्यत्रेत्येके” इति क्षीर० स्वा० । १२. का० उ० सू० ६।६५। १३. टीकोक्तविग्रहे करोतेरौणा-
दिको णप्रत्ययः । कीर्यते शब्दग्रहणाय क्षिप्यते, कीर्यते शब्दोऽस्मिन्निति वा, किरति शरीरे नुत्नमिति वा ।
१४. का० उ० सू० ६।५७। १५. का० उ० सू० २।४६। १६. कटेऽतिशयितेऽक्षिणी यत्र, कटं गण्डमदिति
व्याप्नोति वेति रामाश्रमः । कटे आक्षिपतीति क्षीरस्वा० ।

किरति विक्षेपं क्षिपतीति (कर्पतीति) केकरः । न पाति कामिनमपाङ्गः^१ । उभयम् । विभ्रमणं विभ्रमः । विकृतस्य भावो वैकृतम् ।

दन्तवासोऽधरोऽप्योष्ठे वर्णितो दशनच्छदः ।

चत्वारश्चतुर्थे ओष्ठे । दन्तानां वासो दन्तवासः । अर्धति शोभामधरः । “अधो^२ भवोऽधरो वा । ओष्ठाभ्यां सहितावधरो वा । अधरोऽप्योष्ठमात्रे वर्तते” । उपति दहति सपत्नीहृदयमोष्ठः । उच्यते तीक्ष्णाहारेणोष्ठो वा । वर्णितः कथितः । दशनस्य छदो^३ दशनच्छदः ।

शिरोधरो गलो ग्रीवा कण्ठश्च धमनी धमः ॥ १०० ॥

पङ् गले । शिरो धरति शिरोधरः । शिरोधरा च । गलति भोजनं गलः । गृणाति गिरति वा ग्रीवा । उणादौ गुशब्दे गृणातीति ग्रीवा । “शर्वजिह्वाग्रीवाः^४” एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठि १० कण्ठः । “कण्ठः^५” अस्मादुप्रत्ययो भवति । धमः सौत्रो धातुः । धम्यतेऽनया धमनिः । इदन्तः । स्त्रियामीः । धमनी । धमति धमः । मन्वा । कन्धरा ।

दोर्दोपा च भुजो बाहुः—

चत्वारो बाहुः । दम्यते विनीयते परोज्जेन दोः । सान्तम् । “दमेडोस्” । दूपयति दुष्टं वा इति दोपा । आदन्तः । अव्ययः । न व्ययते । भुज्यतेऽनेन भुजः । निपातनात् चजोः कप्रत्ययं न भवति । नामिन इति गुणश्च न भवति । “भुजन्युजो^६ पाणिरोगयोः” इत्यस्मिन्नर्थे निपातनात् । भुजा च । वहत्यनेनेति १५ बाहुः । “बहिस्वदि^७ (रहि) तलि पश्चिम्य उण्” । प्रकोष्ठः ।

पाणिर्हस्तः करस्तथा ।

त्रयो हस्ते । पणायते व्यवहरत्यनेन पाणिः । “अजिजन्यतिरशिपणिभ्यः” एभ्य इङ् भवति । हस्ते हस्तः । “हस्तेलः । कीर्यते क्षिप्यतेऽनेन करः । शयः । शम^८ इत्यन्यः । पञ्चशाखः ।

२०

प्राहुर्बाहुशिरोऽसश्च—

बाहुशिरोः अंस इति संज्ञां प्राहुः कथयन्ति । अस्यते भारेणांसः^९ । स्कन्धश्च ।

हस्तशाखा कराङ्गुलिः ॥ १०१ ॥

द्वौ अङ्गुल्याम् । हस्तस्य शाखा इव हस्तशाखा । आकुञ्चनादिकर्माणि अङ्गति गच्छति अङ्गुलिम् । श्रीकलीवे । अङ्गुली । करस्याङ्गुलिः^{१०} कराङ्गुलिः । एवमङ्गुरम् । अङ्गुरी ।

२५

नासा घ्राणम्—

१. अपाङ्गुलीत्यपाङ्गः । “अगि गतौ” । अच् । २. “अधो भवः” इत्यारभ्य “वर्तते” इत्यन्तं क्षीर-स्वामिभाष्यमत्रोद्धृतम् । तद्भाष्ये “ओष्ठाधरो तु” इत्यमरोक्तमूलपदस्य व्याख्यारूपम् “ओष्ठाभ्यां सहितावधरो” इति वाक्यमन्वानुसरणेनात्रोद्धृतमप्रस्तुतमिति विवेकः । ३. दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति तदाशयः । पुंसि संज्ञायां घः । ४. का० उ० सू० २।२। ५. का० उ० सू० १।४२। ६. का० उ० सू० २।३१। ७. का० सू० ४।६।६।४। ८. का० उ० सू० १।३। ९. का० उ० सू० ४।६। १०. का० उ० सू० ४।२७। “नृगवा-इत्यमिदमितलूप्यस्तः” इति पूर्णं सूत्रम् । ११. अत्र प्रमाणम्—“पाणिः शयः शमो हस्तः” इत्यमरमाला । “पञ्चशाखः शयः शमः” इति अभि० चि० । १२. अस्यते समाहन्यते इत्यर्थः । “अंस समाघाते” । अंस धातुश्रुदादिः । यद्वा “अम गतौ” अमति अम्यते वा अंसः । औणादिकः सन्प्रत्ययः । १३. अङ्गुलि इत्यत्र “अङ्गे क्लः” का० उ० सू० ६।४८। इत्यङ्गधातोः क्लप्रत्ययः । अङ्गुलिशब्दे तु “अङ्गयतिन्यामुलीयि” का० उ० ३।३०। इत्यलिप्रत्ययः । स्त्रियामीः । अङ्गुली क्लति ।

द्वौ नासिकायाम् । नासते शब्दायते नास्यतेऽनया वा नासा^१ । नेस्ना^२ च । जिघ्रत्यनेन घ्राणम् । क्लीवे । सिङ्घनी । नासिका । घोणा ।

उरो वक्षः

द्वौ भुजमध्ये । अर्यते गम्यते उरः^३ । ४ “अर्तेरुश्च” अस्मादसुन्प्रत्ययो भवति अस्य उरादेशो भवति । ऋ गतौ । अस्य धातोः प्रयोगः । वक्ति वार्णी वक्षः । “वचेः” सोऽन्तश्च” अस्मादसन् प्रत्ययो भवति सोऽन्तः । अकार उच्चारणार्थः । ६ चवर्गस्य किः । “७ निमित्तादि” त्यादिना पत्वं च ।

कुक्षिः स्याज्जठरोदरम् ।

त्रयो जठरे । कुषति (कुष्णाति) निष्कर्षत्याहारं कुक्षिः^८ । पुसि । कुक्षम् । क्लीवे । जमति जठरम् । अथवा जठ सौत्रोऽयं धातुः । उणादौ निपातोऽस्ति । उनत्ति क्लेदयत्याहारमुदरम् । एते उभयम् । पिचण्डम् । तुन्दम् ।

स्तनः पयोधरकुचौ वक्षोज इति वर्णितः ॥ १०२ ॥

चत्वारः कुक्षौ । स्तन्यते बालैः ^९स्तनः । पयो धरतीति पयोधरः^{१०} । कोचते स्त्री मृद्यमानेऽत्र, कुच्यते मर्दनेन आकुलीक्रियते वा कुचः । कूचश्च । वक्षति जातो वक्षोजः । उरसिजः । वक्षोरुहः ।

कटिर्नितम्बं श्रोणी च जघनं-

चत्वारः कट्याम् । कट्यते वस्त्रैराच्छाद्यते कटिः । कटी । कटः । कटम् । नितरामतिशयेन तम्यते काङ्क्ष्यते^{११} नितम्बः । आश्रीयते कामिभिः श्रोणः । नदादित्वादीः । श्रोणी । इदन्तोऽपि श्रोणिः^{१२} । त्रियामी । श्रोणी । हन्ति चित्तमिति जघनम् । “१३ हनेर्जघश्च” । चकारात् काञ्चीपदम् । कलत्रम् । कडत्रम् । जघनम् । ककुब्जती । आरोहः । कटीरम् । त्रिकस्थानकम् । स्थानपदाभावेऽपि त्रिकम् । फलकं च ।

जानु जहु च ।

द्वौ जानौ । गन्तुं जायते जानुः^{१४} । “१५ कृवापाजिस्वदिसाध्यशूढसनिजनिचरिचटिभ्य उण्” । जहाति ^{१६}जहुः । अष्टीवान् । जङ्घा^{१७} ।

चलनं चरणं पादं क्रमोऽहिश्च पदं विदुः ॥ १०३ ॥

१. “णासु शब्दे” । नास् धातुः । अच् घञ् वा । २. नेदमतोऽन्यत्र समुपलब्धम् । ३. अर्यते गम्यते बलेनेति शेषः । अथवा उरस् बलार्थः कण्ड्वादिः । उरस्यति बलमाधत्ते उरः । क्तिप् । ४. का० उ० सू० ४।६७। ५. का० उ० सू० ४।६२। ६. का० सू० ३।६। ५। ७. “चवर्गस्य किरसवर्णे” । इति पूर्णं सूत्रम् । ८. का० सू० ३।८। २६। “निमित्तात्प्रत्ययविकारागमस्थः सः पत्वम्” इति पूर्णं सूत्रम् । ९. “कुप निष्कर्षं” “अशिकुपिभ्यां सिक्” का० उ० सू० ६।५७। १०. “स्तन गदी शब्दे” स्तनति कथयति यौवनोदयम् । स्तन्यते वर्ण्यते कामुकैर्वा स्तन इत्यन्यत्र । ११. धरतीति धरः । पचायच् । पयसो धरः पयोधरः । इति बोध्यम् । टीकोक्तविग्रहे तु कर्मण्यणि पयोधार इति स्यात् । “११. तम्य गतौ” नितम्बति गच्छतीति, निभृतं तन्यते कामुकैः निभृतं ताम्यति सुरतसम्मर्दाद्वा नितम्ब इति रामाश्रमः । १२. श्रूयते किङ्किणिष्वनिरत्र “श्रु भवले” श्रोणादिको णिः । इति हेमचन्द्रः । “श्रोणु सङ्घाते” श्रोणति विविधशरीरावयवैः सङ्घातोभवतीति श्रोणिः । “सर्वधातुभ्य इन्” इति रामाश्रमः । १३. का० उ० सू० २।३७। १४. जायते ऽनेनावृष्टनादि जानुरिति हेमचन्द्रः । १५. का० उ० सू० १।१। १६. नात्र कोपान्तरप्रमाणमुपलब्धम् । १७. यद्यपि जानोरप्यगुल्फान्तं जङ्घा, जङ्घाजघनयोः सन्धिर्जानुरिति भेदः । तथापि जङ्घासामीप्याद् भेदाविवक्षया जानु-पर्यायो जङ्घेत्युक्तम् । तत्र भेदस्तु न विस्मर्तव्यः ।

पट् चरणे । चाल्यते चलनम्^१ । चरत्यनेन चरणम् । पद्यतेऽनेन पादः । घञ् । दान्तोऽपि पादः । 'क्रमु पादविक्षेपे' । काम्यत्यनेनेति क्रमः । 'अहि गतौ^२ । इदनुबन्धत्वाच्चागमः । अहृत्यनेनेत्वंङिः । "अहरेरिः" अहर्धातोरिप्रत्ययो भवति । अङ्ग्रिश्च । पद्यते पदम् । क्लीवे ।

शिरो मूर्धोत्तमाङ्गं कम्-

५ चत्वारो मस्तके । शृ हिंसायाम् । शीर्यते हिंस्यते शिरः । "उपिरंजिशृभ्यो यण्वत्" एभ्योऽसन् प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । तेनागुणः । अनुपङ्गलोपः । 'मूर्ध्ना मोहसमुच्छ्राययोः ।' मूर्धन्त्य-चाहताः प्राणिनो मूर्धा । *पूपादयः—'पूपन्यर्थमन्मज्जननुत्तन्वन्मूर्ध्नाहन्मातरि श्वन्क्लेदन्स्नेहन्-मूर्धन्पूपन्' एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । उत्तमं च तद् अङ्गम् उत्तमाङ्गम् । कै गे शब्दे । कायतीति कम् । शीर्षम् । मस्तकः । "कन्याङ्गं च नानार्थे ।

१०

प्रारभ्यं प्रेरितेरितम् ।

त्रयः प्रेरणे । प्रारभ्यते प्रारभ्यम् । "शकिसहिपवर्गान्ताच्च" यः प्रत्ययः । ईर गतौ कम्पने च । प्रेर्यते प्रेरितम् । ईरितम् । "नपुंसके भावे क्तः" ।

साम्प्रतं सरस्वतीनामानि प्रारभ्यन्ते आचार्यश्रीमदमरकीर्तिना-

वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती ॥ १०४ ॥

१५

सप्त वाण्याम् । उच्यते वाक् । "वचिप्रच्छिश्चिदृशुप्रुच्वां क्विर् दीर्घश्च" एभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति दीर्घश्चस्वरस्यैषाम् । वक्ति वचः^८ । "सर्वधातुभ्योऽसन्" । उच्यते वचनम् । वाण्यते वाणिः^९ । स्त्रियामीः । वाणी । विभर्ति जगद् धारयति, भरतो ब्रह्मा तस्येवं भारती । तथा च—

"आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।

ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"

२०

गीर्यते उच्चार्यते रान्तं गीः । सरः प्रसरणमस्तस्याः सरस्वतीः । ब्राह्मी । तथाहि—

"गौगौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते दुधैः ।

दुग्प्रयुक्ता पुनर्गोवं प्रयोक्तुः सैव शंसति ॥"

सिंहद्विपघने गर्जः-

सिंहे कण्ठीरवे, द्विपे गजे, घने मेघे च गर्ज^{११} शब्दः कथ्यते । गर्जनं गर्जः ।

२५

हेपाऽश्वे

अश्वानां शब्दे हेपा । हेपणम् । हेपा हेपा च ।

वृंहितं गजे ।

गजशब्दे वृंहितम् । वर्हणम् ।

स्फीकृतं धेनुकलमे-

१. चलत्यनेनेति चलनमिति सुवचः । २. अत्राभिधानचिन्तामणिः प्रमाणम् — "चरणः त्रमणः पादः पदोऽहिश्चलनः क्रमः" । इति । ३।२८०। ३. का० उ० सू० ४।५९। ४. का० उ० सू० २।५। ५. अत्र प्रमाणान्तराभावः । वराङ्गं कमनीयाङ्गमिति वा स्यात् । ६. का० सू० ४।२।११। ७. का० उ० सू० २।२३। ८. उच्यते वच इति कर्मणि विग्रहो युक्तः । ९. का० उ० सू० ४।५६। १०. "वण शब्दे" चुरादिः । ११. सिंहगजमेघध्वनौ गर्जशब्दः प्रयुज्यते । एवं वक्ष्यमाणतत्तद्ध्वनौ सर्वत्र योज्यम् ।

धेनुकलमे शिशुवत्से स्फीकृतं^१ स्फीतशब्दः कथ्यते ।

स्तमितं जलदे तथा ॥ १०५ ॥

जलदे मेघे मेघानां शब्दे स्तनितं कथ्यते । स्तन्यते स्तनितम् ।

स्यन्दने चीत्कृतं मन्त्रे भटे च हुङ्कृतं तथा ।

स्यन्दने रथशब्दे चीत्कृतं कथ्यते । मन्त्रे भटे च हुंशब्दः कथ्यते । हुं मन्त्रे, हुं परिप्रक्षे ५
हुं सत्त्वं सुण्ड ते भयादौ राक्षसोऽयम् । कुत्सने हुं निर्लज्जा । अनिच्छायाम् हुं हुं मुञ्च ।

सीत्कृतं मणितं कामे—

कामे कन्दर्पभोगप्रस्तावशब्दे सीत्कृतं मणितम् । सीत्क्रियते सीत्कृतम् । मण्यते मणितम् ।

खन्कृतं शृङ्खलायुधे ॥ १०६ ॥

शृङ्खलायुधे खन्कृतम् । सुगमम् ।

१०

मञ्जीरकं तुलाकोटिर्नूपुरं—

त्रयः स्त्रीणां चरणाभरणे । मञ्जिः सैत्रः । मञ्जत्याकर्षति चित्तं मञ्जीरम् । अथवा मञ्जु मधुर-
मीरयति मञ्जीरम् । तुलाकृतेर्जङ्घाया कोटिरिव तुलाकोटिः^२ । स्त्रीगतिं नौतीति नूपुरम्^३ । शिञ्जिनी ।
पादकटकः । हंसकम् । पदाङ्गदम् । कलापो नानार्थे ।

तत्र संसृतम् ।

१५

तत्र तस्मिन् मञ्जीरके तच्छब्दे संसृतं कथ्यते ।

झाङ्कृतं चाथ मरुति—

मरुति वायौ तच्छब्दे झाङ्कृतं कथ्यते ।

क्रौञ्चकृतं क्रौञ्चहंसयोः ॥ १०७ ॥

क्रौञ्चश्च हंसश्च क्रौञ्चहंसौ तयोः क्रौञ्चहंसयोः क्रौञ्चशब्दो मतः कथितः । तथा^४ चामरसिंहः— २०

“निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥”

तथा च भरतनाटके^५—

“षड्जं मयूरा ब्रुवते गावस्त्वृषभभाषिणः ।

आजाविकं तु गान्धारं क्रौञ्चः कणति मध्यमम् ॥

पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम् ।

धैवतं हेषते वाजी निषादं बृंहते गजः ॥

नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संस्पृशन् ।

षड्भ्यः संजायते यस्मात्तरमात्पड्ज इति स्मृतः ॥”

२५

१. नवप्रसूता गौ धेनुः त्रिंशद्वदो हस्तिशावकः कलभस्तयोः शब्दः स्फीकृतमुच्यते इति
शब्दार्थः । टीकास्वरास्यन्तु गोवत्सशब्दः स्फीकृतमित्येव प्रतिभाति । अत्र कोशान्तरप्रमाणान्नावात्कवि-
प्रयोगादर्शनाच्च मूलशब्दार्थाऽनुसरणमेव शरणम् । २. तुलां तुलया वा कोटयति । कुट प्रतापने तुरादिः ।
अच इः । यद्वा तुलाकारः कोटिरग्रमस्येति रामाश्रमः । ३. नुवन नूयते वा नृः । नृन् नूतने । नृन् ।
नुवि पुरति नूपुरम् । पुर अग्रगमने । इगुपधेति कः । ४. शब्दभेदप्रसङ्गाद् ग्रन्थान्तरोक्तमन्यशब्दभेदं
स्वरभेदं चाह । ५. अम० को० १।७।१। ६. “षड्जं” इत्याख्य “इति स्मृतः” इत्यन्तः “तथा च
भरतनाटके” इत्येवं टीकायामुपन्यस्तः पाठः “निषादर्षभगान्धार” इति स्त्रीत्वानिभाष्येऽन्येऽविकल
उपलभ्यते ।

प्रतीतं संस्तुतं लब्धं दृष्टं परिचितं स्मृतम् ।

५८ स्मृते । प्रतीयते प्रतीतम् । ण्ठ् स्तुतौ । ण्ठ् । “धात्वादेः पः सः ।” स्तुः सम्पूर्वः । सम्यक्-
प्रकारेण स्तूयते स्म संस्तुतम् । लभ्यते स्म लब्धम् । परिचीयते स्म परिचितम् । स्मर्यते स्म स्मृतम् ।

संस्थितं दशमीस्थं च परासुं च मृतं विदुः ॥ १०८ ॥

५ चत्वारो मृते । संतिष्ठते स्म संस्थितः । सम्पूर्वकस्तिष्ठतिः । दशमीं तिष्ठतीति दश-
मीस्थः । तथा च—

“प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।

तृतीये दीर्घनिःश्वासश्चतुर्थे भजते ज्वरम् ॥

पञ्चमे दह्यते गात्रं षष्ठे भुक्तं न रोचते ।

१० सप्तमे स्यान्महामूर्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे ॥

नवमे प्राणसन्देहो दशमे मुच्यतेऽसुभिः ।

एतैर्वर्गैः समाक्रान्तो जीवस्तत्त्वं न पश्यति ॥”

दशानां पूरणी दशमी तत्र तिष्ठतीति वा दशमीस्थः । परागता अस्वोऽस्य परासुः । म्रियते स्म
मृतं विदुः कथयन्ति ।

१५ खेदो द्वेषोऽप्यमर्षश्च रुट्कोपक्रोधमन्यवः ।

सत क्रोधे । खिद परिघाते । तुदादौ खिन्दति । दैन्ये रुधादिपाठात् खिन्दे (ततः खेदनं)

‘खेदः । भावे घञ् प्रत्ययः । द्विप् अप्रीतौ अदादौ । द्वेषणं द्वेषः । मृप तितिक्षायाम् । चुरादौ । शक्
मृप क्षमायाम् । दिवादौ विभाषितः । मृप सहने भ्वादौ परस्मैपदी । अमर्षणम् अमर्षः । कुप क्रुध रुष रोपे ।
रोषणं रुट् । सम्पदादित्वाद्भवे क्विप् । कोपनं कोपः । क्रोधनं क्रोधः । मन ज्ञाने । मन्यते^२ मन्युः ।

२० “^३जनिमनिदसिभ्यो युः” । एभ्यो युप्रत्ययो भवति । उणादित्वाद्योरनादेशो न भवति ।

हर्षः प्रमोदः प्रमदो मुक्तोपानन्दमुत्सवः ॥ १०९ ॥

सत हर्षे । हर्षणं हर्षः । प्रहर्षश्च । प्रमोदनं प्रमोदः । मदी हर्षे । प्रमदनं प्रमदः । “^४मदेः
प्रसमोर्हर्षे” प्रसमोरुपपदयोर्मदेरल् भवति हर्षार्थे । मोदनं मुद् दान्तः ख्रियाम् । तुप तुष्टौ । तोषणं
तोपः । आनन्दनम् आनन्दः । पुं सि । टुनदि समृद्धौ । उत्सवनम् उत्सवः । प्रीतिः । उत्कर्षः । उद्धवः^५ ।

कृपाऽनुकम्पानुक्रोशोऽहन्तोक्तिः करुणा दया ।

२५

षड् दयायाम् । कृप कृपायाम् । कृपणं कृपा । “^६वानुबन्धभिदादिभ्योऽङ्” इत्यङ् । “^७कृपेः^८
सम्प्रसारणम्” इति परसूत्रेणाङ् सम्प्रसारणं च । स्वमते^९ कृप कृपायाम् इति ज्ञापकात् सम्प्रसारणम् ।
“स्त्रियामादा ।” अनुकम्पनमनुकम्पा । अनुक्रोशन्त्यनेन अनुक्रोशः । पुं सि । न हन्तोक्तिः अहन्तोक्तिः ।
करोति विप्रादं चित्तं किरति वा करुणा । उणादौ डुकृञ् करणे । क्रियते करुणा । “^{१०}ऋकृतृवृज्दमिदार्ये-^{११}

१. द्वेषपर्याये खेदपाठश्चिन्तनीयः । खेदपर्यायस्तु “शोकः शुक् शोचनं खेदः” इति
अभि० चि० । क्रोधपर्यायस्तु — “कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिषा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ” इत्यमरः । २. मन्यते त्या-
ज्यत्वेनेति शेषः । ३. का० उ० सू० ४।१। ४. का० सू० ४।५।४। ५. उद्धवशब्दस्योत्सवार्थे प्रमाणम्—
“उद्धवो यादवभिदि महे च क्रतुपावके” । इति मेदि० को० वा० व० ३२ श्लो० । ६. का० सू०
४।५।८। ७. “कृपेः सम्प्रसारणं च” पा० गण सू० ३।३।१०। ८. कातन्त्रमतमत्र स्वमतम् । पाणिन्यादि-
सूत्रं परमतम् । ९. का० उ० सू० २।६०।

जिभ्य उनः" एभ्य उनः प्रत्ययो भवति । दयनं दया । दय दानगतिहिंसादानेषु । भिदाद्यङ् ।

शेमुपी धिपणा प्रज्ञा मनीषा धीस्तथाऽशयः ॥ ११० ॥

षड् बुद्धौ । शे इत्यव्ययम् । मोहः । तं मुष्णाति शमयति इति शेमुपी^१ । धृष्णोत्पनया धिषणा^२ । प्रज्ञानं प्रज्ञा^३ । मनुते जानात्यनया मनीषा । मनस ईषा मनीषा वा । "हल^४लाङ्गलयो-
रीपे मनसश्च" इत्यनेन अन्त्यस्वरादेर्लोपः । अत्र सलोपश्च । चकाराधिकाराहोकोपचाराद्वा सलोपः । ५
स्मृ ध्यै चिन्तायाम् । ध्यानं धीः । "सम्पदादित्वाद्भावे किप्^६ । 'ध्याप्योः सम्प्रसारणम्"^७ अनेनैव सम्प्रसारणं
दीर्घत्वं च । प्र० सिः । "रेकसोर्विसर्जनोयः" । आशेते तिष्ठति सर्वमन्नाशयः । तथा-प्रेक्षा । प्रतिभा ।
बुद्धिः । मतिः । मेधा । संख्या । संवित्तिः । उपलब्धिः ।

प्राज्ञमेधाविनौ विद्वानभिरूपो विचक्षणः ।

पण्डितः सूरिराचार्यो चाग्मी नैयायिकः स्मृतः ॥ १११ ॥

१०

दश सिद्धिषु । प्रजानार्ताति प्रज्ञः । प्रज्ञादित्वाद्वा प्राज्ञः । मेधात्यस्य मेधावी । "माया-
मेधास्रजो विन्" वाधिकारात्सर्वे एवैते विभाषया विभाषिताः । शेषेभ्यो मत्तुरिष्यते । मतिमान् । बुद्धिमान् ।
विद ज्ञाने । विद । वेत्ति जानातीति विद्वान् । "वर्तमाने श० शतृङ् । "अन्वि०" अदादि^{१२} । "वेत्तेः
१३ शतुर्वसुः" । शतृङ् स्थाने वसुः । तदादेशास्तद्वद्भवन्ति इति वचनात् वसोः शतृङ्वावेन सार्वधातु-
कत्वात् "अर्त्ताण्^{१४} घ्येसैकस्वरातामिड्वसौ" अनेनैकस्वरत्वात्प्राप्त इङ् न भवति । विद्वन् संजातम् । १५
"सिः । "सान्तमहतोर्नोपधायाः" दीर्घः । विदुषोऽपि । अभिगतं रूपं येनाभिरूपः । रूपं विद्या ।

"कोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रता ।

विद्या रूपं कुरुपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ।"

चक्षु धातुर्विपूर्वः । विविधं चष्टे विचक्षणः । नन्दादेर्युः । योरनः । १६ स्मृ० एत्वम् ।
विचक्षणो विद्वान् इत्यनेन विचक्षण इति निपातः । निपातस्य फलं ख्यादेशो न भवति । पण्डा बुद्धिः । २०
पण्डा संजाताऽस्येति पण्डितः । "१० तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । " "इवर्णावर्ण०" आकार-
लोपः । सिः । रेकः । पूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते बुद्धिः सूरिः । "१० भूस्वदिभ्यः क्रिः" एभ्यः क्रिप्रत्य-
यो भवति । को यण्वदर्थः । २० आचर्यते आचार्यः । "चरेराडि चागुरौ" । तथा चोक्तम्—^{२१} "इन्द्र-
नन्दिनीतिशास्त्रे-

"पञ्चाचाररतो नित्यं मूलाचारविदग्रणीः ।

चतुर्वर्णस्य सङ्घस्य यः स आचार्य इष्यते ॥"

२१

१. शेते इति शेमोहः । विच् । तमुष्णातीति, मूलविभुजादित्वात्कः । गौरादिलीप् ।
शमेः कसौ एत्वाऽभ्यासलोपे उगितश्चेति ङीपि शशामेति शेमुपीति ली० स्वा० । २. "धिप शब्दं" ।
देधेष्टीति । ली० स्वा० । ३. प्रज्ञायतेऽनयेत्यन्यत्र । ४. का० रू० पूर्वा० २८ सू० । ५. ध्यायतेऽनया
धीरित्यन्यत्र । ६. "सम्पदादिभ्यः किप्" का० रू० उ० ८०५ सू० । का० रू० मा० ६५८ सू० ।
७. का० सू० २।३।६३ । ८. का० सू० २।६।१५ । अत्र दुर्गवृत्तिः । १०. "वर्तमानं शन्तुजानशाय-
प्रथमैकाधिकरणामन्त्रितयोः" । का० सू० ४।४।२ । ११. "अन्विकरणः कर्त्तरि" का० सू० ३।२।-
३२ । १२. "अदादेर्लुग्विकरणस्य" का० सू० ३।४।९२ । १३. "शन्तुर्वसुः" । का० सू० ४।४।४ ।
१४. का० सू० ४।६।७६ । १५. का० सू० २।२।१८ । १६. का० सू० २।४।४८ । १७. का० रू० पू०
५०८ । १८. का० सू० २।६।४४ । १९. का० उ० सू० ३।५३ । २०. का० सू० ४।२।१४ । २१. नीतिक०
१५ श्लो० ।

प्रशस्ता वागस्त्यस्य वाग्मी । न्याये विचारे नियुक्तो नैयायिकः । धीरः । लब्धवर्णः । विपश्चित् । वृद्धः । आतरूपः । सन् । मनीषी । ज्ञः । दीपज्ञः । कोविदः । प्रबुद्धः । सुधीः । कृती । कृष्टिः^१ । कविः । व्यक्तः । विशारदः । संख्यावान् । मतिमान् ।

पारिपद्यो बुधः सभ्यः सदः संसत्समोचितः ।

५ पट् सभापुरुषे । परिपदि सभायां भवः पारिपद्यः । यण् । बुध अवगमने । बोधतीति बुधः । सभायां साधुः सभ्यः । कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । सदसि उचितो योग्यः सदुचितः । संसदुचितः, सभोचितः । सभासद् । सभास्तारः । सामाजिकः ।

परिपत्सभाऽस्थानपती—

त्रयः सभायाम् । परिपोदन्त्यस्यां परिपद् । सह भान्त्यस्यां सभा । आसमन्तात्स्थीयतेऽ
१० स्मिन् आस्थानम् ।

(^२अधिपति राजा)पतिः—आस्थानं सभा इत्यादिपर्यायनामतोऽधिपतिः पतिरित्यादिपर्याय शब्देषु सत्सु राज्ञो नामानि भवन्ति । परिषदधिपतिः । परिपत्पतिः । सभाधिपतिः । सभापतिः । आस्थानाधिपतिः । आस्थानपतिः ।

राजसूयो नृपक्रतुः ॥ ११२ ॥

१५ मण्डलेश्वरप्रजायां (प्रयाजे) द्वौ । पुञ् अभिपवे । पु । “^३धात्वा०” सः । राजन्पूर्वः राज्ञा सोतव्यो राज्ञा सूयते वा यस्मिन्निति राजसूयः । “^४राजसूयश्च” । ध्यण्प्रत्ययान्तो निपातः । नृपाणां राज्ञां क्रतुः नृपक्रतुः । तथा च “स्मृतौ—

“गोसवे सुरभिं हन्याद्राजसूये तु भूभुजम् ।
अश्वमेवे हयं हन्यात् पौण्डरीके च दन्तिनम् ॥”

२० विष्टरं मल्लिकापीठमासन्दीमासनं विन्दुः ।

पडासने । स्तूज् आच्छादने । विष्टरः । विस्तरणं विष्टरः । “स्वर^५वृहगमिप्रहामल् ।” अल् । नाम्यन्तगुणः । “वौस्तृणातेः” । संज्ञायां सस्य पत्वम् । “^६तवर्गस्य पटवर्गाट्टवर्गः ।” मल्ल्यते धार्यते मल्लिका । पेठतीति पीठम् । “पृपोदरादिवादीर्घः । आ समन्तात्सीदति तिष्ठत्यस्यामासन्दी” । आस्थते

१. अत्र प्रमाणम् अभि० चि० ३।५। “विद्वान् सुधीः कविविचक्षणलब्धवर्णा ज्ञः प्रातरूप-
कृतिकृष्ट्यभिरूपधीराः । मेधाविकोविदविशारदसूरिदोपज्ञाः प्राज्ञवण्डितमनीषिबुधप्रबुद्धाः ॥ व्यक्तो
विपश्चित्सङ्ख्यावान् सन्” इति । २. “अधिपती राजा” इति प्रतीकमाश्रित्य व्याख्यादर्शनादयं मूल-
पद्यांश इति, न भ्रमितव्यम् । पूर्वापरपादयोर्मध्ये तत्समावेशासम्भवात् पङ्क्तिरत्वेन स्वतन्त्रपादत्वा
भावात्, अत्र राजवर्णनस्याप्रसरत्वाच्च । एवं च सभाप्रसङ्गेन तदधिपते राजव्यपदेशार्थे-टीकाकर्तुं वि-
शेषवचनमित्येव युक्तं भाति । ३. का० सू० ३।८।२४। ४. का० सू० ४।२।४१। ५. “स्मृतौ” इत्युक्तम् ।
परमविकलः श्लोको यशस्तिलके आ० ७ क० ३० श्लो० ३ उपलभ्यते । ६. का० सू० ४।५।४१ ।
७. का० सू० ३।८।५। ८. शा० सू० २।२।१७२। ९. “आस उपवेशने” । अद्वाद्यः” पा० उ० सू०
४।६८। इति द्रष्टव्यो भवति, अमागमष्टित्वं च । टित्वान्धोप् । तथा चोक्तम्—“स्याद् वेत्रासनमासन्दी”
इति ३।३४८ । अभि० चि० ।

उपविश्यतेऽस्मिन्नासनम् । “^१कृत्ययुतोऽन्यत्रापि च” युट् । विदुः कथयन्ति ।

विष्टपं भुवनं लोको जगत्—

चत्वारो जगति । ^२विष्टपन्त्यत्र विष्टपम्^३ । भूतानि भवन्त्यस्मान्भुवनम् । लोक्यते लोकः । गच्छतीत्येवंशीलं जगत् । “^४युतिगमोर्द्वे च” क्विप् । गमो द्विर्वचनम् । अस्यासमकारलोपः । “^५कवर्गस्य चवर्गः” गस्य जः । ज गम् जातम् । “^६पञ्चमो” । दीर्घः । “^७यममनतनगमां कौ” पञ्चमलोपः । ५
आत् अत् । “^८धातोस्तोऽन्तः पानुवन्धे” तोऽन्तः । “^९वेलोपः । सिः । नपुंसकम् ।

तस्य पतिर्जिनः ॥ ११३ ॥

तस्य भुवनस्य पतिर्जिनः कथ्यते । अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्मांरातीन् जयतीति जिनः । “^{१०}इण्णशजिक्कृषिभ्यो नक्” । विष्टपपतिः । लोकपतिः । जगत्पतिः । इत्यादीनि जिनस्य पर्याय-
नामानिज्ञातव्यानि । १०

वर्षीयान् वृषभो ज्यायान् पुरुराद्यः प्रजापतिः ।

ऐक्ष्वाकुः (कः) काश्यपो ब्रह्मा गौतमो नाभिजोऽग्रजः ॥११४॥

द्वादश वृषभे । अतिशयेन वृद्धो वर्षीयान् । “^{११}प्रियस्थिरास्फिरोरुवहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घ-
वृन्दारकाणां प्रस्थस्फत्रर्वेहिगर्वर्धित्रवृद्धाधिवृन्दाः” । वृषेण अहिंसालक्षणेपेतवर्मेण भातीति “^{१२}वृषभः ।
“^{१३}ऋषिवृषिभ्यां यण्वत्” । आभ्यामभः प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । अयमेषां मध्ये प्रकृष्टो १५
वृद्धः प्रशस्यो वा ज्यायान् । “^{१४}वृद्धस्य च ज्यः” वृद्धशब्दस्य ज्यादेशो भवति । पू पालनपूरणयोः ।
पृणाति पालयतीति पुरुः । “^{१५}इषिधृषिभिदिगृधिमृदिपृथ्य कुः” एभ्यः कुप्रत्ययो भवति । अस्मिन्नहनि
अद्य^{१६} । इदमोऽद्भवावो यश्च परविधिः “^{१७}सद्योऽद्या^{१७} निपात्यन्ते” इति वचनात् । (आदौ भव आद्यः)
प्रजानाम् इन्द्रधरणेन्द्रचक्रवर्त्यादीनां पतिः स्वामी प्रजापतिः । इषु इच्छायाम् । वाञ्छयते लोकैः
ऐक्ष्वाकः^{१८} । तथा चार्षे महापुराणे—

“अङ्कनाच्च तदेक्षूर्णा रससंग्रहणे नृणाम् ।

इक्ष्वाकुरित्यभूदेवो जगतामभिसम्मतः ॥”

काश्यं क्षत्रियतेजः पातीति काश्यपः । तथा च महापुराणे—

“काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात् ।”

वृंहतीति ब्रह्मा ।

२०

२५

१. का० सू० ४।५।९२। २. “एष स्तप प्रतिघाते” अम० को० क्षी० स्वा० भाष्य एवोपलभ्यते, न
तु पाणिनिधातुपाठे । ३. विशन्त्यत्रेति रामाश्रमः । विशन्त्यस्मिन् जीवाजीवा इति हेमचन्द्रः । ४. का० सू०
४।४।४८ । ५. का० सू० ३।३।१३ । ६. का० सू० ४।१।५५। ७. का० सू० ४।१।६९। ८. का० सू०
४।१।३०। ९. का० सू० ४।१।३४। “वेलोपोऽपृक्तस्य” इति पूर्णं नृत्रम् । १०. का० उ० सू० २।५।१।
११. पा० सू० ६।४।१५७। १२. वृषेण भातीति विग्रहे आतोऽनुपसर्गे कः । भा दीर्घः । वर्पति धर्मांमृतमिति
विग्रहे “ऋषिवृषिभ्यां यण्वत्” इत्यभः । “वृषु सेचने” । १३. का० उ० सू० ३।१३ । १४. हे० उ० ७।४।५।३
१५. का० उ० सू० १।१०। १६. अत्र आद्यशब्दो न त्वयशब्दः । तेनादौ भव आद्य इति युक्तः प्रतिभाति ।
१७. का० सू० २।६।३७। १८. इच्छायाम् आ (रसावर्कणम्) अहतीति इक्ष्वाकुः । तत्र ऐक्ष्वाकः । तत्र
प्रमाणमाह—“अङ्कनाच्चेति” सङ्गतिः ।

“आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।

ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥”

अतः परो ब्रह्मा नास्ति । गौतमो गौत्रोऽज्यताराद् गौतमः । श्रद्धं महापुराणे—

“गोः स्वर्गः स प्रकृष्टात्मा गौतमोऽभिमतः सताम् ।

स तस्मादागतो देवो गौतमश्रुतिमन्वभूत् ॥”

नाभेर्जातो नाभिजः । अग्रे जातोऽग्रजः । अदृष्टत्वात् ।

सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यपः ।

नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम् ॥ ११५ ॥

सती समोचीना मतिर्यस्य स सन्मतिः । महापुराणे—

“तत्सन्देहे गते ताभ्यां चरणाभ्यां च भक्तितः ।

अस्तावि सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥”

(महते पूज्यते इति महतिः) । महती पूजा यस्य स महतिः । विशिष्टाम् इन्द्राद्यसम्भाविनीम् ईम् अन्तरङ्गां समवसरणानन्तचतुष्टयलक्षणां लक्ष्मीं रात्यादत्ते इति वीरः । वीर इति नाम कस्माज्जातम् ? जन्माभिपेके चालघुशरीरदर्शनादाशङ्कितवृत्तेरिन्द्रस्य सामर्थ्यख्यापनार्थं पादाङ्गुलेन मेरुसंचालनादिन्द्रेण वीरनाम कृतम् । महौंश्चासौ वीरः महावीरः । तथा च बृहत्प्रतिक्रमणभाष्ये—

“कुमारकाले ग्रामलकीक्रीडायां क्रीडतः सङ्गमदेवेन विमानस्खलनाद्भगवत्पो (जो)दनार्थं महाफटाटोपोपेतं भयानकं सर्परूपं विकृत्य वृक्षो वेष्टितः । भगवौस्तस्मान्मस्तकादिपाद्व्यासं कृत्वा वृत्तादुत्तीर्णः । ततस्तेन महावीर इति नाम कृतम् ॥” अन्त्यं काश्यं तेजः पातीति अन्त्यका-
श्यपः । ततः परस्तीर्थकरो नास्ति । नाथोऽन्वयो यस्य स नाथान्वयः । तथा च—

“चत्वारः पुरुवंशजा जिनवृषा धर्माद्यस्ते पुन-
र्नेमिश्रीमुनिसुव्रतौ हरिकुले वीरोऽथ नाथान्वये ॥
शेषाः सप्तदशाधिका जिनवरा इक्ष्वाकुवंशोद्भवाः
प्रोद्यन्मोहविनाशनैकनिपुणाः सङ्घस्य सन्तु श्रियै ॥”
अथ समन्ताद् ऋद्धं परमातिशयप्राप्तं मानं केवलज्ञानं यस्यासौ वर्धमानः ।

“वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥”

इत्यवशब्दस्याकारलोपः । तथा ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी—भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रे-
न्द्रादिविनिर्मितां विशिष्टां पूजां रत्नवृष्टिं स्वस्य च ऋद्धिबृद्ध्यादिकं दृष्ट्वा वर्धमान इति नाम कृतम् । इह
अस्मिन् पञ्चमकाले यस्य तीर्थं यत्तीर्थम् साम्प्रतम् अधुना वर्तते ।

सर्वज्ञो वीतरागोऽहन् केवली धर्मचक्रभृत् ।
तीर्थङ्करस्तीर्थकरस्तीर्थकृद्दिव्यवाक्पतिः ॥ ११६ ॥

नव जिनेन्द्रे । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा । सर्वज्ञः । सर्वं जानाति वेत्तीति सर्वज्ञः । “आतोऽनुपस-
र्गात्क्रः” अप्रत्ययः । “के? यण्वच्च योक्तवर्जम्” इति यण्वद्भावात् आलोपः । विशिष्टा ई तां प्रति इतः प्रातो
रागो यस्य स वीतरागः । अरिहन्नाद्रजोहनन (स्या) भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मिता-

मतिशयवर्ती पूजामर्हतीति अर्हन् । घातिक्षयजमनन्तजानादिचतुष्टयं विभूत्पाद्यं यस्येति वाऽर्हन् । त्रिकालं केवलज्ञानमस्त्यस्य केवली । जिनभर्मचक्रं सहस्रारयुक्तं तीर्थकृदग्रे निराधारतया विहारकाले गगने गच्छत् सर्वजीवदयासूचकं रत्नमयमायुधविशेषं त्रिभर्ति तद्वाऽनुभवतीति धर्मचक्रभृत् । तीर्थं द्वादशाङ्गशालं करोतीति तीर्थङ्करः । तीर्थं करोतीति तीर्थकृत् । दिव्यवाचास्पतिः दिव्यवाक्पतिः । तथा चोक्तम्—

“यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं

नो वाञ्छाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमम् ।

शान्तामर्षविष समं पशुगणैः संकर्णितं कर्णिभि-

स्तद्वः सर्वविदः प्रनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥”

चेलं निवसन् वासश्चीरमम्बरमंशुकम् ।

षड् वस्त्रे । चित्यते वस्यतेऽनेन चेलं चैलं च । निवसत्यनेन निवसन्, विवसन्, वस्त्वं च । १०

वस्यतेऽनेनाङ्गं वासः । सान्तम् । चिनोति उपार्जयति सारतां चीरम्, चीवरं च । अम्ब्रे गच्छति शोभा-
मनेन अम्बरम् । उभयम् । अंशून् कारयति अंशुकम् । क्लीबे । कर्षटम् । आच्छादनम् । वल्लम् । सिचयः ।
पटः, पटम्, पटी । पोतः । प्रावरः । प्रावारः । संव्यानं च ।

वस्त्राद्यन्तः दिगाद्यादिसंज्ञितो वृषभेश्वरः ।

वस्त्रादयः वस्त्रपर्याया अन्ते दिगादयो दिक्पर्याया आदौ यस्य तत्संज्ञितो वृषभेश्वरः । वस्त्रादिकं १५
नाम अन्ते दिगादिकं नाम आदौ यथा—दिक्चेलः । दिग्वासाः । दिग्वसनः । दिगम्बरः । दिगंशुकः ।
दिग्वल्लः । काष्ठाचेलः । काष्ठानिवसनः । काष्ठावासाः । काष्ठाचीरः । काष्ठाम्बरः । काष्ठांशुकः । काष्ठावल्लः ।
ककुचेलः । ककुचनिवसनः । ककुच्वासाः । ककुचचीरः । ककुचम्बरः । ककुचंशुकः । ककुचवल्लः । आशाचेलः ।
आशानिवसनः । आशावासाः । आशाचीरः । आशाम्बरः । आशांशुकः । आशावल्लः । दत्तकन्याचेलः ।
दत्तकन्यावासाः । दत्तकन्याचीरः । दत्तकन्याम्बरः । दत्तकन्यांशुकः । दत्तकन्यावल्लः । हरिचेलः । हरिचि- २०
वसनः । हरिद्वासाः । हरिचौरः । हरिदम्बरः । हरिदंशुकः । हरिदवल्लः । इत्यादीनि वृषभेश्वरनामानि
शातव्यानि ।

कुङ्कुमं रुधिरं रक्तम्—

त्रयः कुङ्कुमे । काम्यते जनैः कुङ्कुमम्^१ । रुधिर् आवरणे । रुणद्धि रुधिरम् । “तिमिरुधि-
मन्दिधिरुचिशुषिभ्यः किरः” । रज्यतेऽनेन रक्तम्^३ । २१

कस्तूरी मृगनाभिजम् ॥ ११७ ॥

द्वौ मृगमदे । के स्तूयते कस्तूरी^४ । मृगनाभेर्जातम् मृगनाभिजम् । मृगनाभीजं च ।

कर्पूरं घनसारं च हिमं सेवेत पुण्यवान् ।

कृपू सामर्थ्ये । कल्पते कर्पूरः । “कृपेरुत्तरप्रत्ययः । “नाम्यन्तगुणः ।” “कृपे” रोलः” कपञ्ज.

१. कुक्ष्यते आदीयते कुङ्कुमम् । कुङ् आदाने । “कुदकुकोनु च” भो० उ० इति उभय-
प्रत्ययो नुमागमश्च । इति रामाश्रमः । कुं कौतीति क्षीरस्वामी । २. का० उ० ११२३ । ३. तथा चोक्तम्—
मेदिन्दाम् ता० व० श्लो० ४६ । “रक्तोऽनुरक्ते नील्यादि रञ्जिते लोहिते त्रिषु । क्लीबन्तु कुङ्कुमे तात्रे
प्राचीनामलकेऽसृजि” । इति । ४. के शिरसि स्तूयते प्रशस्तधार्यत्वेन मन्यते इत्यर्थः । विकसति सौगन्ध्यम-
स्या इति क्ली० स्वा० । “कस गतौ” कसति गच्छति गन्धोऽन्या इति रामाधमः । “श्वर्गनिष्ठादिभ्य उरो-
लचौ” । पा० उ० ४१९० । इत्यमरः । पृषोदरादित्वात्तुट्, गौरादित्वान्छीच् च । ५. “उर्विहृग्निनिष्ठा-
दिभ्य उरोलौ” इति का० उ० ३६० । ६. नाम्यन्तयोर्धातुविकरखयोर्गुणः” आ० मू० ३५५ ।
७. का० सू० ३६१७ ।

सत्यम् । उणादयो हि बहुलम्, तेन—

“कचिदप्रवृत्तिः कचिदप्रवृत्तिः कचिद्विभाषा कचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुल्यं वदन्ति ॥”

घनस्येव सारोऽस्य घनसारः । हि गती । हिनोतीति हिमम्^२ । “इन्विधुधिद्व्याधूहिभ्यो

५ मक्” । चन्द्रसंज्ञः । सिताश्रः । हिमवालुकः ।

समालम्भोऽङ्गरागश्च प्रसाधनविलेपनम् ॥ ११८ ॥

चत्वारो रागे । सम्यक् प्रकारेणालभ्यते *समालम्भः । अङ्गस्य रागोऽङ्गरागः । प्रकर्षेण
साध्यते मण्ड्यते प्रसाधनम् । विलिप्यते विलेपनम् ।

भूषणाभरणं रुच्यम्—

१० त्रय आभरणे । तसि भूष अलङ्कारे । भूष्यते मण्ड्यतेऽनेन भूषणम् । आ समन्ताद् भ्रियते शोभा
धार्यतेऽनेन आभरणम् । रोचते रुच्यम् । अलङ्कारः । परिष्कारः । मण्डनम् ।

माल्यं मालागुणस्रजः ।

चत्वारः पुष्पमालायाम् । मालैव माल्यम् । चातुर्वर्णादित्वात्पुष्पेण । माल्यते धार्यते माला ।
अथवा मां लान्ति पुष्पाण्यत्र माला । ख्रियाम् । गुणतीति गुणः । “नाभ्युपधप्रीकृगृज्ञो^५ कः” । सृज्यते
१५ स्रज् । “ऋत्विग्^६ दधुक्लगिति” साधुः ।

मेखला रसना काञ्ची ।

त्रयः काञ्च्याम् । मेहनस्य खं तस्य मां लातीति निरुक्तिः । मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तमिति
वा मेखला^७ । रसति शब्दं करोतीति रसना^८ । रस कान्तौ (शब्दे) सौत्रोऽयं धातुः । श्रोणी शोभां
कचति(काञ्चते)^९ बध्नातीति काञ्ची । ख्रियामीः । काञ्ची । ततकी । कलापः । कटिसूत्रम् । सारसनम् ।

२० शिखिनी^{१०} च ।

हेमपर्यायसूत्रकम् ॥ ११९ ॥

हेमशब्दात्सूत्रशब्दे प्रयुज्यमाने मेखलापर्यायनामानि भवन्ति । हेमसूत्रम् । अष्टांपदसूत्रम् ।
स्वर्णसूत्रम् । कनकसूत्रम् । अर्जुनसूत्रम् । काञ्चनसूत्रम् । हिरण्यसूत्रम् । जातरूपसूत्रम् । शातकुम्भसूत्रम् ।
हाटकसूत्रम् । कलधौतसूत्रम् । तपनीयसूत्रम् । कार्तस्वरसूत्रम् । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

२५ श्रोणीविम्बं कटीसूत्रं मानसूत्रमिवाहितम् ।

त्रयः पट्टसूत्रे । श्रोण्याः कट्याः विम्बं प्रच्छादकं श्रोणीविम्बम् । कटीं सूत्रयति वेष्टयतीति

१. शा०सू. १।३।१४९। अत्र कारिकारूपेण पठितः । २. हिनोति गच्छतीत्यर्थः । कपूर् रस्याश्लप्-
तनस्वभावात् । हन्ति औष्ट्यमिति रामाश्रमः । ३. का० उ० १।५५। ४. आलभ्यते विलिप्यते इत्यर्थः ।
५. का०सू० ४।२।५१। ६. का०सू० ४।३।७३। ७. मखं गतिं लातीति पृषोदरादित्वानुमेखलेति रामाश्रमः ।
मुहुः खलतीति हेमचन्द्रः । मीयते प्रक्षिप्यते इति क्षी०स्वा० । “मिजः खलच्चैच्च” २।३।१७। सर० क० ।
८. अश्रुते कटिम् अश्रनाति कामिचित्तं वेति रामाश्रमहेमचन्द्रौ । “अरो रश्च” इति यूरशादेशश्च । ९. “काचि
दीतिवन्धनयो.” । “सर्वधातुम्य इन्” । १०. शिखिनी नूपुरम् । मेखलापर्याये तत्पाठोऽयुक्तः । तदुक्तम्—
“नूपुरन्तु तुलाकोटिः पादतः कटकाङ्गदे । मञ्जीरं हंसकं शिखिनी,—अभि० चि० ३।३३०।

कटीसूत्रम् । मानं प्रमाणीभूतं सूत्रयतीति मानसूत्रम् । केचिद् रागसूत्रं पठन्ति पट्टसूत्रं च ।

मदिरां मद्यमैरेयं शीधु कादम्बरीमिराम् ॥ १२० ॥

प्रसन्नां वारुणीं हालां मधुवारां सुरां विदुः ।

एकादश मद्ये । माद्यत्यनया मदिरा । मधिष्ठा च । मद्यतेऽनेन मद्यम् । “यमिकदिग्दां”
त्वनुपसर्गे” । इरायां ग्रामसीमायाम् साधु पेरेयम् । शेरतेऽनेन शीधुः । “२ शीडो धुक्” । शीपो(घो)स्त्विके
पठितत्वात् शीधुप्रकृतेः^३ क इति व्याख्यत् । अथवा पीतेऽत्र जनः शेते शीधुः । उभयम् । तालव्यः ।
कुत्सितं नीलमम्बरं यस्य स कदम्बरो बलदेवः । तस्येयं प्रिया कादम्बरी । कुत्सितमम्बरे बाल्यनया वा
कादम्बरी । एति परिभ्राग्यत्यनया इरा । आत्मा प्रसीदत्यनया प्रसन्ना । आदन्तः । वरुणस्यापत्यं वारुणी ।
जहति लज्जामनया हाला । स्त्रियाम् । मधु वारयतीति मधुवारा । सुवति सूते भवं सुरा । तथा
द्विसन्धानभाष्ये—“अतिप्रलापभावेन समुद्रमथनान्निष्कासिता सुरैः सुरा ।”

“लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा

गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ॥

अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः शङ्खो विपं चाम्बुधेः

रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥

विदुः कथयन्ति । मधुः । आसवः । परिष्णुता । स्वादुरसा । शुण्डा* । गन्धोत्तमा । माधवकः ।
माधवः । कल्पं, कल्या । कश्यं, कस्या । परिश्रुत् । तान्तं स्त्रियाम् । तालव्यदन्त्यः । *हारहूरं । कापि-
शायनम् । मृद्वीकम् । माध्वीकम् ।

शुण्डासवः—

मद्यविशेषौ द्वौ । सुन्व(न)न्ति तृप्तिं गच्छन्त्यनया शुण्य (न्य) ते पातुमभिगम्यते वा शुण्डा* ।
स्त्रीयोः १. शुण्डः । आसूते जनयति मदम् आसवः । पुंसि ।

तद्विधायी शौण्डो मद्येत मद्यपः ॥ १२१ ॥

द्वौ कल्पपालके । शुण्डायां मद्ये भवः शौण्डः* । मद्यं पिबति पाययतीति वा मद्यपः ।

सक्तोऽक्षयूतपानेषु विचित्रा शब्दपद्धतिः ।

त्रयो मद्यासक्ते । अत्रेषु द्यूतेषु सक्तः अत्सक्तः । द्यूतसक्तः । पानेषु सक्तः पानसक्तः । विचित्रा नाना
प्रकारा शब्दानां पद्धतिः श्रेणिः शब्दपद्धतिर्वर्तते । अत्सौण्डः । अत्सद्यूतः । अत्सकितवः । “सप्तमा
शौण्डैः” । व्याल, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, स्वेत्यादि शौण्डादिराकृतिगणः ।

सर्पिर्हैयङ्गवीनाज्यं—

त्रियः सर्पिषि । सप्त धातवः सर्पन्त्यनेन सान्तं सपः । क्लीवे । “अविशुचिरुचिहृन्वि-
छादिछर्दिभ्य इसिः” । सप्त गतौ । ह्यो गोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनम् । इदं हैयङ्गवीनं सप्तनदिन-
गोदोहे सज्जतम् । उक्तं च—

“तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् ।”

१. का० सू० ४।२।१३। २. का० उ० सू० २।३३। ३. सीधुरिति दन्त्योऽप्यन्यत्र पाठः ।
४. “शुण्डा हाला हारहूरं प्रसन्ना वारुणी सुरा ।” अभि० चि० ३।५६७। ५. शुण्डाशब्दो मदिराशब्दो
पानमदस्थानमपि । तदुक्तम्—“शुण्डा हाला हारहूरम्” अभि० चि० ३।५६७। “शुण्डा पानमदस्थानम्”
अभि० चि० ३।५७०। ६. शुण्डायां मदिरापानागारे भव इति रामाधमः । “शुण्डा मदिरा पुस्तकमेति त्रयो-
त्सनादिवाद्यम्” इति हेमचन्द्रः । ७. पा० सू० २।१।४०। ८. का० उ० सू० २।४४। ९. अभि० चि० ३।५७२।

तथा चाशाधरमहाभिषेक—

“आयुः पीयूषकुण्डैः स्मृतिमणिस्त्रिभिः शमुषीवल्लिकन्दै-

र्मैधासस्याम्बुवाहैर्वरफलतरुभिर्नैः त्ररत्नाधिदैवैः ।

निष्टुप्तैर्घ्राणपेयप्रचुरमधुरिमस्तेहधूमोऽपि येषां

५

कुर्मो ह्येयङ्गवीनैः स्तपनमपनय ध्वान्तभानोर्जितस्य ॥”

वीयते क्षिप्यते पित्तमनेनाज्यम् । तथा क्षीरस्वामिनि—“आ अञ्जनीयमाज्यम्” ।

“आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायाम्” वयप् । धृतम् । आधारः । स्पृष्टम् । याज्यम् । हविः ।

दुग्धं क्षीराऽमृतं पयः ॥१२२॥

१० चत्वारो दुग्धे । दुह प्रपूरणे । दुह्यते दुग्धम् । घस्तु अदने । तौत्रोऽयम् । घस्यते क्षीरम् ।
‘घसेः’ किञ्च ईरमात्रः । ३ गमहनजनेत्युपधा लोपः । “अघोपेष्वशिगं प्रथमः” कः । “शाखिवसि-
घतोनां च” पत्वम् । क्त्वं संयोगे क्तः । “व्यञ्जनमस्व” ० । उगादौ क्षिणु क्षणु हिंसायाम् । क्षणोतीति
क्षीरम् । “क्षीरोशीरगभीरगभीरा” एते ईरप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । न क्षियतेऽनेन अमृतम् ।
अत्ररामरकारित्वात् । पीयते वा सरसत्वात् पयः । अमुन् । ऊघत्यम् । स्तन्यम् । पीयूषं, पयूषं च ।

उदधिन्मथितं तक्रं कालशेयं पिबेद् गुरुः ।

१५

चत्वारस्तक्त्रे । उदक्तेन श्वयति वर्धते उदधिवन् । तान्तस्तालव्यमध्यः । मध्यते (स्म)
मथितं घोलं च । तत्रति द्रवं गच्छति तक्रम् । उभयम् । “तक्रं विभागमित्रं तु केवलं मथितं
स्मृतम्” इति धन्वन्तरिः । कलश्यां गर्गायां भवं कालशेयं पिबेत् गुरुः । तत्कालीनं गरिष्ठम् ।
अरिष्टम् । दण्डाहतम् ।

प्रायो वयो दशानेहा पूर्णं यौवनकं विदुः ॥ १२३ ॥

२०

तारुण्यं यौवनं च

२५ १ अष्टौ तारुण्ये । प्रकर्षेण परलोकमेत्यनेन प्रायः १० पुंसि । सान्तोऽपि प्रायस् । वयते
वयः ११ दशति चुम्बति स्त्रीमुखं दृष्ट्वा । न ईहते १२ चेष्टते अनेहा । “अनेहसोऽस्वरसोऽङ्गिरसः” ३ एतेऽसन्
प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । ईह चेष्टायाम् । पूरी आप्यायने दिवादौ आत्मनेपदी । अदन्तानां प्राक् वृ(क्त)तीयः
परस्मैपदी । पूर्यते कश्चित्, पूरयति कश्चित् । इन् चुराद्यपेक्षया वा । “कारितं” कारितलोपः । उभयया
पूरि जातम् । पूर्यते स्म पूर्णः । निष्ठाक्तः । “दान्तशान्तपूर्णदत्तस्पष्टलज्जताश्चेनन्ताः” इत्यनेन
पूर्येति निपातः । यूने भावो यौवनम् । स्वार्थे कः । यौवनकम् । १६ युवादित्वाद्भावेऽण् । वृद्धौ । तरुणस्य

१. पा० सू० ३।१।१०९ । वार्तिकम् । २. पा० उ० सू० ४।३२ । ३. का० सू०
३।६।४३ । ४. का० सू० ३।८।९ । ५. का० सू० ३।८।२७ । ६. का० सू० पू० सू० २।५६ ।
७. “व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत्” का० सू० १।१।२१ । ८. का० उ० सू० ३।४६ । ९. अत्र
प्रायादयोऽन्तेहोऽन्ताश्चत्वारो वयोवाचकाः । पूर्णपूर्वका एते चत्वारो यौवनकतारुण्ययौवनानीति त्रयः ।
एवं च सप्त तारुण्ये इति वक्तुं युक्तम् । १०. प्रकर्षेण शरीरस्य क्रमेणावते गच्छति इति हे० च० । ११.
शरीरस्य क्रमेण विद्यन्ति वयः, बाल्यादीनि दृश्यन्ते दशा इति हैमः । १२. नाहन्ति नागच्छति नाहन्त्यते
नागम्यते वेति रामाश्रमः । “नञ्याहन एह च” इति साधुः । १३. का० उ० सू० ४।१।८ । १४. का० सू०
३।६।४४ । १५. का० सू० ४।६।१०० । १६. हे० श० ७।१।६७ । युवादरेण इति सूत्रम् ।

भावस्त्वारुण्यम् । भावार्थे यण् । यूनो भावो यौवनम् ।

अन्त्यो वार्द्धिनः स्थविरो मतः ।

त्रयो वृद्धे । अन्ते भवोऽन्त्यः । वृद्धे नियुक्तो वार्द्धिनः^१ । तिष्ठतीति स्थविरः^२ । गति-
भङ्गान्मतः कथितः । प्रवयाः । यातयामः । दशमीस्थः । जरन् । जरठः । जीर्णः । वृद्धः ।

वंशोऽन्वयोऽन्ववायः स्यादाम्नायः संततिः कुलम् ॥ १२४ ॥

षड् वंशे । उश्यते काम्यते जनेन वंशः^३ । पुंसि । अन्वयते सन्ततिरन्ववयः^४ । अन्ववैत्य-
पत्यमन्वान्ववायः । आम्नायते आम्नायः^५ । सम् सम्यक् प्रकारेण तनोति विस्तारयतीति सन्ततिः^६ ।
सन्तननं वा सन्ततिः । कु (को) लति सर्व भवत्यत्र कुलम् । उभयम् । गोत्रम् । अभिजनः ।

ओघो वर्गश्च सन्तानः

त्रयः समूहे (वंशस्यावान्तरवर्गभेदे) । ओह्यते ओघः^७ । वृज्यते विजातीयेन पृथक् क्रियते १०
वर्गः । सन्तन्यते सन्तानः । विकरः । निकायः । निवहः । विसरः । व्रजः । पुञ्जः । समूहः । सञ्चयः ।
समुदयः । समुदायः । सार्थः । यूथः । निकुरम्बः । कदम्बम् । पूगः । राशिः । चयः । समवायः । मण्डलम् ।
चक्रवालम् । जालम् । स्तोमः । व्यूहः ।

काव्यमेव कविस्थितिः ।

द्वौ काव्ये । कवेर्भावः काव्यम् । तथा च यशस्ति लक्ष्णे—

“दुर्जनानां विनोदाय बुधानां मतिजन्मने ।

मध्यस्थानां न मौनाय मन्ये काव्यमिदम्भवेत् ॥”

कवीनां स्थितिः कविस्थितिः ।

पक्षिवर्गः प्रारम्भ्यते श्रीमदमरकीर्तिना—

हंसो मरालश्चक्राङ्गः

त्रयो हंसे । विसं हन्ति खण्डयति, चारुगत्या हन्ति गच्छति वा हंसः । हन्तेः^८ सः । मरं
मलं कमलमण्डिततडागमियति गच्छतीति मरालः । चक्रमङ्गति चक्राण्यङ्गानि वा यस्य चक्राङ्गः ।
मानसौकाः । श्वेतच्छदः ।

हंसवाहः सनातनः ॥ १२४ ॥

हंसशब्दाद् वाहशब्दे प्रयुज्यमाने ब्रह्मणो नामानि भवन्ति । हंसवाहः । मरालवाहः । चक्राङ्ग-
वाहः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

मयूरो वर्हिणः केकी शिखी प्रावृषिकस्तथा ॥

नीलकण्ठः कलापी च शिखण्डी—

अष्टौ मयूरे । मयां रौति मयूरः । मीनाति वाऽहीन् मयूरः । उष्णादी । मीन् हिंसायान् । मयते

१. अत्रान्यत्प्रमाणं नोपलब्धम् । २. यौवनमतिक्रम्य तिष्ठतीति हे० च० । “अजिरदिसिरेत्यादि
पा० उ० १।५३ इति किरप्रत्ययो दुर्गागमो ह्रस्वत्वं च । ३. “वश कान्तौ” यच् । नुन् । वस्यते वस्यते जनेनेति
स्वामी । ४. अन्ववैति अन्वीयते । अन्वयः । “इण् गतौ” । अच् । इत्यन्यत्र ५. अत्र प्रमाणम्— “आम्नायः
कुल आगमे उपदेशे” इति हैमः । ३।५।११ । ६. सन्तन्यते सम्यग्विस्तारयतीति रामाधनः । ७. आ उण्यते ।
उह वितर्के । न्यङ्क्वादित्वाद् हस्य घः । ८. आ० १ श्लो० २.५। ९. आ० उ० सू० ३।५। “हृद्वद-
निमित्तकत्यशिकपेभ्यः सः” । इति ।

इति मयूरः । “मयते” हरो खौ । वर्धमस्यास्ति वर्धा । “फलवर्धाम्यामिनच्” । कंका वाणी अत्यस्य केकी । शिखास्त्यस्य शिखी । प्रावृषि वर्षाकाले प्रयुक्तः प्रावृषिकः । नीलं कण्ठे यस्य स नीलकण्ठः । कलापोऽस्त्यस्य कलापी । शिखण्डोऽस्त्यस्य शिखण्डो । प्रचलाकी । सर्पाशनः । शिखावलः । श्याम-
कण्ठः । चन्द्रकी । शुक्लापाङ्गः ।

५

तत्पतिर्गुहः ॥ १२६ ॥

तस्य पतिस्तत्पतिर्गुहः कार्तिकेयः । मयूरशब्दात् पतिशब्दे प्रयुज्यमानं कार्तिकेयपर्यायनामानि भवन्ति । मयूरपतिः । वर्दिगपतिः । केकिपतिः । शिखिपतिः । प्रावृषिकपतिः । नीलकण्ठपतिः । कलापि-
पतिः । शिखण्डपतिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

वरटा वारली हंसी—

१०

त्रयो हंसभार्यायाम् । वरं विशिष्टमदति गच्छति वरटा । वरलस्य भार्या वारली । स्वार्थेऽणि ।
वरला च । हन्तीति हंसी ।

कोक ईहामृगो वृकः ।

अजादिकं कोकते आदत्ते कोकः । ईहा मृगेष्वस्य ईहामृगः । ईहां मृगयते वा ईहामृगः । कुक
वृक आदाने । वर्कते वृकः । अरण्यश्वा ।

१५

हरिणो मृगश्च पृषतः—

त्रयो मृगे । गीतेन द्वियते हरिणः । व्याघ्रैर्मृग्यते मृगः । पृषति सिञ्चति मृगेण पृषतः ।
तान्तोऽपि पृषत् । एणः । कुरङ्गः । कुरङ्गमः । सारङ्गः । ऋश्यः । रिर्यः । ऋष्यश्च । रुः । न्यङ्गुः । वात-
प्रमी । शम्बरः । शबलः । कृष्णसारः । कालसारोऽपि ।

तदङ्कः शर्वरीकरः ॥ १२७ ॥

२०

हरिणपर्यायादङ्कपर्याये प्रयुज्यमाने चन्द्रस्य नामानि भवन्ति । हरिणाङ्कः । मृगाङ्कः । पृषताङ्कः ।
इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

पन्नगोऽहिर्विपधरो लेलिहानो भुजङ्गमः ॥

नागोरगौ फणी सर्पः—

नव सर्पे । पन्नगां न गच्छतीति पन्नगः । नभ्राण्युपादित्यस्योपलब्धत्वात् । अंहत्य (तेऽ)
२५ हिः । “अहिः कम्प्योर्नलोपश्च” नलोपः । विपं धरति विपधरः । लिलेहेति लेलिहानः । भुजान्यां
गच्छति भुजङ्गमः । न गच्छतीति नागः । उरसा गच्छतीत्युरगः । “उरो विहायसो रुरविहौ च” ।
उरो विहायसोऽप्यपदयोगमश्च संज्ञायां खो भवति तयोश्च उरविहौ यथासंख्यं भवतः । फणास्त्यस्य फणी ।

१. का० उ० सू० ६।४७ । २. पा० ५।२।१२२ वार्तिकम्—“फलवर्धाम्यामिनच्” । ३. ईहया
महताऽप्यासेन मृगयते आखेटीक्रियते इत्यन्यत्र । ४. वर्कतेऽजादिकमादत्ते, वृणोति वा वृकः । ५. रामाश्र-
मस्तु—“पृषता विन्द्वो विन्दुसहस्रलक्षान्यस्य पृषतः । अशं आश्रय इत्याह । पृषतो विन्दुचित्र इति
क्षो० स्वा० । ६. पन्नं पतितं यथा त्याक्तया गच्छतीति रामाश्रमः । सर्वपन्नयोरिति वार्तिकेन ङः । ७. का०
उ० सू० ४।४। क्रिप्रत्ययो नलोपश्च । अहि गतौ । अंहति वेगेन गच्छति । ८. भुशं लेढीत्येवंशांलो लेलिहानः ।
लिहैर्यङ्लुगन्तात्—“ताच्छ्रील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्” पा० सू० ३।२।१२६ इति चानश् । ९. भुजेन
कौटिल्येन गच्छति, भुज इव गच्छति वेत्यन्यत्र । “धमश्च” का० सू० ४।३।४५। इति । “विहङ्गुरङ्ग-
भुजङ्गाश्च” का० सू० ४।३।४८। इति खचि, डे च, भुजङ्गमः, भुजङ्ग इति । १०. नगे पर्वते भवो नागः ।
अथवा न गच्छतीत्यगः, न अगः, नाग इत्यन्यत्र । ११. का० सू० ४।३।४६।

सर्पति गच्छति सर्पः । पृदाकुः । भुजगः । आशीविषः । चक्री । व्यालः । सरीसृपः । कुण्डली । गृधपात् ।
द्विरसनः । चक्षुःश्रवाः । काकोदरः । दर्वीकरः । दीर्घपृष्ठः । दन्दशकः । विलेशयः । भोगी । जिह्वगः ।
पधनाशनः । गोकर्णः । कुम्भीनसः । कञ्चुकी । राजसर्पः । भुजङ्गभुक् । दृक्श्रुतिः ।

तद्वैरी विनतात्मजः ॥ १२७ ॥

तस्य पन्नगस्य वैरी शत्रुः विनतात्मजः गरुडः । पन्नगवैरी । अहिरिपुः । विषधरारातिः ।
लेलिहानरिपुः । भुजङ्गशत्रुः । नागद्विट् । भुजङ्गसपत्नः । फणिद्विट् । सर्पहृत् । सर्पद्वेपी । इत्यादीनि
गरुडनामानि स्युः ।

सुपर्णो गरुडस्ताक्षर्यो गरुत्मान् शकुनीश्वरः ।

इन्द्रजिन्मन्त्रपूतात्मा चैनतेयो विपाशयः ॥ १२८ ॥

नव गरुडे । शोभनं स्वर्णमयं पर्णमस्य सुपर्णः । तथा च—“सुपर्णो^१ हेमपक्षत्वात् ।” डीह १०
विहायसा गतौ । गरुत्पूर्वः । गरुद्भिः पक्षैर्दृश्यते गरुडः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ।

पोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

इत्यनेन श्लोकेन गरुत्शब्दस्य तकारस्य लोपः । लत्वे गरुलः । गरुटश्च । तृश्चस्यापत्यं ताक्षर्यः ।
गरुतः पक्षाः सन्त्यस्य गरुत्मान् । शकुनीनां विहङ्गानामीश्वरः स्वामी शकुनीश्वरः । इन्द्रं जितवान् १५
इन्द्रजित् । मन्त्रेण पूतः पवित्र आत्मा यस्य स मन्त्रपूतात्मा । विनताया अपत्यं चैनतेयः । विपं
क्षयतीति विपक्षयः । काश्यपनन्दनः । विष्णुरथः । पन्नगाशनः । नागान्तकः ।

खमिन्द्रियं हृषीकं च श्रो (स्रो) तोऽक्षं करणं विदुः ।

पडिन्द्रिये । स्वर्गमोक्षौ खनति विदारयतीति खम्^३ । इन्द्रस्थात्मनो लिङ्गमिन्द्रियम्^४ ।
हृष्यति हृषं प्राप्नोति विषयेषु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु हृषीकम् । शृणोत्यनेन सान्तम् श्रोतः^५ । २०
तालव्यादिः । अक्षणीति विषयं व्याप्नोति अक्षम् । क्रियते मनोऽनेन विषयेषु करणम् । श्रोवं
[विपयि] । कम्बलम्^६ ।

पुण्यं भाग्यं च सुकृतं भागधेयं च सत्कृतम् ॥ १२९ ॥

पञ्च पुण्ये । पुण्यं शोभे । पुण्यति शोभते पवते वा पुण्यम् । “पञ्चन्यपुण्ये” । भगस्यैश्वर्या-
देरिदं [कारणम्] भागम् । भागमेव भाग्यम् । “भागायच्च” । सुष्ठु क्रियते सुकृतम् । २५

“ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यस्याथ मोक्षस्य पण्णां भग इति स्मृतिः ॥”

१. क्षी० स्वा० भा० १।१।२९ । २. शा० सू० २।२।१७२ । अत्र कारिकाख्येण पठितः ।

३. खन्यते; तत्तदिन्द्रियाधिष्ठानस्य खातसदृशत्वदर्शनात्, खम् । ‘खनु अवदारणे’ । उप्रत्यय इत्यन्यत्र ।

४. इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमित्यादिना घच् । घस्येयः । ५. तालव्यश्रोतशब्दः कर्णेन्द्रियवाचकः । दन्त्यस्मोतशब्द

इन्द्रियवाची, सोऽत्र पठितव्यः । तदुक्तम्—“हृषीकमक्षं करणं स्रोतः त्वं विषयीन्द्रियम्” अ० चि०

‘स्रोत इन्द्रिये निग्नगारथे’ इत्यमरः ३।३।२३३ । ६. नात्रान्यत्रमाणनुपलब्धम् । विपक्षयनाशन-

प्रकारस्तु—कमिति सुखार्थकमव्ययम्, तस्य बलं साधनमिन्द्रियमिति । ७. पुण्यतीति पुण्य । “पुण्यं पुणे

कर्मणि । एगुपधेति कः । पुण्यमर्हति पुण्यम् । “तदहति” । पा० सू० ५।१।६३ । इति यद् । पुनाति

पयते वेत्यन्यत्र । ८. का० उ० सू० ३।४ । ९. श्लोकोऽयं विष्णुपुराणस्य त्वेनोक्तिलिखितः अम० पौ०

क्षी० स्वा० भाष्ये १।१।१३ ।

भगस्येदं भागं भागमेव भागधेयम् । 'नामरूपभागेभ्यो धेयः' १ । सत्समीचीनं क्रियते (स्म)
सत्कृतम् ।

अधमंहश्च दुरितं पाप्मा पापं च किल्बिषम् ।

वृजिनं कलिलं ह्येनो दुष्कृतम्

५ दश पापे । न जहाति प्राणिनम् अधम् २ । अंहति गच्छति नरकादिकमनेन अंहः । सान्तम् ।
दुरितम् ३ । दुर् सौत्रोऽयं धातुः । पाति सुगतेर्वारयति पाप्मा । 'पुंसि । "सर्वधातुभ्यो मन् ।" पाति सुगते-
वारयति पापम् । "पातेः पः" । निन्द्यत्वेन कल्यते मुहुर्मुहुः, किरति सङ्गति वा किल्बिषम् । "किल्बिषा"
व्यथिषौ" एतौ टिपप्रत्ययान्तौ निपात्येते । वृज्यतेऽपनीयतेऽनेन वृजिनम् ४ । कलयति कलिलम् ५ ।
"कलेरिलः" । एति गच्छति [सुखम्] अनेन एनः । सान्तम् । दुष्क्रियते स्म दुष्कृतम् । तमः । कल्मम् ।

१० कल्मपम् । अशुभम् । प्रतिकिष्टम् । पङ्कम् । किण्वम् । मलः । अनेकार्यं ।

तज्जयी जिनः ॥ १३० ॥

तस्य पापस्य जयी तज्जयी । अधजयी । दुरितजयी । पापजयी । इत्यादीनि जिनस्य नामानि भवन्ति ।

सदनं सन्न भवनं धिष्ण्यं वेश्माथ मन्दिरम् ।

गेहं निकेतनागारं निशान्तं निवृत्तं गृहम् ॥ १३२ ॥

१५ वसत्यावसथावासं स्थानं धामास्पदं पदम् ।

निकायं निलयं पस्त्यं शरणं विदुरालयम् ॥ १३३ ॥

चतुर्विंशतिर्ह । जनाः सीदन्त्यत्र सदनम् । क्लीवे । सीदन्ति सुखं गच्छन्त्यत्र सन्न । "सर्व-
धातुभ्यो मन्" प्रायेण । भवति भूतान्यत्र भवनम् । धिष शब्दे । देधेष्टि शब्दं करोत्यत्र धिष्यम् ।
"धिषेर्न्यक्" प्रत्ययो भवति । विशन्त्यत्र वेश्म । नान्तम् । माद्यन्ति जना अत्र मन्दिरम् १० । क्ली-
२० क्लीवे । मन्दिरा । गेहः सौत्रो निवारणग्रहयोः । गेहति शीतवातातपादिकं निवारयतीति गेहम् । गृहाति
वा गेहम् । "गेहे "त्वक्" । सुखं निकितन्ति जानन्त्यत्र निकेतनम् । अङ्गन्ति गच्छन्त्यत्र आगारम् ११ ।
आगारं च । निशाम्यन्त्यत्र निशान्तम् १३ । नित्रियते आच्छाद्यते निवृत्तम् । गृह्णति नरेणोपार्जितं धनं
गृहम् । वसनं वसतिः । आवसन्त्यत्र जना आवसथम् । आ समन्तादुप्यतेऽत्रावासः । स्थीयते जनेनात्र
स्थानम् । दधाति धनादि धाम । नान्तम् । अदन्तं च धामम् । क्लीवे । आस्प(प)द्यतेऽत्रास्पदम् १४ । पद्यते
२५ गम्यते पदम् । निचीयतेऽसौ निकायः । "शरीरनिवासयोः कश्चादेः" घञ् । निलीयते आश्लिष्यते(अत्र)
निलयम् । पसिः सौत्रो निवासे । जनाः पसन्ति वसन्त्यत्र पस्त्यम् १५ । वस्तौ वासे साधु वस्त्यम् । वस्तौ

१. पा० सू० ५।४।३५ ।वार्तिकम् । २. अङ्घ्रते गच्छति दानादिनाऽधम् । "अधि गतौ" ।
पचाद्यच् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न जुम् । ३. दुष्टमितं गमनमनेनेति रामाश्रमः । ४. का० उ० सू०
२।५।५ । "किल्बिषाव्यथिषौ" का० उ० सू० १।२।२ । ६. "वृजौ वर्जने ।" "वृजेः किञ्चेतीनच् । वृज्यते
वृजिनमित्यपि । ७. कलयति जनयति दुःखमिति शेषः । ८. का० उ० सू० ४।२।८ । ९. का० उ० सू०
३।६० । १०. "तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिधिरुचिशुषिम्यः किरः" का० उ० सू० १।२।३ । ११. का० सू०
४।२।६० । इति निर्देशाद् गेह इति निपातः । १२. आ अङ्गति अङ्गयते वाऽत्र बाहुलक आरप्रत्ययः । "अग्नि
गतौ" आङ्पूर्वः । नलोपश्च । १३. निशाया अन्तोऽत्रेत्यन्यत्र । निशायाम् अम्यते गम्यते स्मेति रामा-
श्रमः । "अम गतौ" । कः । १४. "आस्पदं प्रतिष्ठायाम्" पा० सू० ६।१।४६ । इति मुट् । १५. का० सू०
४।५।३५ । १६. अपस्त्यायन्ति सङ्घीभवन्त्यत्र पस्त्यम् । "स्त्यै शब्दसङ्घयोः" ।

वासे साधु 'वस्त्यमिति श्रीभोजः । शीर्यते हिंस्यते शीताद्यत्र शरणम् । आलीयते जनेनात्रालयः । पुंसि ।
विदुः कथयन्ति । पुरम् । कुलम् । संस्त्यायः ।

खेयं खातं च परिखा

प्रयः परिखायाम् । खनु अवदारणे । खन् । खन्यते खेयम् । "आखनोरिच्च" यप्रत्ययो
नकारस्येकारः । "अवर्णवर्णयोरेकारः । खन्यते [स्म] खातम् । परिखायते परिखा । ५

वप्रं स्याद्धूलिकुट्टिमम् ।

द्वौ प्राकारे । शुल्कादिकं वपन्त्यत्र चप्रम् । धूल्याः कुट्टिमं धूलिकुट्टिमम् । वद्धभूमिकम् ।
धूलिकुट्टिमम् ।

प्राकारः परिधिः सालः

त्रयो दुर्गे । प्रकुर्वन्ति तमिति प्राकारः* । "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्" षञ् । परि १०
समन्ताद् धीयते परिधिः^२ । इयति तनूकरोति स्वनगरपर्यतं शालं सालं^३ च ।

प्रतोली गोपुराकृतिः ॥ १३४ ॥

द्वौ विशिखायाम् । प्रविशन् जनः प्रतोत्यते परिमीयतेऽत्र प्रतोली । गोप्यते रक्ष्यते गोपुरं
तस्याकृतिः गोपुराकृतिः^४ ।

प्रासादसौधहर्म्याणि

प्रयः सौधे । प्रासादश्च सौधं च हर्म्यं च प्रासादसौधहर्म्याणि । प्रसीदन्त्यस्मिन्नयनमनासीति १५
प्रासादः । "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्" । सुधायां लिप्तायां भवं^५ सौधम् । चन्द्रकरान् हरति
हर्म्यम्^६ ।

निर्व्यूहो मत्तवारणः ।

द्वौ अगश्रये । निर्व्यूह्यते निर्व्यूहः । मत्ताः प्रमादिनः पतन्तो वार्यन्तेऽनेन मत्तवारणः । २०

वातायनं मतालम्बम्

द्वौ गवाक्षे । वातस्यायनं मार्गो वातायनम् । उभयम् । गतमभीष्टम् आलम्बम् मतालम्बम् ।
जालकम् । जालम् ।

आलम्ब्यसुखमासनम् ॥ १३५ ॥

राशामवष्टम्भे द्वौ । आलम्ब्यस्य अवलम्बनस्य सुखम् आलम्ब्यसुखम् । सुखेनास्यते आसनम् । २५

समः सवर्णः सज्ञातिः सदृक्षः सदृशः सदृक् ।

तुल्यः सधर्मरूपश्च तुला कक्षोपमा विधा ॥ १३६ ॥

१. यद्यपि मूले वस्त्यशब्दो नास्ति, तथापि पाठभेदात् "निशान्तवस्त्यसदनम्" २।२।५।
इत्यमरे वस्त्यशब्दपाठात् टीकाकृता तदपि विग्रहीतम् । २. का० सू० ४।२।१२। ३. का० सू० १।२।२।
४. प्रक्रियते इति कर्मणि घञ् । इति रामाश्रमः । ५. का० सू० ४।५।४। ६. परितो धीयते वेष्ट्यते
नगरमनेनेति रामाश्रमः । ७. दन्त्यपाठे तु सत्यते सालः । "रुल गतौ" । घञ् । ८. पुष्पान्गु गोपुरं
भट्टरक्षितम् । तस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्यास्तत्सदृशीत्यर्थः । ९. का० सू० ४।३।४। १०. तुल्यत्वात् लिङः सौधः ।
शेषेऽण् । ११. हरति मनांसि हर्म्यमित्यन्यत्र । प्रासादसौधहर्म्याणामत्रादिशेषेणोपादानम् । परं तद्विशेषोः
न विस्मर्त्तव्यः । तदुक्तम्—“हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूतज्ञान् । सौधोऽस्त्री राजपदम्”
२।२।१०। इत्यमरः ।

१५ “एकादश समाने । समानं मातीति^१ समः । समानः सदृशो वर्णोऽथ सचर्णः । समाना ज्ञातिः अस्य सद्भातिः । समान इव दृश्यते सदृशः । “^२समानान्ययोश्च” सक् प्रत्ययः । शस्य च पत्वम् । “पदोः^३ कस्ते” पस्य कत्वम् । “कप्रयोगे” क्तः । समान इव दृश्यते सदृशः । “^४समानान्ययोश्च टक् प्रत्ययः । अमात्रः । कानुबन्धत्वाद्गुणनिर्णयः । टानुबन्धत्वाच्चदादौ पठ्यते । “दक् “दृश” इति समानस्य सभावः । समान इव दृश्यते सदृक् । “^५समानान्ययोश्च” क्तिप् । तुलया सम्मितस्तुल्यः । समनो धर्मो यस्य सधर्मः । समानं रूपं यस्य स स्वरूपः । “^६रूपनामगोत्रस्थानवर्णवयोवयस्सु” इति समानस्य सादेशः । तोलनं तुला । “^७तोलेरच्” अङ् प्रत्ययः । आंकारस्याकारश्च । कपति कक्षा । उपमा । विधा । प्रव्यः । प्रकाशः । प्रतिमः । सन्निभः । प्रकारः ।

विन्मान्यो विद्यमानश्च गुरुस्थानाम्बुजाननाः ।

१०

सिंहादीनि च पर्यायमुपमानेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

योजयेत् जोडयेत् । पर्यायं विशेषणम् उपमानेषु । वित्तमः । वित्तवर्णः । वित्त-
ज्ञातिः । वित्तसदृशः । वित्तसदृशः । वित्तसदृक् । वित्तुल्यः । वित्तधर्मः । वित्तरूपः । वित्तुल्यः । वित्तकक्षः ।
अनेन प्रकारेण मान्यविद्यमानगुरुस्थानाम्बुजाननसिंहादिशब्दा उपमानेषु प्रयोजनीयाः ।

व्यपदेशो निभं व्याजः पदं व्यतिकरञ्छलम् ।

१५

छन्न

सत कैतवे । व्यपदेशनं व्यपदेशः^१ । पुंलि । निर् अतिशयेन भाति निभम्^२ । व्यज्यते^३ व्याजः ।
पुंलि । पद्यते गम्यते कैतवेन पदम् । व्यतिकरणं व्यतिकरः । छलति^४ छलम् । क्लीबे छायति
छन्न^५ । नान्तम् । क्लीबम् । कैतवम् । कपटम् । कूटम् । उपाधिः । मिषम् । लक्ष्यम्^६ ।

वृत्तान्तमुत्प्रेक्षा शब्दमन्यं च निर्णयेत् ॥ १३८ ॥

२०

द्वौ वार्तायाम् । वृत्तस्य चरितस्यान्तो वृत्तान्तः^१ । उत्प्रेक्षणम् उत्प्रेक्षा । वार्ता । प्रवृत्तिः । उदन्तः ।

१. अत्र समादयः स्वरूपान्ता नव समाने । तुलाकक्षोपमा विधा इति चत्वारस्तुलायामिति
पर्यायत्वेन वक्तव्येऽपि सदृशाऽभिप्रायेण तदाह । कचिदभिधेति पाठः । परन्तु तुलार्यकविवाशब्दोऽत्र युक्तः ।
एवं च त्रयोदश इति वक्तव्यम् । अभिधापाठे तु “उपमाऽभिधा” इत्यनयोरुपमावाचकत्वे सति “एकादश”
इति सङ्गच्छते । २. मकारे परे समानस्य सादेशविधायकवचनाभावात्समानं मातीति विग्रहश्चिन्त्यः ।
“सम वैकल्ये” समति वैकल्यं करोतीति समः । समः समस्य वैकल्यं करोत्येव । पचाद्यच् । ३. “कर्मणु
पमाने त्यदादौ दृशष्टक् राकौ च” का० सू० ४।३।७५। अत्र वृत्तिः । ४. का० सू० ३।८।४। ५. का० सू०
२।२५६ । सू० ६. “समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्” इति वार्तिकरूपेणोपलभ्यते । २।२।६०। काशिकायाम् ।
कातन्त्रवृत्तन्तु नैतादृशमुपलब्धम् । वृत्तिरपीदृशी काऽपि नास्ति । काशिकायां टीकीक्तवचनसाम्येऽपि प्रत्य-
यस्वरूपसाम्यं नास्ति । ७. “दृग्दृशद्वये समानस्य सः” का० सू० ४।६।६५। ८. का० सू० ४।२।७५।
वृत्तिः । ९. “ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनवन्तु” इति पा० सू० ६।३।८५।
१०. वाचनिकं नैतत् । अनुलोपमाम्यामिति ज्ञापितमिति प्रतिभाति । ११. व्यपदिश्यते व्यपदेशोऽतद्रूपस्य
तादृश्यम् । १२. नि नितरां तदिव भाति निभम् इत्यन्यत्र । १३. व्यजन्ति विक्षिपन्ति अनेन व्याजः । “अत्र
गतिक्षेपणयोः” । घञ् । १४. छवति छिनत्ति वस्तुतत्त्वमनेनेति वा । छो छोदने । क्ल प्रत्ययः । १५. छाद्यते
रूपमनेन छद्म । मनिन् । ह्रस्वः । “छद् अपवारणे” । चुगादिः । १६. लक्ष शब्दोऽप्ययम् । १७. वृत्तोऽनुस-
धानीयो गवेपणीयोऽन्तः समातिर्यत्येति रामाश्रमः ।

व्रातः^१ पूगः समाजश्च समूहः सन्ततिर्ब्रजः ।

व्यूहो निकायो निकुरो निकुरम्बं कदम्बकम् ॥ १३६ ॥

ओघः समुदयः सङ्घः सङ्घातः समितिस्ततिः ।

निचयः प्रकरः पङ्क्तिः

विंशतिस्समूहे । वृणोति छादयति व्रातः^२ । पूज्यते पूयते वा पूगः^३ । संवीयते समाजः^४ । घञ् । समूह्यते सम्यग् दौक्यते समूहः । संतन्यते सन्ततिः । ब्रजन्त्यत्र ब्रजः । उभयम् । विशेषेण उह्यते व्यूहः । ५ निचीयतेऽसौ निकायः । कायश्च । निकीर्यते निकरः । समन्तान्निकुरन्ति^६ वदन्ति (छिन्दन्ति) निकुरम्बः । कुत्सितम् अम्बते कदम्बम् । स्वार्थे के कदम्बकम् । द्वौ क्लीबे । उह्यते ओघः^७ । “न्यङ्क्वादीनां” ह्रस्व घः । समुदीयतेऽत्र समुदयः^८ । समुदायश्च । संहन्यन्तेऽस्मिन्नवयवाः सङ्घः^९ । संहन्यते संघातः । हन्तेर्घः । इण् गतौ सम्पूर्वः । समयनं समितिः । स्त्रियां क्तिः । तननं ततिः । निचीयतेऽसौ निचयः । १० उच्चयः । प्रचयः । सञ्जयः । प्रक्रियते प्रकरः । पचि विस्तारवचने । पङ्क् । इदनुवृत्तानां धातूनां नलोपो नास्तीति । पङ्जनं पङ्क्तिः । स्त्रियां क्तिः ।

पशूनां समजो ब्रजः ॥ १४० ॥

पशूनां ब्रजः समूहः समजः कथ्यते । अज क्षेपणे । अज् सम्पूर्वः । समजनं समजः । “समुदोरजः पशुपु^{१०}” अल् ।

१५

समीपाभ्यासमासन्नमभ्यर्णं सन्निधिं विदुः ।

अविदूरं च निकटमवलग्नमनन्तरम् ॥ १४१ ॥

नव समीपे । समाप्नोति समीपम्^{११} । अभ्युपेत्य चास्यते अभ्यासः । घञ् । आसद्यते स्म आसन्नम् । अर्दं गतौ याचने च । अर्दं अभिपूर्वः । अभ्यर्दति स्म अभ्यर्त्तणः । निष्ठाक्तः । “सामीप्येऽभे^{१२}” नेट् । “दाह^{१३}स्य च” दकारतकारयोर्नत्वम् । “रष्ट^{१४}”-धातोर्नकारस्य णत्वम् । “तवर्गस्य^{१५}” निष्ठा- २० नस्य णत्वम् । सन्निधीयते सन्निधिः । अ(व)विदुनोतीति अचिदूरम् । “दुनोतेर्दीर्घश्च^{१६}” दुनोतेरक् प्रत्ययो भवति दीर्घश्च । दृढ उपतापे । निकटति निकटम् । (नि) नास्ति कटोऽस्येति च निकटः । कटे वर्णाभरणयोः । अवलगति (स्म) अवलग्नः । न अन्तरम् अनन्तरम् । समीडम् । समर्यादम् । आरात् । सदेशम् । उन्नत-

१. चेतनाचेतनसर्वसमूहे व्रातादयो विंशतिशब्दाः प्रवृज्यन्ते । ओघो वर्गश्च सन्तान इति वंशस्यावान्तरवर्गभेद इति द्रष्टव्यः । परन्तु व्यवहारे प्रयोगसाङ्ख्यमपि दृश्यते । २. “वृज् वर्गो” । आनक्त्यप्रत्ययः । अन्यत्र तु व्रत्यते एकस्मिन् राशौ नियम्यते इति मुण्डमिश्र इति ष्यन्तादन्तेर्घञ् । तातव्यमनङ्गिति निर्देशाद् दीर्घः । ३. पूज्यते राशित्वेन मन्यते, पूयते जनसमुदायात् राशिभेदेन निर्याप्यते वा पूगः । “छाण्वलडिभ्यः कित्” । उ० सू० १२४ । इति पूजः पूजो वा किद् ग प्रत्ययः । पूजयते पूजनादुत्प्रेक्षेति कृतेऽपि स्थानिवत्त्वेन ष्यन्तात्कुत्वं दुस्साध्यम् । ४. “अज गतिक्षेपणयोः” । घञ् । ५. “ह्रस्वोऽभे^{१२}” । आ- लकादम्बच् । अस्योत्त्वे निकुरम्ब इत्यपि । ६. आङ्पूर्वाहृतेर्घञ् । “उह्र कित्” । उ० सू० ४।६।५७ । ७. सम्-उद्पूर्वकः “इण् गतौ” इण्धातुः । इणिति समुदयः । वणि समुदायः । ८. “समुदो- र्गणप्रशंसयोः” का० सू० ४।५।६४ । इति हन्तेर्डप्रत्ययो धादेशश्च । ९. का० सू० ४।५।५६ । १०. समीपा- आपोऽस्मिन्निति विग्रहे समासः । अच्समासान्तः । “ह्रस्वत्तत्त्वसर्गोन्मोऽप इत्” इतीत्यारः । उन्नतगद-वर्ग- मपि समीपम् । १२. का० सू० ४।६।६७ । १३. का० सू० ४।६।७२ । १४. का० सू० २।४।४० । १५. “तवर्गस्य षट्त्वर्गाद्वर्गः” का० सू० ३।८।५। १६. का० उ० सू० ६।५ ।

ण्टम् । अभ्यग्रम् । सन्निकटम् । आसन्नम् ।

जित्या हलिर्दलं सीरं लाङ्गलम्

पञ्च हले । जि जये । जि । जीयते जित्या । “जयतेर्दलो क्यवेव” क्यप् । “धातोस्तोऽन्तः पानुवन्धे ।” “स्त्रियामादा” । हलति हलिः । महदलं हलिरुच्यते । भूमि हलति विलिखति हलम् ।
५ सीयते वध्यते वरत्रया सीरम् । लङ्गति भूमि गच्छति लाङ्गलम् ।

तत्करो वलः ।

हलपर्यायतः करपर्यायेषु वलभद्रनामानि भवन्ति । जित्याकरः । हलिकरः । हलकरः । सीरकरः । लाङ्गलकरः । हलपाणिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

रेवतीदयितो नीलवसनः केशवाग्रजः ॥ १४२ ॥

१० त्रयो वलभद्रे । रेवत्या दयितो भर्ता रेवतीदयितः । नीलं कृष्णं वर्णं वसनं यस्य स नीलवसनः । केशवस्याग्रजः केशवाग्रजः । कालिन्दीकर्पणः । वलः । प्रलम्बघ्नः ।

अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः श्वेतवाजी कपिध्वजः ।

गाण्डीवी कार्मुकी सव्यसाची मध्यमपाण्डवः ॥ १४३ ॥

वृषसेनः सुनिर्मोको दैत्यारिः शक्रनन्दनः ।

१५ कर्णशूली किरीटी च शब्दभेदी धनञ्जयः ॥ १४४ ॥

सप्तदशार्जुने । अर्जुं सर्जं अर्जने । अर्जति (कीर्तिम्) अर्जुनः । “ऋकृतृवृज् यमिदार्यजिन्ध्र्य उनः” फल निष्पत्तौ । फलतीति फाल्गुनः । “पिशुनफाल्गुनौ” एतौ उनप्रत्ययान्ता निपात्येते । जयतीत्येवं शूलो जिष्णुः । “जिभुवोः स्तुक्” । श्वेता वाजिनो यस्य स श्वेतवाजी । कपिवानरो ध्वजे यस्य स कपिध्वजः । गां जीवतीत्येवंशूलो गाण्डीवी । कार्मुकं धनुरस्तीत्यस्य कार्मुकी । सव्ये साचयतीति सव्यसाची । मध्यमश्चासौ पाण्डवः मध्यमपाण्डवः । युधिष्ठिरभीमयोः सहदेवनकुलयोर्मध्ये अर्जुनः, तेन मध्यमपाण्डवः कथ्यते । वृषं सिनोति बध्नातीति वृषसेनः । सुनिर्मुच्यते शत्रुभिः सुनिर्मोकः । दुःसाध्यत्वात् । दैत्यस्यारिः शत्रुदैत्यारिः । शक्रस्येन्द्रस्य नन्दनः शक्रनन्दनः अर्जुनः कथ्यते । यमस्य पुत्रो युधिष्ठिरः । वायोर्भीमः । इन्द्रस्यार्जुनः । अश्विनीकुमारयोर्नकुलसहदेवौ पुत्रौ । असत्यमेवं तत् । कर्णे शूलं विद्यते यस्यासौ कर्णशूली । किरीटं शेखरं विद्यते यस्यासौ किरीटी । शब्दभेदोऽस्त्यस्य शब्दभेदी ।

१. का० सू० ४।२।२६ । अत्र दुर्गवृत्तिः । २. का० सू० ४।१।३० । ३. का० सू० २।४।४६ । ४. का० उ० सू० २।६० । ५. का० उ० सू० २।६१ । “फल निष्पत्तौ” उनप्रत्ययो गोऽन्तश्च । फलति कर्मसिद्धिमयते इत्यर्थः । ६. का० सू० ४।४।१८ । ७. गां जीवयतीति शोध्यम् । विराट् नगरे पाण्डवानुसन्धानाय भीष्मकर्तृकगवाकमणोऽर्जुनद्वारारक्षस्य महाभारतोक्तत्वात् । वस्तुतस्तु गाञ्जीवं गाण्डीवमिति अर्जुनधनुषो नाम, तदस्यास्तीति गाञ्जीवी इति मत्वर्थोऽयं इन् । तदुक्तं कल्पद्रुकोपे — “गाण्डीवी गाण्डिवोऽस्त्रियाम् । गाञ्जीवी गाञ्जिवोऽप्यस्त्री” इति १।५।४४ मूले गाण्डीवीशब्दस्तु गाण्डी व्रन्धिरस्यास्तीति गाण्डीवम् । “गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्” पा० सू० ५।२।२१० । इति मत्वर्थोऽयं वः । तदस्यास्तीति मत्वर्थोऽयं इन् । ८. सव्येन वामपाणिनाऽपि सचते वाग्वान् वर्षतीति सव्यसाची ।

कैचित् शब्दवेदीति पठन्ति इत्यपि स्यात् । जि जये । धनपूर्वः । धनं जितवान् धनञ्जयः । “नान्नि”
खः । “नाम्यन्त” गुणः । “ए” अयम् । “ह्रस्वा” रुषोर्मोन्तः । धनञ्जयेति कवेर्नामाभिधानमपि ज्ञातव्यम् ।
स कथम्भूतः ? शब्दभेदी । अतः परः कोऽपि नास्ति । पाण्डवनाम मिषेण स्वनाम कथितमस्ति ।

कुरुकीचकयोवैरी वायुपुत्रो वृकोदरः ।

कुरुवैरी । कीचकवैरी । कुरुशत्रुः । कीचकशत्रुः । कुरुरिपुः । कीचकरिपुः । अनिलसुतः ।
पवनात्मजः । इत्यादीनि भीमस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । वृकोऽरण्यश्वा तद्वत् उदरं यस्य स वृकोदरः ।

समवर्ती यमः कालः कृतान्तो मृत्युरन्तकः ॥ १४५ ॥

षड् यमे । सर्वेषु समं त्रयं वर्तते समवर्ती । नान्तः । रिपौ मित्रे च समं वर्तते इति वा । यम-
यति निगृह्णाति प्रजां यमः । यमलजातत्वाद्वा । कलयति जन्तून् विनाशहेतुत्वेन कालः । कृतोऽन्तो
विनाशो येन स कृतान्तः । म्रियतेऽनेनेति मृत्युः । “भुजिमृडोः युक्त्युक्तौ” अन्तं करोतीति अन्तकः ।
शमनः । प्रेतपतिः । पितृपतिः । कीनाशः । वैवस्वतः । कालिन्दीसोदरः । धर्मराजः । दण्डधरः । हरिः ।
दक्षिणापतिः । श्राद्धदेवः ।

तदात्मजो जातरिपुः कौन्तेयो भरतान्वयः ।

कौरव्यो राजयक्ष्माऽसौ सोमवंशो युधिष्ठिरः ॥ १४६ ॥

सप्त युधिष्ठिरे । तस्य धर्मस्यात्मजस्तदात्मजः । समवर्तिपुत्रः । यमोद्वहः । कृतान्तपोतः ।
मृत्युनन्दनः । अन्तकदारकः । इत्यादीनि युधिष्ठिरपर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । जातस्य स्वगोत्रस्य रिपुः
जातरिपुः । कुन्त्या अपत्यं पुमान् कौन्तेयः । भरतोऽन्वयोऽस्य भरतान्वयः । कुरोरपत्यं
पुमान् कौरव्यः । राजभिर्नरेन्द्रैर्यक्ष्यते पूज्यते राजयक्ष्मा । “सर्वधातुभ्यो मन्” । राजलक्ष्मा चेति
कैचित्पठन्ति । सोमो वंशोऽस्य सोमवंशः । युधि संग्रामे तिष्ठतीति युधिष्ठिरः ।

श्वेतार्जुनो शुचिः श्वेतो बलक्षं सितपाण्डुरम् ।

शुक्लावदातं धवलं पाण्डुः शुभ्रं शशिप्रभम् ॥ १४७ ॥

त्रयोदश श्वेते । श्वेतते श्वेतः । अर्ज्यतेऽर्जुनः । शोचतीति शुचिः । शुच शोके ।
श्यायते श्येतः । अवलक्षयति अवलक्षः । बलक्षम् । सिनोति बध्नाति (मनः) सितः । पण्डते याति
मनोऽत्र पाण्डुरः । अथवा “नगपांशुपाण्डुभ्यो रः” पाण्डुत्वमस्यास्तीति पाण्डुरः । पाण्डुः । पाण्डरः । शोकति
मनोऽस्मिन् शुक्लः । शुक्ल गतौ । अवदायते शोध्यते अवदातः । धवति धवलः । पण्डते याति

१. “नान्नि तृभृजिधारितपिदमिसहां संज्ञायाम्” का० सू० ४।३।४४ । २. का० सू०
३।५।१ । ३. का० सू० १।२।१२ । ४. का० सू० ४।१।२२ । ५. धनञ्जयात्वरं कश्चिच्छब्दभेदेना
नास्तीत्यर्थः । ६. वृको भीमजठराग्निः स उदरे यस्येत्यपि । ७. कलयतीत्यस्य स्थाने कालयतीति
वक्तव्यम् । ८. का० उ० सू० २।३४ । ९. अन्तहरोत्यन्तयति, अन्तवत्यन्तक इति यावत् ।
१०. कोशान्तरप्रमाणान्महाभारतादिकथासंवादात् महाकविव्यवहाराच्च “अजातरिपुः” इति शब्दोऽत्र पुनः ।
न जाता रिपवो यस्येति युधिष्ठिरस्य “अजातशत्रुः” इति संज्ञा । तदुक्तम्—“अजातशत्रुः शत्रुपरिधर्मवृद्धो
युधिष्ठिरः” । अभि० चि० ३।३०८ । ११. का० उ० सू० ४।२८ । १२. “श्वेता वर्यो” । अर्जुनः कौन्तेयः ।
पचायच् । १३. अर्ज्यते सङ्गृह्यते जनैः । १४. शुच्युज्ज्वलवत्तूनां सर्वसङ्गृहणीयत्वं लोकादुन्मूलनम् ।
शोचति निर्मलीभवति शुचिः । शुच दीर्घा । इक् । १५. श्वैर् गतौ । श्यायते गच्छति
नीलादिवर्णविशुद्धत्वम् । “दृश्याभ्यामितन्” । पा० उ० सू० ३।९३ । इतन् । १६. अवलक्षयति अव-
लक्ष्यते वा अन्यवर्णापेक्षया उत्कृष्टत्वेनेति । वष्टि भागुरिस्त्वलोप इत्यल्लोपसङ्गे । १७. श्वेतावदो यमः
दैर् शोधने । कर्मणि क्तः । १८. धुनोत्यशोभाम् इति ऐमचन्द्रः । धावति मनोज्ञः । पाण्डुः शशिप्रभः ।
कलच्, ह्रस्वश्चेतीति रामाधमः ।

मनोऽस्मिन् पाण्डुः ^१ । शोभते शुभ्रः । शशिन इव प्रभा यस्य शशिप्रभम् । गौरः । हरिणः ।

कृष्णं नीलासितं कालम्

चत्वारः कृष्णे । वर्णान् कर्षति ^२ कृष्णः । नीलति नीलम् ^३ । उभयम् । न सितम् अस्मितम् ।
कं सुखमालाति कालः । कालयति वा मनः ^४ कालः । मेचकम् । श्यामलम् । श्यामं च । पालाशम् ^५ ।
५ हरित् । शिखिकण्ठाभः इति दुर्गः ।

धूमं धूममलिप्रभः ।

विशिष्ट^६कृष्णे त्रयः । धूनाति धूमः । धूनोत्यभिमवति रागं धूमः । धूमलश्च । अलि-
वत्प्रभा यस्य सोऽलिप्रभः ।

तमोऽन्धकारं तिमिरं ध्वान्तं संतमसं तमम् ॥ १४८ ॥

१० ताम्यति मन्दीभवति चक्षुरत्र तमः । सान्तम् । क्लीवे । अन्धं दृष्टव्युपघातं करोतीति अन्ध-
कारम् । तिम्यते आच्छाद्यतेऽनेन तिमिरम् । कान्तारे ध्वन्यते ध्वान्तम् ^१ । सम् सम्यक् प्रकारेण तमः
सन्तमसम् । ताम्यतीति तममित्यदन्तम् । क्लीवे । अवतमसम् । अन्धतमसम् । तमिलम् । भृङ्गाया ।
भृङ्गायम् । दिगम्बरम् ।

लोहितं रक्तमाताम्रं पाटलं विशदारुणम् ।

१५ पङ् रक्ते ^२ । रोहति जायते शोभाऽत्र लोहितः ^३ । रज्यते रक्तम् ^४ । आताम्यते काङ्क्षयते
कणेषु आताम्रः । पाटयतीति पाटलः । पाटेरलः । विशीयते विशदः । ऋच्छति इत्यर्त्य-
(ति वाऽ) रुणः ।

पीतं गौरं हरिद्राभम्

२० हरिद्रारक्तवर्णं त्रयः । पीयते मनोऽनेन पीतम् ^१ । गाते गच्छति वर्णविशेषः गौरः ^२ ।
तथा च नाममालायाम् ^३—“गौरः श्वेतेऽरुणे पीते विशुद्धे चन्द्रमस्यपि विशदे” । हरिद्रावत् आभा
लुर्विरस्य हरिद्राभः ।

पालाशं हरितं हरित् ॥ १४९ ॥

हरिद्वर्णं त्रयः । पलाशस्य वर्णस्यायं पालाशः । पलाश इत्याह ^४—“राक्षसे । किंशुके
वर्णं पलाशाख्या । हरित्यपि” । हरति चित्तं हरितम् । हरित् ।

१. पन्यते स्तूयते पाण्डुः । “पनेदीर्घश्च” इति डुः । इति हेमचन्द्रः । २. कर्षति मन इति
रामाश्रमः । दृपेर्वर्णं इति नक् । ३. “शील वर्णं” । नाम्युपघेति का० सू० कः । ४. कालयति मन
इत्यन्यत्र । ५. अयं पाटोऽत्र न युक्तः । “पालाशं हरितं हरित्” इति पद्यस्य टीकायामग्रे द्रष्टव्यः । ६. कृष्ण-
मिश्रितलोहिते धूमधूमलशब्दाविति वैशिष्ट्यार्थः । तदुक्तम्—“धूमधूमलो कृष्णलोहिते” इत्यमरः । १।५।१६ ।
७. कान्तारप्रदेशादिषु तमसोऽविच्छिन्ननिवेशात्तदाह—“कान्तारे ध्वन्यते” इति । सर्वरोगहरतया ध्वन्यते
ध्वान्तमिति हेमचन्द्रः । ८. अत्र द्वौ रक्ते, त्रयो विशदारुणे, इति वक्तव्यम् । विशदं च तद्रूपम्, श्वेत-
विशिष्टरक्तमित्यर्थः । तदेव पाटलम् । तदुक्तम्—“श्वेतरक्तस्तु पाटलः” इत्यमरः । ९. “रुह वीजजन्मनि
प्रादुर्भावे” । “रुहे रश्च लो वा” । पा० उ० सू० ३।१४ । इतीतन्, लत्वं च वा । १०. रज्जति स्म रज्यते स्म
वा रक्तमित्यन्यत्र । ११. पीयते वर्णान् पीतः । “पीड् पाने” । दि० । इत्यपि । १२. गूरते उद्युङ्क्ते मनोऽस्मिन्
गौरः । “गूरी उद्यमने” । ऋज्रेन्द्र इत्युणादिसूत्रेण व्युत्पादितः । “गूर्यते गौरः” इति हेमचन्द्रः । “गूड
संश्लेषणे” । १३. अने० स० २।४२५ । १४. शा० को० ५२९ ।

हरिणी लोहिनी शोणी गौरी श्येनी पिशङ्गयपि ।

षट् रक्तवर्ण^१ । “श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो नः^२” अनेन ईप्रत्यये तकारस्य नकारश्च । हरिणी । तथा च हलायुधे^३—“शुकाभा हरिणी स्मृता ।” हरिता च । रोहित जायते शोभाञ्च लोहितः । रलयोरेक्यम् । “श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो नः” अनेन ईस्तकारस्य च नकारः । लोहिनी जाता । हलायुधे^४—

“जपाकुसुमसंकाशा लोहिनी परिकीर्तिता”

शोण्यते शोणी । गाते गौरः । नदादित्वादीः । गौरी । श्यायते गच्छति श्रियं श्येनी । हलायुधे^५—“श्येनी कुमुदपत्राभा ।” श्येना च । पेशति पिशङ्गः । ईप्रत्यये पिशङ्गी ।

सारङ्गी शवरी काली कल्माषी नीलपिञ्जरी ॥१५०॥

षट्^६ पञ्च वर्णैः । सारयति गमयति [बहुवर्णान्] सारङ्गः । ईप्रत्यये सारङ्गी । शवति याति वर्गान् शवरीः शवलश्च । ईप्रत्यये शवरी । कालयति कालः । ईप्रत्यये काली । कलयति वर्णान् कल्माषः । ईः कल्माषी । नील गन्धे । नीलति नीलम् । ईप्रत्यये नीली । पिञ्जति पिञ्जरः । ईप्रत्यये पिञ्जरी ।

परागं मधु किञ्जल्कं मकरन्दं च कौसुमम् ।

पञ्च^७ कुसुमरेणौ । परं प्रकर्षमग्यते सम्भाव्यते पुष्पेषु परागः^८ । उभयम् । मन्यते सम्भाव्यते पुष्पेषु मधु । उभयम् । किं जल्पति किञ्जल्कम्^९ । मङ्कयते मण्डयते पुष्पमनेन मकरन्दम्^{१०} । कुसुम-स्येदं कौसुमम् ।

उपचाराद्रजः पांशुरेणुधूलीश्च योजयेत् ॥१५१॥

चत्वारो धूल्याम् । रंज रागे । रजत्यनेन रजः । “उपिरंजिष्टभ्यो यण्वत्^{११}” । नक् धक् पशि नाशने । पंशयते पांशुः । “^{१२}अहिरहितलिपंशिभ्य उण् ।” रीङ् गतौ । रीयते रेणुः । “दाभारीवृज्भ्यो णुः” । धूयते धुनोति दृष्टिं वा धूलिः । उपचारात् पुष्परजः । सुमनःपांशुः । पुष्परेणुः । लतान्तधूलिः । प्रसवरजः । प्रसूनरेणुः । इत्यादीनि पुष्परजो नामानि ज्ञातव्यानि ।

कलङ्कावधमलिनं किञ्जल्कं लक्ष्म लाञ्छनम्

निबोधमधमं पङ्कं मलीमसमपि त्यजेत् ॥१५२॥

१. अत्र षट्छील्लिङ्गवाचके तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम्, न तु रक्तवर्णं । तत्तद्वर्ण-भेदो यथा—हरिणी शुकाभा, लोहिनी जपाकुसुमसंकाशा, शोणी कोकनदच्छविः, गौरी हरिताभा, श्येनी कुमुदपत्राभा, पिशङ्गी पीतरक्ता । २. “श्येतैतहरितभरितरोहिताद् वर्णान्तो नः” हे० श० २।४।३६ । ३. “श्येनी कुमुदपत्राभा शुकाभा हरिणी स्मृता । जपाकुसुमसंकाशा रोहिणी परिकीर्तिता ।” इति पूर्णः श्लोकः । ४. हलायु० ४।५३ । ५. हला० ४।५३ । ६. अत्र षट् छील्लिङ्गवाचके तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम् । तद्भेदो यथा—सारङ्गीशम्बरीकल्याण्यश्रित्रवर्णाः । काली नील्यावर्णिनी । पिञ्जरी पीतरक्ता । ७. अत्र परागकिञ्जल्कशब्दौ पुष्परजोवाचकौ, मधुमकरन्दशब्दौ पुष्परजवाचकौ, कौसुम-शब्दस्तदुभयवाचकः, इति विवेकः । ८. परागच्छति परमुत्कर्षमगतिं वेति विवरः सरलः । ९. किञ्जलति, “जल श्रपवारणे” । बाहुलकात्कः । किञ्जलति जडीभवति इति स्त्री० रत्न० । १०. मकरमपि यति कामजनकत्वान्मकरन्दः । “दो अखण्डने” । कः । मकरमपि पन्दति कर्मातीति वा । “अदि वन्धने” । कर्मण्यण् । शकन्वादिः । इति रामाधमः । ११. का० ड० सू० ४।५६ । १२. का० ड० सू० १।३ । १३. का० उ० सू० २।७ ।

दश कलङ्के । कल्पते लक्षणेन कलङ्कः^१ । न वयं समीचीनम् अवद्यम्^२ । मल्यते धार्यतेऽप्यशो-
ऽनेन मलिनम् । किं कुत्सितं जल्पति किञ्चलकम् । लक्षयति परं नान्तम् लक्षम् । लाञ्छयतेऽनेन
लाञ्छनम् । निवृध्यते निवोधम्^३ । नञ्पूर्वो धाञ् । न दधातीत्यधमः । “धर्मसोमाग्नीष्माधमाः” ।
“पच्यते पङ्कम् । मलिना कदर्येण मस्यते^४ परिमाणीक्रियते मलीमसः । तं त्यजेत् सत्पुरुषः ।

५

जनोदाहरणं कीर्तिं साधुवादं यशो विदुः ।

वर्णं गुणावलिं ख्यातिं

सत यशसि । जनानां लोकानामुदाहरणं, जनेन लोकेनोदाह्रियते वा जनोदाहरणम् । कृत
संशब्दे । कृत्-“चुरादिश्च^५ ।” इन् । कृतः^६ कारिते इर् । कीर्तिं जातः । नामिनोर्वा^७ । कीर्तिं जातम् ।
कीर्तनं कीर्तिः । “कीर्तीपोः क्तिश्च^८” क्तिप्रत्ययः । कारितलोपः । त्रिषु व्यञ्जनेषु सखातेषु स्वजातीयानां मध्ये
१० एकव्यञ्जनलोपः । एकस्तकारो लुप्यते । सिः । रेफः । साधूनां सत्पुरुषाणां वादः साधुवादः ।
कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । यज देवपूजादिषु । इज्यते यज्ञः । “यजः शिश्च” अस्मादसन्
प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । जस्य शिः । इकार उच्चारणार्थः । वर्ण्यते साधुजनेन वर्णः । गुणानामवलिः
श्रेणिः गुणावलिः । ख्यायते ख्यातिः । श्लोकः । अभिख्या । समाख्या ।

अवधानं तु साहसम् ॥१५३॥

१५

साहसे द्वौ । अवधीयतेऽवधानम् । अवदानं च । साह्यते^९ साहसम् ।

प्रेष्यादेशनिदेशाज्ञानियोगाः शासनं तथा ।

पडादेशे । प्रेष्यते इति प्रेष्यः । आ समन्ताद् दिशतीत्यादेशः^{१३} । निदिश्यते निदिशतीति वा
निदेशः । आजानातीत्याज्ञा^{१४} । नियुज्यन्ते नियोगाः । शास्यते प्रतिपाद्यते शासनम् । शासु
अनुशिष्टौ ।

२०

सन्देशः प्रिययोः

स्त्रीपुरुषयोः मुखवार्तायां सन्देशः । सन्दिशति^{१५} सन्देशः । अमरसिंहनाममालायाम्^{१६}—
“सन्देशवाग्वाचिकं स्यात् ।”

वार्ता प्रवृत्तिः किंवदन्त्यपि ॥१५४॥

त्रयो नवीनवार्तायाम् । वृत्तिलोकवृत्तं विद्यतेऽस्या वार्ता । “प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चावृत्तिभ्यो णः”

१. कं ब्रह्माणमपि लङ्कयति हीनतां गमयतीत्यन्यत्र । २. न वदितुं योग्यमित्यवद्यं गह्यम् ।
“अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु” इति यत् । ३. नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम् । निवृध्यते
निश्चयेन ज्ञायते कलङ्कजनोऽनेनेति करणे घञ् । कलङ्किनां राजशासनचिह्नितत्वदर्शनात् । ४. का०
उ० सू० १।५३ । ५. पच्यते दुःखमनेन । पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । कर्मणि घञ् ।
६. “मसी समी परिमाणे” । पुंसि संज्ञायां घः । यद्वा मलोऽस्यास्तीति “ज्योस्नातमिहो”
त्यादिना मत्वर्थोऽय ईयस् प्रत्ययः । टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्यः । तत्र मलिमस इत्यापत्तेः । ७. का० सू०
३।२।११ । ८. कीर्तीपोः क्तिश्चेति निर्देशात् कृतः कारिते इर् । ९. “नामिनोर्वाऽकुछुरोर्व्यञ्जने”
का०सू० ३।८।१४ । १०. का०सू० ४।५।८६ । ११. का०उ० सू० ४।६० । १२. सहसि बले भवं साहसम् ।
१३. आदेशनम् आदिश्यते वेति विग्रहः । १४. अत्रापि आज्ञायते आज्ञानं वेति विग्रहः । १५. सन्दिश्यते
इति कर्मणि घञ् न्यायः । १६. अम० को० १।६।१७ । १७. पा० सू० ५।२।१०१ ।

स्त्रीस्त्रीबे वार्त्ते च । प्रवर्तते जनोऽनया प्रवृत्तिः । स्त्रियाम् । किं कुत्सितं वदत्यत्र किंवदन्ती^१ ।
वृत्तान्तः । उदन्तः ।

कठोरं कठिनं स्तब्धं कर्कशं परुषं दृढम् ।

षड् दृढे । कठति कृच्छ्रेण जीवति कठोरः^२ । कठति कठिनः । स्तम्नोति स्म स्तब्धः । कर्कः
सोत्रोऽयं धातुः । कर्कति करोति निर्दयत्वं कर्कशः । परुष्यति कुप्यतीति परुषः^३ । कुप कुध रुप रोपे । ५
दृह दृहि वृद्धौ । दृहति स्म दृढः । “परिवृढदृढौ प्रभुबलवतोः ।” क्रूरः । कम्पदः । खरः । चण्डः ।
निष्ठुरः । जरठः । मूर्तिमत् । मूर्तम् । प्रवृद्धम् । प्रौढम् । एधितम् । सर्वे त्रिषु ।

अश्लीलं काहलं फल्गु

निस्तारे वचसि त्रयः । न श्लीयते न श्लिष्यते सतां चित्तम् अश्लीलम्^४ । वचनम् । कं
शिरः आ समन्तात् हलति अशोभमानं करोतीति काहलम्^५ । लोहलञ्च । लुहः सौत्रः । फल निष्पत्तौ । १०
फलति फल्गुः^७ । “रञ्जतकुर्वल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुलघवः ।

कोमलं मृदु पेशलम् ॥ १५५ ॥

त्रयः कोमले । कौ पृथिव्यां मलते कोमलम्^८ । मृद जोदे । मृदनातीति मृदु^{१०} । पिशति
पेशलम्^{११} । सुकुमारः । मृदुलम् ।

प्रत्यग्रं साम्प्रतं नव्यं नवं नूतनमग्रिमम् ।

१५

षड् नवीने । प्रत्यग्रगति प्रत्यग्रम्^{१२} । सम्प्रति भवं साम्प्रतम् । नूयते नव्यम्^{१३} । नौति
नवम्^{१४} । नूयते नूतनम्^{१५} । अग्रे भवम् अग्रिमम्^{१६} । “पृथ्वादिभ्य इमन्वा” । अभिनवम् ।

१. कोऽपि वादः । किम्पूर्वाद् वदेरौणादिको भूच् प्रत्ययः, भूत्यान्तः । गौरादित्वान्डीप् ।
इति रामाश्रमः । २. “कठिचकिभ्यामोरः” का० उ० सू० ४।३७ । “कठ कृच्छ्रजीवने” । ३. वटि-
भागुरिरल्लोपमित्यपेरल्लोपो नत्वपत्येति टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्यः । रामाश्रमस्तु—“पिपत्तिं पूरयति अलं
बुद्धिं करोति । “पृ पालनपूरणयोः” । “पूनहि” इत्यादिना उ० सू० ४।७५ । उपच् । इत्याह ।”
पृणाति पूरयति परं कोपेनेति हेमचन्द्रः । ४. का० सू० ४।६।९५ । ५. न धियं लातीति
अश्लीलम् । कप्रत्ययः । कपिलकादित्वात्लत्वम् । इति रामाश्रमः । न धीरस्यास्तीति सिध्मादित्वान्म-
त्वयांयो लः । ६. काहलोऽल्लुट्वागिति हेमचन्द्रः । ७. फलति विशीर्यते इत्यन्यत्र । ८. का० उ० सू०
१।९। इत्युप्रत्ययः गश्च । ९. कौ पृथिव्यां मलते धारयति श्रियम् इत्यर्थः । “मल मल्ल धारणे”
पचाग्रच् । परमेवं कुमल इत्येव सिध्यति । वस्तुतस्तु “कोमल” शब्दस्य सिद्धिः प्रकारान्तरेणैव साधनीया ।
कौतीति कोमलः इति विग्रहोऽभिधानचिन्तामणौ । काग्यते जनैः इत्यन्यत्र । १०. मृयते इति कर्मणि कु-
प्रत्ययो न्याय्यः । ११. पिशत्येकदेशेन सर्वं करोतीति, औणादिकोऽलच् । रामाश्रमस्तु—“पिश समापौ”
पेशनं पेशः समाहितचित्तता, सोऽस्यास्तीति सिध्मादित्वादलच् इत्याह । पेशलशब्दस्य दक्षार्थो मुग्धः
कोमलार्थो गौणः । तदुक्तम्—“दक्षे चतुरपेशलपटवः सूत्यान् उप्पक्ष” इत्यमरः । २।२।१९ ।
“दक्षस्तु पेशलः ।” इति अभि० चि० ३।४८ । १२. “अग्र गतौ” । डः । प्रतिनवमग्रमस्तेति दीर्घवाभि-
रामाश्रमौ । प्रतिगतमग्रमनेनेति हेमचन्द्रः । १३. “गु स्तवने” । अचो वल् । १४. नूयते नवम् ।
अदोदप् । एवं कर्मणि विग्रहो युक्तः । १५. नवमेव नूतनम् । “नवस्य नूरादेशस्तनूतनस्यापि प्रत्ययः
वा० ५।४।३० । इति तनप् प्रत्ययो नूरादेशश्च । इत्यत्र । १६. “अवादिनश्चादिभ्यश्च” वा० इति विभक्तः ।
नात्र पृथ्वादिभ्यः, इमन्, तस्य भावकर्मणोर्विधानात् पृथ्वादौ पाठाभावात् । स्तनि । कश्चित्, तन्-
निष्पत्तापत्तेः ।

नूनश्च । सर्वे त्रिषु ।

पुराणं जठरं जीर्णं प्राक्तनं सुचिरन्तनम् ॥ १५६ ॥

पञ्च पुरातने । पुरा भवम् पुराणम् । जठ इति सौत्रोऽयं धातुः । जठतीति जठरम्^१ । जीर्यते जीर्णम् । प्राक् पूर्वं भवम् प्राक्तनम् । सुष्ठु चिरं भवं सुचिरन्तनम् । प्रतनम् । प्रतनम् ।

५

भो रे हं हो हयामन्त्रे

एते शब्दा ग्रामन्त्रणार्थं वर्तन्ते । भू सत्तायाम् । भोः^२ । रेपृ स्रवर्गता । रे । हनु हिंसागल्योः । हं । हु दाने । हो । हि गतौ । हे ।

कश्चित् किञ्चन संशये ।

सन्देहार्थे^३ द्वौ शब्दौ वर्तन्ते । अविशेषाभिधाने चिञ्चनशब्दौ अवगन्तव्यौ । तथा चोक्तम्—
१० “किमः सर्वविभवत्यन्ताञ्चिञ्चनौ ।” कश्चित् । कश्चन । कौचित् । कौचन । केचित् । केचन इत्यादि ।
अत्रिंशं काचित् काचन इत्यादि । क्लीबे किञ्चित् । किञ्चन । इत्यादि ।

“द्राक्क्षणेऽह्नाय” सपदि^४

शीघ्रायै त्रयः शब्दा वर्तन्ते ।

निपेधे मा न खल्वलम् ॥ १५७ ॥

१५

निपेधे चत्वारः शब्दा वर्तन्ते ।

उच्चैरुच्चावचं तुङ्गपुचमुन्नतमुच्छ्रितम् ।

पङ् दीर्घे । उच्चयते उच्चैस् । अययः । उच्चं च अवचं च उच्चावचम् । तुजति दैर्घ्यमादत्ते तुङ्गम्^५ । उच्चयते उच्चम् । उन्नमत्युन्नतम्^६ । उच्छ्रियते उच्छ्रितम्^७ । प्रांशुः^८ तालव्यः । उदग्रम् दीर्घम् । आगतं च ।

२०

नीचं न्यगातनं कुब्जं नीचैर्ह्रस्वं नयेत्परम् ॥ १५८ ॥

पङ् ह्रस्वे । निचीयते नीचम्^९ । न्यञ्जतीति न्यक् । आतन्यते आतनम्^{१०} । कौति व्याधिं कुब्जः^{११} ।

१. यद्यपि जठरशब्दो जीर्णं प्रसिद्धो जठरशब्दस्तद्रे, तथापि क्वचिजठरशब्दोऽपि जीर्णं पठितस्तदाशयेनाह—जठतीति जठरमिति । यदुक्तम्—“जठरः कुक्षिवृद्धयोः” अने० स० ३।५५१ ।
२. भातीति भोस् । डोस्प्रत्ययः । यथा—भो भार्गव । रिणातीति रे । विच् । यथा रे चेटाः । हं, हो, इति पृथक्सम्बोधनद्वयमुक्तम् । परन्तु नाटकादौ ‘हं हो’ इत्यखण्ड एव सम्बोधने प्रयुज्यते । हं जुहोतीति हंहो । यथा हंहो तिष्ठ सखे । हिनोति हे । “हि गतौ वृद्धौ” । विच् । यथा हे हेरम्ब । ३. अविशेषार्थे इत्याशयः । ४. द्राति द्राक् । “द्रा कुत्सायां गतौ” । बाहुलकात्कः । अकार इत् । स चातौ क्षणो द्राक्क्षणः । ५. आह्वनम् आह्वायः “हन्तुं अपनयने” । घञ् । पृषो-
दरादित्वाद्वस्य यः । ६. सम्पद्यते सपदि । “पद गतौ” । इन् । पृषोदरादित्वात्समोऽन्त्यलोपः । ७. तुञ्जति दैर्घ्यं पालयतीति । वञ् । कुत्वम् । ८. उन्नमति स्म उन्नतम् । ९. ऊर्ध्वं श्रयते उच्छ्रितम् ।
१०. प्राश्रुते दैर्घ्यं प्रांशु । “अश्रुं व्यातौ” । ११. निकृष्टामो लक्ष्मो चिनोतीति । डः । इति रामाश्रमः !
निम्नमञ्जति, नीचैरस्त्यस्य वा । अर्थ आदित्वादच् । अव्ययानां भमात्रे टिलोपः । १२. नात्र प्रमाण-
मुपलब्धम् । १३. कौति व्याधिविशेषं ब्रूते सूचयति । कौ पृथिव्याम् उब्जति ऋजुभवति । “उब्ज आर्जवे” ।
अच् । शकन्वादिः । कु ईपद् उब्जमार्जवमस्य वेति रामाश्रमः ।

न्युञ्जश्च । निचीयते नीचैस् । हसति ह्रस्वः ।

अमा सह समं साकं सार्द्धं सत्रा सजूः समाः ।

अष्टौ सार्धे । अमति अमा^१ । सह इन्ति गच्छति सह । सह मिनोति समम् । सह अकृति गच्छति साकम् । सह ऋद्धम् सार्द्धम् । सह त्रायते सत्रा । जुषी प्रीतिसेवनयोः । जुप् सहपूर्वः । सह जुषते सजूः । किञ्च वेलोपः । सिः । व्यञ्ज^२ । सिलोपः । समन्ति समाः^३ । सह मान्ति वर्तन्ते ऋतवो यासां वा । स्त्रीबहुत्वे ।

सर्वदा सततं नित्यं शश्वदात्यन्तिकं सदा ॥१५६॥

षट् नित्ये । सर्वस्मिन् काले सर्वदा । “काले किं^४ सर्वयदेकान्येभ्यः एष दा” । संतन्यतेस्म सततं^५ सन्ततम् च । नियच्छति नित्यम्^६ । शशतीति शश्वत्^७ । अत्यन्ते भवमात्यन्तिकम् । सदा इति निपातः । सर्वशब्दात्परी दाप्रत्ययो भवति सर्वस्य सभावश्च । सर्वस्मिन् काले सदा । सना- १०
तनं,^८ सदातनम् । ध्रुवम् । शाश्वतम् । शाश्वतिकम् । अनश्चरम् । अविनश्चरम् । सर्वे त्रिषु ।

वियोगं मदनावस्थां विरहं पल्लवं विदुः ।

चत्वारो विरहे । वियोजनं वियोगः । मदनस्य कन्दर्पस्यावस्था मदनावस्था । विरहस्य विरहः । मल मल्ल धारणे । मल्लस्थाने केचित्पल्ल इति पठन्ति । पल्लते पल्लः । स्वार्थे कः पल्लकः^१ ।

प्रेमाभिलापमालभ्यं रागं स्नेहमतः परम् ॥१६०॥

पञ्च स्नेहे । प्रियस्य भावः कर्म वा प्रेमा । प्रिय^१ स्थिरेति प्रादेशः । अभिलष्यते उभिलापः । लप श्लेषणक्रीडनयोः । आलभ्यते आलभ्यम्^२ । “^३सकिसहिपवर्गान्ताच्च” । रञ्ज रागे । रञ्ज् । रञ्जनं रागः । भावे षञ् । “^४रञ्जेर्भावकरणयोः” पञ्चमलोपः । अस्यो दीर्घः । “चजोः”^५ कर्गो धुट् घानु-
बन्धयोः । जकारगकारः । प्र० सिः । रेफः । अथवा रज्यतेऽनेन रागः । “व्यञ्जनाच्च”^६ । करणे षञ् । प्र० २०
“रञ्जेर्भावकरणयोः” पञ्चमलोपः । अस्यो दीर्घः । चजोः कर्गाविति जकारगकारः । स्निह्यते स्नेहः ।

संहितं सहितं युक्तं संपृक्तं संभृतं युतम् ।

संस्कृतं समवेतं च प्राहुरन्वीतमन्वितम् ॥१६१॥

१. न माति सह मापिनामनेकत्वान्मेयतां न गच्छति । डप्रत्ययः । कप्रत्ययो वा । २. “व्यञ्जनाच्च” का० सू० २।१।४६ । ३. “मसी समी परिमाणे” । सम धातुः । पचायच् । सममिति मानम-
व्ययम् । सहायकमत्रोक्तम् । तदभिन्नः समा शब्दो वर्षवाचको न तु सहायवाचकः । तदुक्तम्—“दायनीऽपि
शरत्समाः” इत्यमरः । अतोऽस्मिन्नर्थे एतस्य प्रामाण्यं चिन्त्यम् । सह मान्ति ऋतवो यासमिति विहर्षो-पि
वर्षवाचकसमाशब्द एव सङ्गच्छते । तत्रैव ऋतूनां सहमानात् । ४. का० सू० २।६।३४ । ५. “तदु
विस्तारे” । क्तः । “समो वा हितततयोः” इति नलोपः । ६. त्यन्नेर्ध्रुवे नित्यमिति वा० निष्ठायाश्च ।
नियच्छति नियतं भवतीत्यर्थः । ७. अत्र शशतीति वक्तुं युक्तम् । शश हृत्तगर्तो । वारुणादयम् ।
८. सनातनादिशब्दानां विशेष्यनिष्पानां यथोक्तशब्दोदादिशब्दसमानार्थतया दीकृत्वोक्तिर्न मृषाये ।
९. मल्लकपल्लकशब्दयोर्विरहार्थत्वे प्रमाणान्तरं नोपलब्धम् । १०. पा० सू० ६।१।५७ । इति
प्रादेशः । इमनिच्प्रत्ययः । पृष्वादिभ्य इमनिष्वा इति । ११. आलभ्यशब्दस्य सनायै शोभान्तर-
संवादो नोपलब्धः । १२. का० सू० ४।२।११ । १३. का० सू० ४।१।६६ । १४. का० सू० ४।१।५६ ।
१५. का० सू० ४।५।९९ ।

दश सहिते । संहियते संहितम्^१ । सहितम् ।

“लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि ।

समो वा हितततयोर्मासस्य पचि युड्वजोः॥”

योजनं युक्तम्^३ । पृची सम्पर्के । पृच् । सम्पृणक्ति स्म सम्पृक्तम् । “गत्यर्याकर्मकं” इति
५ कर्तरि क्तप्रत्ययः । “चजोः कजौ” — चस्य कः । सम्भ्रियते स्म सम्भृतम् । यौतिस्म युतम् । संस्क्रियते
स्म संस्कृतम् । समवेयते स्म समचेतम् । अन्वीयते स्म अन्वीतम् । अन्वितम् ।

वर्त्माऽध्वा सरणिः पन्थाः मार्गः प्रचरसञ्चरौ ।

सप्त मार्गौ । वर्तन्ते प्रतिपद्यन्ते जना येन तत् चर्म । नान्तम् । “सर्वधातुभ्यो मन्” । गच्छति
अतति चलति अनेन नान्तोऽध्वा^७ । सरत्यनया सरणिः । दन्ततालव्यः । सृतिश्चास्त्रियाम् । द्वौ ।
१० पतन्ति गच्छन्ति अनेन पन्थाः^८ । नान्तः । इदन्तोऽपि । पथिः । पथः । पथानः । पन्थ इत्यपि । एते पुंसि ।
मार्जनं मार्गयन्त्यनेन वा मार्गः^९ । पुंसि । प्रकर्षेण चरत्यनेनेति प्रचरः । सञ्चरत्यनेनेति सञ्चरः ।
पदतिः । एकपदी । वर्तनी । अयनम् । पदवी । पथा । निगमः ।

त्रिमार्गनामगा गङ्गा

मार्गपूर्वं त्रिशब्दे प्रयुज्यमाने गङ्गानामानि भवन्ति । त्रिवर्मा । त्र्यध्वा । त्रिसरणिः । त्रिपथा ।
१५ त्रिप्रचरा । त्रिसञ्चरा ।

घोषो गोमण्डलं व्रजः ॥१६२॥

त्रयो गवां स्थाने । घोषन्ते^{१०} गावोऽत्र घोषः । गवां मण्डलम् गोमण्डलम् । गावो ।
व्रजन्त्यत्र व्रजः । गोकुलम् । गोष्ठम् ।

शृङ्गो दृतिहरिर्नाथहरिस्तिर्यक्च शृङ्गिणः ।

२० पञ्च महिषादिके । परं शृणाति हिनस्तीति शृङ्गः^{११} (म्) । त्रिषु । हृज् । हरणे । हृ दृति-
पूर्वः । दृतिं चर्मप्रसेवकं जलभाण्डं हरति वहति दृतिहरिः । “हरतेर्दृतिनाथयोः^{१२} पशौ” इत्ययः ।
नामन्त्यगुणः । नाथं स्वामिनं हरतीति^{१३} नाथहरिः । “हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ” । तिरौऽञ्चयतीति

१. संहियते इति विग्रहो न युक्तः । सम्पूर्वस्य हाकत्त्यागार्थकत्वात्प्रस्तुतायांप्रतीतिः ।
अतः सन्धीयते स्म संहितम् । सम्पूर्वाद्धाजः कप्रत्यये धाजो हिरिति ह्यादेशः । २. ६।१।१४४
का० सू० । ३. युज्यते स्म युक्तम् । ४. का० सू० ४।६।४९ । ५. का० सू० ४।६।५६ । ६. का० उ०
सू० ४।२८ । ७. अतति सन्ततं गच्छति जनोऽत्र अध्वा । “अत सातत्यगमने” । “वनिस्तस्य
घः” का० उ० सू० ६।५९ । इति वनिप्रत्ययः, तकारस्य धकारश्च । “अत्ति बलं पथिकानाम् । अतेर्ध-
श्चेति कनिष् धश्चान्तादेशः ।” इति रामाश्रमः । ८. “पल् पतने” । पतेत्यश्चेतीति थोऽन्तादेशश्चेति
ग्रन्याशयः । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथिमथिम्यामिनिः । इति
रामाश्रमः । ९. मृज्यते वितृणीक्रियते पादैः । मृजू शुद्धौ । वज् । वृद्धिः । कुत्वं च । मार्ग्यते
इति वा । “मार्गं अन्वेपणे” । १०. वासन्ते शब्दायन्ते इत्यर्थः “वासु शब्दे” । ११. “शृङ्गभृङ्गाङ्गानि”
का० उ० सू० १।४।४८ । “शृ हिंसायाम्” । शृङ्गप्रत्यये निपातः । शृङ्गं गवादीनां विपाणमिति तत्रैव
दुर्गः । ततः शृङ्गमस्यास्तीति अर्थ आदिभ्योऽच् । एवं सति महिषादिसंज्ञा संगच्छते । अत्रभावे विपाण-
मेवार्थः स्यात् । १२. का० सू० ४।३।२६ । १३. नाथं नासारज्जुं हरतीत्यन्यत्र ।

तयञ्चः^१ । शृणातीति शृङ्गम् । “शृङ्गभृङ्गाङ्गानि” एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शृङ्गानि विद्यन्ते येषां ते शृङ्गिणः ।

गौश्चतुष्पात्पशुः

त्रयो^२ गवि । पूजां गच्छतीति गौः । चत्वारः पादा यस्यासौ चतुष्पात् । स्पश इति सौत्रो धातुः । स्पशते [बाधते] इति पशुः । ^३अपष्टादयः—“अण्डुदुष्टुमुष्टुहरिद्रुमितद्रुशतद्रुशंकुषनुम- ५
युपशुदेवयुजटायुकुमारयुमृगयवः” एते शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

तत्र महिषी नाम देहिका ॥१६३॥

द्वौ महिष्याम् । तत्र तस्मिन् मह्यतेः^४ महिषः । नदादित्वादीः । महिषी । दिह्यते उपचीयते दुग्धेन देहिका^५ ।

कृती नदीष्णो निष्णातः कुशली निपुणः पटुः ।

१०

क्षुण्णः प्रवीणः प्रगल्भः कोविदश्च विशारदः ॥१६४॥

एकादश कुशले । प्रशस्तं कृतं कर्मास्य कृती । नद्यां स्नातीति नदीष्णः । “निनदीभ्यो^६ स्नातेः कौशले” इति षत्वम् । नितरां संस्नाति स्म शुचित्वमाप्नोति स्म निष्णातः । कुत्सितं श्यति कुशलः । अथवा कुशान् लाति कुशलः । निपुणतीति निपुणः । शोभनकर्मत्वात् । पटति जानातीति पटुः । क्षुण्ति स्म क्षुरणः । क्षुदिर् सम्पेषणे । प्रकृष्टा वीणास्य प्रवीणः इति मुख्यार्थं परित्यज्य १५
निपुणे रूढा । तदाहुः—

“निरूढा लक्षणा कैश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत् ।

क्रियतेऽद्यतनैः कैश्चित्कैश्चिन्नैव त्वशक्तिः ॥”

प्रगल्भते प्रगल्भः । गल्भ धाष्ट्ये^७ । को वेत्ति तदभिप्रायमिति निरुक्त्या कवते कोविदः^८ । विशेषेण पापं शृणाति विशारदः^९ । क्षेत्रज्ञः । कृतहस्तः । कृतमुखः । कृतकर्मा । दक्षः । शिक्षितः । २०

विदग्धश्चतुरः

द्वौ चतुरे । विदह्यते^{१०} त्रिदग्धः । पुरुषार्थान् चतते याचते चतुरः ।

धूर्तश्चाटुकृत् कितवः शठः ।

१. “तिर्यञ्च” इत्यकारान्तपाठश्चिन्त्यः । वप्रत्ययान्तेऽञ्चतायेव “तिरसस्तिर्यलोपे” इति त्रिप्रादेश इति चकारान्तस्यैव युक्तत्वम् । चकारान्तत्वे चाष्टाक्षरपादे एकाक्षरोनत्वेन मूले ह्रस्वोभङ्गश्च । न च चकारान्तस्तिर्यञ्चशब्दः केनाऽप्यन्यकोषकारेण पश्वर्थेऽभिमतः । तदुक्तम्—“पशुस्तिर्यञ्चरिः” प्र० चि० ४।२८१ । २ सामान्यविशेषार्थत्वाद्देशां पर्यायत्वाभावात्त्रयो गवीति पाठश्चिन्त्यः । गोशब्दः पशुविशेषे वलीवर्दादौ । चतुष्पात्पशुशब्दयोः सर्वपशुवाचकत्वात्परायत्वमिति विवेकः । ३. पा० ३० सू० १।१५ । ४. “महिष् नृद्धौ” । मह्यते वर्धते वा विशालकायत्वात् । ग्रौणादिकश्चिन् । ज्ञानमहा-
स्थानित्यत्वात् नुम् । इत्यन्यत्र । ५. नात्र कोषान्तरसंवादः । ६. पा० सू० ८।३।८६ । ७. अन्य पूर्वा-
ध्वन्यालोकलोचने १६ कारिकाटीकायामेवमुपलभ्यते “निरूढालक्षणाः कारिचत्सामर्थ्यादभिधानवत्” इति ।
उत्तरार्धस्तु न समुपगतः । ८. कौत्ति प्रतिपादयति धर्मादि कोविदः । कुपतोर्विन् । वेत्ति विदः । कव-
धेति कः । कोविदः । अथवा कवि वेदे विदा यस्येति रामायणः । ९. विशेषेण पापं शृणाति विशारदः इति हेमचन्द्रः । विशिष्टो विपरीतो वा शारदः इति रामाय० । १०. विशेषेण
मैर्लक्षितं दहति स्म विदग्धः ।

चत्वारो धूर्तः । धूर्तति स्म हिनस्ति स्म सदाचारं धूर्तः । चाटुं करोतीति चाटुकृत् । कितवोऽस्त्यस्येति कितवः । शठयतीति शठः । दाण्डाजिनकः । कुहकः । कर्पटिकः । जालिकः । कौस्तिकः^१ । व्यञ्जकः । मायावी । मायी ।

कापि नागरिको ज्ञेयः

५ कापि कुत्रापि ज्ञेयः ज्ञातव्यः । नगरे भवो नागरिकः^२ ।

गोत्रसंज्ञाङ्कनाम तत् ॥१६५॥

चत्वारो नाग्नि । गवा वाण्या स्वाचारेण त्रायते रज्जति पालयति गोत्रम्^३ । संज्ञानं संज्ञा^४ । अङ्क च नाम च समाहारत्वादेकवचनम् । अङ्कयते लक्ष्यते अङ्कम्^५ । नमनम् नाम^६ ।

गुग्धो मूढो जडो नेडो सूको मूर्खश्च कद्वदः ।

१० सत मूर्खः । धर्मकार्येषु मुह्यति संशयं प्राप्नोतीति मुग्धः । मुह वैचित्ये । मुह्यति स्म मूढः । गत्यर्थेत्यादिना क्तः । हो दः^७ । । ‘तवर्गः’ । डे हो लोपः^८ । सिः । रेफः । जडति न पुण्यं गच्छति^९ । जडः । जालमश्च । न ईड्यते न स्तूयते केनापि^{१०} नेडः । मूङ् वन्वने । मूयते मूकः ।^{११} मूकादयः—‘मूकयूक-अर्भकपृथुकवृकसुकभूकाः’ एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । मुह वैचित्ये । मुह्यति कार्येषु मूर्खः । ‘मुहे-^{१३} मूर्च’ । कुत्तितं वदति कद्वदः । विधेयः । वालिशः । वाडिशः । बालः ।^{१४} वद्धरः । सलिः^{१५} ।
१५ ^{१६} नालीकः । पशुः ।

स देवानां प्रियोऽप्राज्ञो मन्दः

त्रयो मन्दः । देवानां प्रियः^{१७} । ग्रथि (न्थि)ल इत्यर्थः । न प्राज्ञः अप्राज्ञः । कार्येषु मन्दते स्वपितीवेति मन्दः ।

१. कुसुत्या चरतीति कौस्तिकः । तेन चरतीति ठक् । २. धूर्तसामान्यार्थ इत्यर्थः । ३. वचसा आचारेण च स्वस्य रूपं रक्ष्यते । नामाऽपि स्वानुरूपवाचवचोभ्यामात्मानं प्रतिष्ठापयति । रामाश्रमस्तुदगूयते शब्दयते उच्चार्यते इति व्युत्पत्तिमाह । “गुङ् शब्दे” । ४. तदुक्तम्—“संज्ञा त्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थसूचना” इति । अम० को ३।३।३३ । ५. अङ्कयतेऽनेनेति शेषः । नाग्ना जनोऽङ्कितो भवति । ६. नमनं नामेत्यसङ्गतम् । भावे घञि प्रणामाथक दन्त्यनामशब्दसाधुत्वापत्तेः । अतः “म्ना अस्यासे” म्नायते उच्यतेऽभिधीयतेऽर्थोऽनेनेति विग्रहो न्याय्यः । नामन् सीमन् इति निपातितः । ७. अत्र “मुहादीनां वा” का० सू० २।३।४६ । इति तकारस्य धकारः । ८. “तवर्गस्य पटवर्गाद्वर्गः” का० सू० ३।८।५ । इति घस्य दः । ९. “डे दलोपोदीर्घश्चोपधायाः” । का० सू० ३।८।६ । इति दलोपो दीर्घश्च । १०. जलति तीव्रो न भवति । डलयोरैक्ये जड इति हेमचन्द्रः । ११. नेडशब्दः कोपान्तरे नोपलभ्यते । एडमूकशब्दोऽवडमूकशब्दो वा वाक्स्तुतिवर्जितार्थे लभ्यते । तदुक्तम्—“एडमूकस्तु वक्तुं श्रोतुमशिक्षिते” इति । अम० को० ३।१।३८ । “एडमूकौ त्वावाक्श्रुतौ” अभि० चि० ३।१२ । अतोऽत्रापि अनेडमूक इति पाठः सम्भाव्यते । जडविशेषवाचकत्वेऽपि तस्य सामान्याभिप्रायेण जडे प्रयोगः अनेडशब्दो वा वधिरार्थः सामान्याभिप्रायेण प्रयोगः । १२. का० उ० सू० २।५८ । १३. का० उ० सू० ४।१७ । १४. नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम् । १५. अत्रापि नान्यत्प्रमाणम् । १६. अत्राऽनेकार्थसङ्ग्रहः ३।५४ । प्रमाणम् । तदुक्तम्—नालीकोऽङ्गे शरे सन्धे नालीकं पञ्चनन्दने” इति । १७. “देवानां प्रिय इति च मूर्खे” वा० ३।३।२१ । “पठ्या अलुक्” इति पा० सूत्रे ।

धीनामवर्जितः ॥ १६६ ॥

धीवर्जितः । बुद्धिवर्जितः । प्रतिभावर्जितः । प्रज्ञावर्जितः । मनीषावर्जितः । धिषण्यावर्जितः । मतिवर्जितः । संख्यावर्जितः । इत्यादीनि मूर्खनामानि भवन्ति ।

षाष्टिकः कलमः शालिर्ब्रीहिः स्तम्बकरिस्तथा ।

चत्वारः शालिभेदे । षष्टिरात्रेण पच्यन्ते पाष्टिकाः^१ । षष्टिदिवसैस्त्वन्ना इत्यर्थः । ५
कलयति पुष्टिमानेन कलमः । शालते धान्येषु शालिः । अथवा सहालिना भ्रमरेण युतः शालिः । बर्हति
वर्धते ब्रीहिः ।^२ स्तम्बकरिः ।

वत्सः शकृत्करिर्जातः षोडन् षड्दशनः स्मृतः ॥ १६७ ॥

चत्वारो वत्से । मातरमभीक्ष्णं वदति वत्सः । शकृत् करोतीति शकृत्करिः । (इः) । “स्तम्ब-
३ शकृतोरिति” ब्रीहिवत्सयोरुपसंख्यानान्दिन् । षड्, दन्ता यस्य स षोडन् । “समाप्ते दन्तदशधासु १०
षष उत्वं दधोर्द्धौ” षड् दशनाः यस्य स षड्दशनः ।

शौण्डीरो गर्वितः स्तब्धो मानी चाहंयुरुद्धतः ।

उद्ग्रीव उद्धरो दृप्तः

नव गर्विते । शौण्डीतीति शौण्डीरः । “कृशशौण्डभ्य ईरः” । गर्वोऽहंकारः संजातोऽस्य
गर्वितः । तारकितादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । स्तम्भ्यते स्म स्तब्धः । मानः पूजादिलक्षणो गर्वो विद्यते १५
अस्य मानी । अहम् अहंकारोऽस्त्यस्य अहंयुः । “ऊर्णाऽहंशुभंभ्यो युः”^४ । उद्धन्यते रूपेण उद्धतः^५ । उद्
ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य स उद्ग्रीवः । उद्धरति गर्वेणान्यम् उद्धरः । दृप्तते दृप्तः ।

नीचश्च पिशुनोऽधमः ॥ १६८ ॥

त्रयो दुर्जने । नितरां पापं चिंनोति नीचः^१ । मैत्री पिशति मैत्रौ पेशयति वा पिशुनः^२ । तालव्यः ।
पिनष्टि वा पिशुनः । “पिशुनकाल्युनौ” नञ्पूर्वो धाञ् । न दधातीत्यधमः । “धर्मसीमाग्रीष्मा- २०
धमाः” । दुर्जनः । क्षुद्रः । कर्णजपः । दोषग्राही । द्विजिह्वः ।

चौरैकागारिकस्तेनास्तस्करः प्रतिरोधकः ।

निशाचरो गूढनरो हेरिकः प्रणिधिश्च सः ॥ १६९ ॥

^१ नव चौरैः । चोरयतीति चोरः । स्वार्थे ऽणि चौरश्च । एकागारं प्रयोजनमस्त्येकैकागारिकः ।

१. “षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते” पा० ५।१।९० । इति कन् प्रत्ययो रात्रशब्दलोपश्च ।
२. स्तम्बं करोतीति, स्तम्बकरिः । “इः स्तम्बशकृतोः” । का० सू० ४।३।२५ । इति कृञ् इत्यस्यः । ३.
का० सू० ४।३।२५ । ४. का० उ० सू० ३।४।८ । ५. “ऊर्णाऽहंशुभंभ्यो युः” इति १० सू० ७।२।१० । ६.
उत्कण्ठं हन्ति गच्छति हिनस्ति वा० उद्धतः इति हेमचन्द्रः । ७. हृस्वार्थे ऽप्यं शब्दो गतः । तत्र न्यस्यतेति
विग्रह उक्तः । अत्र पिशुनार्थानुरोधेन विग्रहभेदः । निपूर्वकाच्चिनोतेर्बाह्यलकाराद् । उत्कर्षार्थेऽपि ।
अन्यत्र तु निकृष्टमञ्जतीति विग्रहः । ८. पिशत्येकदेशेन सूचयति “क्षुपिगिनिमिधिन्यः पिश्व” उ० सू०
३।५।५ । इत्युनन् । पिशुनयति अपिशुनति वा । “क्षपिष्यति न्यउपतीति भोजः” इति हेमचन्द्रः ।
९. का० उ० सू० २।६।१ । १०. का० उ० सू० १।५।६ । ११. चौरादयो निशाचराणां यद् चौरैः । एत-
रादयः प्रणिधन्तास्त्रयो गुप्तचरैः । इति पाठ उचितः । तदुक्तम्—“हेरिको गूढपुरः । प्रणिधिः—
अभि० चि० ३।३।६७ ।

स्तेनयति स्थायति वा स्तेनः^१ । उभयम् । तस्यति परद्रव्यं क्षयं नयति तत्स्करः । “तसेः^२ करः” ।
अथवा कुञ्ज् तत्पूर्वः । तत्करोतीति तत्स्करः^३ । तदाद्यङ् । नाम्यन्तगुणः । रुद्धित्वात्तस्य सकारः । प्रतिरुणद्धि
मार्गः प्रतिरोधकः । निशां चरतीति निशाचरः । गूढश्चायं नरः गूढनरः । हिनोति परराष्ट्रं गच्छति
हेरिकः । प्रकर्षेण नितरां गुप्तो धीयते धियते वा प्रणिधिः । दस्युः^४ । परास्कन्दी । मलिम्लुचः ।
५ मोषकः । प्रतिमोषकः ।

प्रस्तरोपलपापाणद्वपद्वातुः शिला धनः ।

प्रस्तृणात्याच्छादयति “प्रस्तरः । काठिन्यमुपलति “उपलम् । उभयम् । पिनष्टि सर्वं
“पापाणः । पापानश्च । दृणाति चूर्णयति द्रियते आद्रियते वा कार्यायं दृपत्^५ । स्त्रियाम् । दधाति “धातुः ।
शिनोति तनूकरोति “शिला । शिली च^१ । स्त्रियाम् । हन्यते “घनः । अशमन् । ग्रावन् । पुलकश्च^{१३} ।

१०

तत्र जातमयो लोहम्

द्वौ लोहे । तत्र तस्मिन् पाषाणे जातम् उद्भवम् तत्रजातम् । प्रस्तरोद्भवः । उपलोद्भवः ।
धातुद्भवः । दृषदुद्भवः । शिलोद्भवः । घनोद्भवः । इत्यादि लोहनामानि भवन्ति । अयते सर्वविकारं
सान्तम् अयः । लुनाति सर्वं लोहम् ।

शातकुम्भं नयेत्परम् ॥ १७० ॥

१५

तत्र पाषाणे उद्भवानि सुवर्णनामानि भवन्ति ।

क्षामं शान्तं कृशं क्षीणं हीनं जीर्णं च वैरिणाम् ।

शीर्णविसानं दूनं च

नव कृशे । क्षायति स्म क्षामम् । शाम्यति स्मशान्तम् । कृशम् । क्षीणम् । हीनम् ।

१. “स्तेन चौर्वे” । चुरादिः । पचायच् । २. का० उ० सू० ६।३ । ३. “तदाद्याद्यन्तानन्त-
कारवहुवाहर्दिवाविभानिशाप्रभाभाश्चित्रकतृ नान्दीकिलिपिलिविलिभक्तिक्षेत्रजङ्घाधन्वरुःसङ्ख्यासु च”
का० सू० ४।३।२३ । इति कुञ्जप्रत्ययः । ४. दस्युप्रभृतयः प्रतिमोपकान्ताश्चौरपर्याया न तु
गुप्तचरपर्यायाः । गुप्तचरपर्यायास्तु-यथार्हवर्णः । अपसर्पः । मन्त्रविद् । चरः । वार्तायनः । स्पशः ।
चारः । ५. “स्तृञ् आच्छादने” । पचायच् । ६. अथवा पलतोति पलः । ओः शम्भोः पलो वोपलः ।
७. “पिण्लु सञ्चूर्णने” । बाहुलकादानच् । पृषोदरादित्वादिकारस्याकारः । “पष वाधे ग्रन्थे च” ।
हलश्चेति घञ् । पपत्यनेनेति । अणतीत्यणः । “अण शब्दे” । अच् । पापश्चासावणश्चेति विग्रहोऽय-
न्यत्र द्रष्टव्यः । ८. “दृणातेः पुग् ह्रस्वश्चे” ति साधुः । ९. “धातुस्तु गैरिकम्” अभि० चि० । “धातुर्मनः-
शिलाद्यद्रेगैरिकन्तु विशेषतः” अम० को० । इत्यादिकोपप्रमाणतः सामान्यप्रस्तरपर्यायेऽस्य पाठोऽयुक्तः ।
१०. शिनोतीति तालव्यशिधातुर्न कचिदुपलभ्यते । “शो तनूकरणे” । तस्य श्यतीति रूपम् । तनूकरो-
तीत्यर्थः । ततः शिलेति निपातो बाहुलकादौणादिकार्येण समायाति । रामाश्रमादिव्युत्तिकारैस्तु “शिल
उच्छे” शिलतीति शिला । इगुपधेति कः इत्युक्तम् । तत्रान्तरतम्यं सुधीभिर्विचारणीयम् । ११. उदुम्बरश्चाथ
शिली शिला चापि शिलिः स्मृतः” इति कल्पद्रुकोपवाक्यमत्रोपोद्बलकम् । १२. “मूर्तौ धनिश्च” का० सू०
४।५।५० । हन्तेरत्र घनादेशश्च । १३. तदुक्तम्-“पुलकः कृमिभेदे स्यान्मणिकोपे शिलान्तरे । गजान्नपिण्डे
रोमाञ्चे गत्वर्कहरितालयोः ।” वि० को० का० व० ११६ ।

जीर्यते स्म जीर्यम् । शीर्यते स्म शीर्यम् । अवस्यते अवसानम्^१ । दूयते स्म दूनं च । हे राजेन्द्र, तव वैरिणां शत्रूणां भवतु इति प्रयोजनीयम् ।

धैर्यं शौर्यं च पौरुषे ॥१७१॥

त्रयः^२ पौरुषे । धीरस्य भावो धैर्यम् । शूरस्य भावः शौर्यम् । पुरुषस्य भावः पौरुषम् । युष्माकं भवतु इत्यध्याहार्यम् ।

५

क्षिप्राशुमङ्क्ष्वरं शीघ्रं सहसा झटिति द्रुतम् ।

तूर्णं जवः स्यदो रंहो रयो वेगस्तरो लघुः ॥१७२॥

षोडश^३ वेगे । क्षिपति^४ निरस्यति क्षिप्रम् । रक्प्रत्यय उणादौ ज्ञातव्यः । अश्नुते आशु । कृषापाजीति उण् । मज्जति महति वा मङ्क्षुः^५ । इयति मान्तमव्ययम् अरम् । अदन्तं च अरम् । शेते कार्ये शीघ्र(शिङ्घ) ति व्याप्नोति वा शीघ्रम् । सहते सहसा^६ । अव्ययम् । झटति संघातीभवति इदन्तमव्ययम् । झटिति^७ । द्रवति स्म द्रुतम् । त्वरते स्म तूर्णम् । जवनं जवः । जु गतां । त्यन्दते स्यदोः । “स्यदो जवः” इति साधुः । रंहयत्यनेन रंहः । रयते रीणाति वाऽनेन रयः । वीय (विज्य) ते वेगः । तरत्यनेन तरः । “^८सर्वधातुभ्योऽसुन्” । लङ्घते भूमि लघुः । संवेगः । गतिवचनो जवो धर्म-वचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदः ।

१०

सदागतिप्रस्तावादाह—

१५

साधीयोऽत्यर्थमत्यन्तं नितान्तं सुष्टु वै भृशम् ।

सत भृशे । साधुभ्यो हितः साधोयः^{११} । ईयतुः । अतिक्रान्तोऽर्थं वेलां मात्राम् अन्तं च अत्यर्थम् । अत्यन्तम् । अतिवेलम् । अतिमात्रं च । निताम्यति स्म नितान्तम् । सुष्टौति सुष्टु ।

१. अत्रावसानभिन्ना अण्टावपि शब्दा विशेष्यनिध्नास्तेन कुटुम्बमिति विशेषमध्याहार्यं हे राजेन्द्र तव वैरिणां कुटुम्बं क्षामं भवतु । एवं शान्तं कृशमित्याद्यपि योज्यम् । अवसानशब्दस्य भावत्यु-डन्तत्वात् तव वैरिणामवसानं नाशो भवतिविति विवेकः । अवस्यतेऽवसानमिति टीकोक्तविग्रहस्तत्सङ्गतः । अवपूर्वस्य “षोऽन्त कर्मणि” इत्यस्य भावलटि अवसीयते इति रूपम्, नत्ववस्यते इति । कर्त्तरि लटि विधादौ अवस्यतीति परस्मैपदमेव । नापि कर्तृकान्तोऽवसानशब्दः । क्तप्रत्यये “अवसित” इति रूपस्यैव सर्वसम्मत-त्वात् । तस्मादवसायतेऽवसायो वा अवसानमिति विग्रहो युक्तः । २. कोपान्तरप्रमाणतो मयवहागान धैर्यादिशब्दानां परस्परकर्मभेदात्पर्यायानर्हत्वेऽपि बलसामान्यविवक्षया त्रयः पौरुषे इत्युक्तम् । ३. गतिव-चनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदस्य वक्ष्यमाणत्वात् क्षिप्रादवरक्षणात्ता नत क्षिप्रार्थे, जवादयो लप्पन्तास्स वेगार्थे इति सुवचम् । “द्राक् क्षणेऽलाप झटिति” एतत्संवाहस्य शीघ्रार्थतया पाठे कर्तव्येऽपि पृथगस्य पाठो झटितिशब्दपुनरुक्तिश्च दोषः । ४. क्षिपति विलम्बमिति शेषः । ५. “दृ मरतो शुद्धौ” । बाहुलकात्सुः । मङ्गिनशोरिति नुम् । स्कोरिति सलोपः । मज्जति कालाल्पत्वे मङ्क्षुः । ६. “पद मर्षणे । असा प्रत्ययः यद्वा सहस्यति । “षोऽन्तकर्मणि” । आप्रत्ययो जित् । विभक्त्यन्तप्रतिपत्त्यावा-रान्तमव्ययम् । उदाहरणम्—“सहसा विदधीत न क्षियामित्यादि” । ७. “झट लङ्घते” । कौट्यादिन इतिः । ८. का० सू० ४।१।३५। त्यन्देर्धञि नलोपो दीर्घाभावश्च । त्यन्दं त्यद इति भावजितो न्यायः । ९. “ओ विजो भयचलनयोः” । १०. का० उ० सू० ४।५६ । ११. अतिद्वयेन साष्टु पाठे वा साधीय इति । साधुभ्यो हित इति टीकोक्तविग्रहस्तु न क्लृप्स्यते । कतिरुपार्थे ईयतो विभत्वात् । साधीय इति मूलोक्तपदस्य लोकेन रित इति पुंविग्रहोऽपि तथैव ।

^१अपट्टादयः—अपट्ट दुष्टं सुष्टं हरिष्टं मिष्टं शतष्टं शङ्खं धनु इत्यादयः । वै अव्ययम् । विभर्ति भृशम्^२ ।

स्फुटं साधु खलु स्पष्टं विशदं पुष्कलामलौ ॥१७३॥

सत निर्मले । स्फुरत्यभिप्रायोऽस्मात् ^३स्फुटम् । साध्यतीति साधु । खलतीति खलु^४ ।
स्वस्थते स्म स्पष्टम् । विशति चित्ते विशदम् । पुष्णातीति पुष्कलम् । न मलमस्मिन् अमलम् ।

५ प्रकाशम् । प्रकटम् ।

चित्राश्चर्याद्भुतं चोद्यं विस्मयः कौतुकोऽप्यहो ।

पट् कौतुके । चित्रं चयने । चिनोतीति चित्रम्^१ । आचरतीत्याश्चर्यम्^२ । पारस्करादि-
त्वात्सुट् । भू सत्तायाम् । अद् पूर्वः । अद् विस्मितो भवत्यत्र अद्भुतः । “अदि भुवो हुतः^३” । चोद्यते इति
चोद्यम्^४ । विस्मीयते इति विस्मयः । कुतुकस्य भावः कौतुकम् । अहो लोका आश्चर्यम् इति

१० प्रयोजनीयम् ।

अभियोगोद्यमोद्योगा उत्साहो विक्रमो मतः ॥१७४॥

पञ्चोद्यमे । अभियोजनम् अभियोगः । यमु उपरमे । यम् उद्पूर्वः । “बुरादेश्च^१”—इत् ।
“अत्योप^२”^३—दीर्घः । उद्यामि इति जातम् । “मानुक्नवानां^४” ह्रस्वः । उद्यमि जातम् । उद्यमनमुद्यमः ।
भावे वञ् । “कारितस्य^५”^६ । उद्योजनम् उद्योगः । उत्सहनमुत्साहः । विक्रमणं विक्रमः ।

५१

रहोऽनुरहसोपांशु रहस्यं च भिनत्ति कः ।

चत्वार एकान्ते । रहति त्यजति जनः सङ्गं यत्र सान्तं रहः । क्लीबे । अव्ययं च । अनुगतं
रहः अनुरहसम् । “^१अन्ववपन्तेभ्यो रहस्” । उपांशुते अव्ययमुदन्तम् उपांशुः । रहसि भवं रहस्यम् ।
कः पुमान् भिनत्ति विदारयति । प्रच्छन्नम् । एकान्तम् । निःशलाकम् । उपह्वरम् । विजनम् ।
विविक्तम् । जनान्तिकम् ।

२०

कीनाशः कृपणो लुब्धो गृध्रुर्दानोऽभिलाषुकः ॥ १७५ ॥

पट् कृपणे । लोमेन क्लिश्यति बाध्यते ^१कीनाशः । कीं वाणीं वाचकानां नाशयति विनाशय-
तीति कीनाशः । कल्पते रक्षितुं न तु दातुं कृपणः । लुभ्यति स्म लुब्धः । गृध्नाति गृध्नः । गृध्नुरित्यपि
त्यत् । लोमेन द्योतते शोभते (दीयते क्षयति) दीनः । दीङ् क्षये । कश्चित् हानः इति पठन्ति । लप
कान्तौ । अभिपूर्वः । अभिलषतात्येवंशालः अभिलाषुकः । “शुकमगमहनवृषभूस्थालसपतपदामुकङ्^२” ।

१. का० उ० सू० १।१५ । इति कुप्रत्ययः । २. भृशताः शप्रत्ययः क्तिदित्यर्थः । भृश्यतीति
भृशं वा । “भृशु भ्रंशु अवःपतने” । दिवादिः । इगुपवेति कः । भृशिरत्रान्तर्भावितण्यर्थः । ३. स्फुटतीति
कट् विग्रहो न्याय्यः, नत्वपादानकः तत्र घञि स्फोट इत्यापत्तेः । अत्रेगुपवेति कः । ४. “खल सङ्घर्षे” ।
बाहुलकादुः । खलुशब्दो नानार्थः । तदुक्तम्—“निषेधवाक्याऽलङ्कारे जिज्ञासाऽनुनये खलु” । अम० को०
३।३।२२५ । ५. “चित्र चित्रोकरणे” । चित्रयतीति चित्रम् । पचाद्यच् । इत्यन्यत्र । ६. आ इति
चर्यतेऽभिनीयते इति विग्रहोऽन्यत्र । “आश्चर्यमनित्ये” इति सुट् । ७. का० उ० सू० ४।२५ । ८. चोद्यशब्द
आश्चर्यार्थः । तदुक्तम्—“चोद्यन्तु प्रेयं प्रश्नेऽद्भुतेपि च” अने० स० २।३६२ । ९. का० सू० ३।२।११ ।
१०. का० सू० ३।६।५ । ११. का० सू० ३।४।६५ । १२. का० सू० ३।६।४४ इतीनो लोपः । १३. का० सू०
३।४।४१ । अत्र रावादिवृत्तिः २९ । १४. “क्लिशु विवाधने” । “क्लिशोरीचोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम्
च” पा० उ० सू० ५।६६ । १५. का० सू० ४।४।३४ ।

कदर्यः । किम्पचानः । मितम्पचः । क्षुल्लः । क्षुल्लकः । क्लीवः । क्षुद्रः । वराकश्च ।

पाशनीतः सितो बद्धः सन्धानीतो नियन्त्रितः ।

नियामितः शृङ्खलितः पिनद्धः पाशितो रिपुः ॥ १७६ ॥

नव बद्धे । पाशं नीतः पाशनीतः । सीयते स्म सितः । बध्यते स्म चद्धः । सन्धां प्रतिज्ञां नीतः प्रापितः सन्धानीतः । नियन्त्रं संजातमस्य नियन्त्रितः । नियामो जातोऽस्य नियामितः । शृङ्खला ५ संजाताऽस्येति शृङ्खलितः । तारकितादिदर्शनादितच् । पिनह्यते स्म पिनद्धः । पाशः संजातोऽस्य पाशितः । कः रिपुः शत्रुः ।

कान्तं च कमनं कम्पं कमनीयं मनोहरम् ।

अभिरामं र(रा)मणीयं रम्यं सौम्यं च सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

दश वरिष्ठे (अतिसुन्दरे) । काम्यते कान्तम् । काम्यते कमनम् । काम्यते इत्येवंशीलं १० कम्पम् । काम्यते वाञ्छ्यते कमनीयम् । “^१तव्यानीयौ” । मनोहरति मनोहरम् । मनोहारी । मनोरमम् । अभिरमणम् अभिरामम् । रमणस्य (णाय) हितं रमणीयम्^२ । रम्यते रम्यम् । सोमस्य भावः सौम्यम्^३ । सुन्दः सौत्रोऽयं सुन्दति सुण्डु नन्दयति इति निरुक्त्या सुन्दरम्^४ ।

चारु श्लक्ष्णं च रुचिरं प्रशस्तं हृद्यबन्धुरम् ।

दर्शनीयं मनोज्ञं च

अष्टौ मनोज्ञे । चरन्ति नेत्राण्यत्र चारु । शिष्यते युज्यतेऽनेन श्लक्ष्णः^५ । रोचते सर्वेभ्यो रुचिरम् । प्रशस्यते स्म प्रशस्तम् । हृद्यस्य प्रियम् हृद्यम् । चित्तं बध्नाति बन्धुरम् । दृश्यते दर्शनीयम् । मनो जानातीति मनोज्ञम् ।

चित्तपर्यायहारि च ॥ १७८ ॥

चित्तहारि । मनोहारि । इत्यादीनि मनोहरनामानि शातव्यानि ।

अवश्यायं तुपारं च प्रालेयं तुहिनं हिमम् ।

नीहारम्

षड् हिमे । अवश्यायते अवश्यायः । “दिहिलिहिलिपिश्वस्तिव्यप्यतीर्णश्चाऽन्तां च” २० शप्रत्ययः । तुष्यन्त्यनेन तुपारः । प्रलयादागतं प्रालेयम्^१ । तोदयत्यर्दयति तुहिनम् । तुहिर् अर्धन । हिनोति वर्धते जलमनेन हिमम् । निहियते नीहारः । मिहिका । धूमिका । देश्वाम् ।

१. का० सू० ३।७।९ । २. रमणाय हितमिति विग्रहो युक्तः । तस्मै हितमिति चतुर्थ्यन्तात् ।

मूले छन्दोभङ्गदोषवारणाय रमणीयमेव रामणीयम् इति स्वार्थिकोऽणुपि कार्यः । ३. सोमस्य भाव इति विग्रहोऽयुक्तः । “प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारिभूतो भावः” इति सिद्धान्तात् सोमस्य इत्यस्य सोमवर्धित्व-
 र्थापत्तेः । अतः सोमो देवताऽस्येति व्युत्पत्तिः, “सोमादृद्यम्” । इति दृश्यम् । अथवा सोम एव सोमः । ततश्चतुर्वर्णादित्वात्पण्य इति रामाश्रमः । ४. सुण्डु द्रियते आद्रियते । दृष्टव्यम् । सुतोदयति वाञ्छम् । सुण्डु उन्नति आर्द्राकरोति चित्तं वा । सुपूर्वकात् “उन्दी क्लेशने” उन्दीकृतोर्वाङ्मूलत्वात् । उन्दीकृत-
 दित्वात्परस्परम् । इति रामाश्रमः । ५. नेत्रं मनो वेति शेषः । “दिल्लप कालिद्वेने” । “दिल्लपे मनोवर्धयति”
 उ० सू० ३।१९ । इति क्लृप्तः । उपधाया सकारश्च । ६. का० सू० ४।२ । ५८ । ७. प्रतीकस्य वदार्थः
 अत्रेति प्रलयो हिमाचलः । तस्मादागतं प्रालेयम् । अण् । चेत्यनित्यत्वात्प्राप्तं वाच्यम् । वा० सू०
 ७।३।२ । इति यादेरियादेशः ।

तत्करं विद्धि मृगाङ्कं रोहिणीपतिम् ॥ १७६ ॥

तस्य करस्तत्करस्तम् । हिमशब्दात्करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । अवश्यायकरः । तुषारकरः । प्रालेयकरः । तुहिनकरः । हिमकरः । नीहारकरः । मृगाङ्कः । रोहिणीपतिः । अष्टौ नामानि विद्धि जानीहि ।

५

पुन्नागं सन्नरं प्राहुः

द्वौ प्रधानपुरुषे । पुमाँश्चासौ नागः श्रेष्ठः पुन्नागः । संश्चासौ नरः सन्नरः । प्राहुः ब्रुवन्ति ।

तिलकं च विशेषकम् ।

ललाटिका ललामापि पूर्णवाहं तथा द्रुमम् ॥ १८० ॥

१० पट् तिलके । तिलकाकृतिः तिलकः । तिलतीति तिलकम् । विशिनष्टीति विशेषः । स्वार्थे कः । विशेषकः । लल्यते ललाटम् । के प्रत्यये ललाटिका । लल्यते ललामा । पूर्णं वाहयतीति पूर्णवाहः । द्रवति वृद्धि गच्छति द्रुमः । तमालपत्रम् । चित्रकम् ।

अञ्जनं कज्जलं नागं गजपाटलमारुणम् ।

१५ पट् कज्जले । अज्यतेऽनेनेत्यञ्जनम् । कपति नेत्रवैरूप्यं कज्जलम् । न शोभाम् अगति गच्छति नागम् । गजति शोभया माद्यति गजम् । पाटलाया इदम् पाटलम् । ऋच्छति गच्छति शोभाम् आरुणम्^३ ।

सालं परिधि वृक्षं च

त्रयः प्राकारे । सरति गच्छति कालान्तरं सालः । परिधीयते वेष्टयते अनेन परिधिः वृणोति नगरमाच्छादयति वृक्षम्^४ ।

कुल्यां स्त्रीं सारणीं विदुः ॥ १८१ ॥

२० त्रयः^५ पानीयनिर्गमनमार्गौ । कुले गृहे साधुः कुल्या । स्तृणाति वैरूप्यमाच्छिनत्ति स्त्री । सरत्यनया सारणी । तां विदुः कथयन्ति धनञ्जयकवयो भाष्यकर्तारोऽमरकीर्त्याचार्याश्च ।

चारोऽवसर्पः प्रणिधिर्निगूढपुरुषश्चरः ।

पञ्च^६ चारे । चरति शत्रुमण्डले चारः^७ । अवसर्पति अवसर्पः । -अवसर्पश्च । प्रकर्षेण

१. अत्र तिलकविशेषके टीकोक्तमालपत्रचित्रके च ललाटकृततिलकाऽलङ्करणे । तदुक्तम्—“तिलके तमालपत्रचित्रपुण्ड्रविशेषकाः” । अभि० चि० ३।३१७ । ललाटिका पत्रसमूहकृतललाटभूषणम् । तदुक्तम्—“पत्रपाश्या ललाटिका” अभि० चि० ३।३१९ । ललामा तु सीमन्ताग्रे मस्त्रमयीभिरिव धार्यमाणं रत्नादिकृतभूषणम् । तदुक्तम्—“पुरोन्यस्तं ललामकम्” अभि० चि० ३।३३६ । पूर्णवाहद्रुमयोस्तु कोषान्तरे पाठो नोपलब्धः । २. पट् कज्जले । इत्यविचारसहम् । अञ्जनकज्जलौ समानार्थौ । नागगजपाटलारुणा ओष्ठकपोलादिरञ्जललोहितरङ्गविशेषवाचकाः । तदुक्तम्—अनेकार्थसङ्ग्रहे—“नागो मतङ्गजे सर्वे पुन्नागे नागकेसरे” २।३४ । “पाटलन्तु कुसुमश्वेतरक्तयोः” ३।७०१ । “अरुणोऽनूरुसूर्ययोः । सन्ध्या रागे बुधे कुण्डे निःशब्दाऽव्यक्तरागयोः” ३।१९८ । ३. अरुणमेव आरुणम् । ४. वृक्षशब्दस्य सालार्थे कोषान्तरसंवादो नोपलब्धः । ५. अत्र द्वाविति वक्तव्यम् । स्त्रीशब्दोऽत्र कुल्यासारण्योः स्त्रीलिङ्गबोधकः; तत्पर्व्यायः । ६. पूर्वमुक्तेऽपि सिंहावलोकनन्यायेन चारेऽर्थेऽन्यानपि शब्दान् समुच्चिनोति । ७. चरति शत्रुमण्डले चरः, चरेरच् । ततः स्वार्थिकोऽण् । चर एव चारः ।

नितरां गुप्तो धीयते प्रणिधिः । निगूढश्चासौ पुरुषः निगूढपुरुषः । चरतीति चरः । स्पशः । १ यथार्थ-
वर्णः । मन्त्रशश्च ।

तद्वानुक्तः सहस्राक्षः

तस्मात् पूर्वोक्तशब्दात् परं वान् इति प्रयुज्यमाने सहस्राक्षनामानि भवन्ति । निगूढ-
पुरुषवान् । चरवान् इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

५

सत्यार्थं सूनृतं ऋतम् ॥१८२॥

सत्यार्थं द्वौ । सु सुष्टु ऋतं सत्यं सूनृतम् । पृषोदरादित्वान्नाडागमः । ऋच्छति गच्छति जनः
प्रत्ययमत्र ऋतम् । तथा चामरकोषे २—“सत्यं तथ्यमृतं सम्यक् ।”

निस्तलं वतुलं वृत्तम्

त्रयो वतुले । निर्गतं तलं प्रतिष्ठाऽस्य निस्तलम् । अथवा निर्गतं तलादधोभागान्निस्तलम् । १०
भूमौ न तिष्ठति वा । वर्तते भ्रमति वतुलम् । वृत्त्यते स्म वृत्तम् । सर्वे त्रिषु ।

स्थपुटं विपमोन्नतम् ।

विपमोन्नते स्थपुटम् । स्थापयत्यात्मनो विपमोन्नतत्वे स्थपुटम् । प्रायः क्लीवे ।

दीर्घं प्रांशु

द्वौ^३ दीर्घे । दृणाति दीर्घम्^४ । प्राश्नुते व्याप्नोतीति प्रांशु^५ ।

१५

विशालं च बहुलं पृथुलं पृथु ॥१८३॥

चत्वारो विस्तीर्णे । विस्तारं विशति विशालम् । बहून् लातीति बहुलम् । प्रयते वर्धते
पृथुलम् । गुणमात्रवृत्तेर्लः । पर्थते पृथुः । बृहत् । उरुः । गुरुः । विस्तीर्णः ।

उल्बणं दारुणं तिग्मं घोरं तीव्रोऽग्रमुत्कटम् ।

सप्त घोरे । उल्बणत्थुल्बणम्^६ । पृषोदरादित्वात्पक्षे लः । दारयति दारुणम् । तितिजतीति
तिग्मम्^७ । घुरति घोरम्^८ । तीवति तीव्रम् । तीव स्थौल्ये रक् । उच्यति उग्रम्^९ । उत्कटपते
उत्कटम् । प्रतिभयम् । भीमम् । भयानकम् । आभीलम् । भीषणम् । भीष्मम् । भैरवम् ।

२०

शीतलं तिमिरं याथं मन्दं विद्धि विलम्बितम् ॥ १८४ ॥

१. यथार्थं यथा अर्थः प्रयोजनं वर्णो जातिः प्रसिद्धिर्वा यस्येति तदर्थः । २. अम० दी०
१।७।२२। ३. वस्तुतस्तु प्रांशुदीर्घघोररथभेदः । दीर्घत्रिस्तृतायतशब्दाः पर्यायाः । प्रांशुस्तुल्यः । तस्तुल्यः-
‘दीर्घमायतम्’ । अम० की० ३।१।७० । ४. ‘दृ विदारणे’ । बाहुलकादयः । दृणाति हृन् दमिति दीर्घः ।
५. प्रकृष्टा अंशवोऽस्येत्यपि । ६. ‘विश प्रवेशने’ । बाहुलकादलः । रामाक्षमल-‘पेः शान्तत्वात्’
इति० पा० सूत्रेण विशब्दाच्छालप्रत्ययमाह । ७. उद्बल्यतीति उल्बणम् । पृषोदरादि-‘पृषोदरादि-
पाठोऽन युक्तः । “वण शब्दे” । सच् । उल्बणशब्दो वस्तुतः स्वार्थकः, न तु शस्त्रार्थकः । यतो
छुद्बलजको भवति खलानाम् । अत उद्बलकत्वसामान्यात्तथाह । ८. तितिजतीति तिमिरम् । अम० प्रत्ययः । ९. ‘उग्र भीमा
र्थशब्दयोः’ । घोरयतीति घोरम् । ण्यन्तादच् । १०. उच्यति बुधा सम्बन्धे उग्रम् । ‘उग्र सम्बन्धे’
दिवादिः । “ऋजेन्द्र” इत्यादिना रक् गक्षान्तादेशः ।

पञ्च कार्यविलम्बे (मित्रे) । शीतं लाति मन्दो भवति कार्ये शीतलम् । तास्यति स्वकार्य-
मिच्छति तिमिरम्^१ । स्तिमितं स्थितिं वा पाठः । यथा भवं याथम् । मन्द्यते मन्दम् । विलम्ब्यते
स्म विलम्बितम् । चिद्धि जानीहि ।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विश्वसो निजः ।

५ पञ्च स्वभावे निजे । स्वः स्वकीयो भावः स्वभावः । प्रकरणं प्रकृतिः । शील्यते शीलयति
वा शीलम् । निसृज्यते निसर्गः । विश्वसितिति विश्वसः^२ । विश्वासश्च । विश्रम्भः ।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे । युज्यते योग्या^३ । गुण्यतेऽहर्निशं गुणनिका^४ । अभ्यसनमभ्यासः ।

स्यादभीक्षणं मुहुर्महुः ॥ १८५ ॥

१० मुहुर्मुहुर्वारं वारं स्यात् भवेत् । अभीक्षणम् । अभीक्षणम् अभीक्षणम् । अभिमुखमीक्षते
वा अभीक्षणम्^५ । नितराम् ।

मृपालीकं मुधा मोघम्

चत्वारोऽलीके । मृण्यते सहते नारकं दुःखमनेन मृपा । आदन्तमव्ययम् । अलति स्वस्वाङ्गा-
(स्वर्गा)न्निवारयति अलीकम् । मुञ्चति त्यजति निमित्तं मुधा । आदन्तमव्ययम् । मुह्यतेऽत्र चित्तं मोघम् ।

विफलं वितथं वृथा ।

१५ निष्फलवच्चेन त्रयः । विगतं फलं विफलम् । विगतं तथा सत्यं यस्मात् वितथम् । वृणो-
त्याच्छादयति गुणान् वृथा । अव्ययम् ।

विधुरं व्यसनं कण्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत् ॥ १८६ ॥

२० पञ्च कण्टे । कण्टेन विधुनोति शरीरं विधुरम् । व्यस्यते अनेन व्यसनम् । कण्यते
(कपति) कण्टम् । कुणोति छिनत्ति दुःखेन कृच्छ्रम्^६ । ग्राह्यते गहनम् । उद्धरेत् निस्तरेत् ।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम् ।

पठ् समस्ते । समस्यते एकीकरोति समस्तम्^७ । समं ग्रसते समग्रम्^८ । समानं कलयतीति
^१ 'सकलम् । सरति सर्वम् । कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति कृत्स्नम् । विशति तिष्ठति सर्वत्र विश्वम् ।
नास्ति खिलं शून्यमस्याखिलम् । निखिलं च ।

१. 'तिमि आर्द्राभावे' । तिम्यति आर्द्राभवति तिमिरः । विलम्बशीलो जनः सर्वदाऽर्द्र इव
शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति' । २. विश्वसशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तरं नास्ति । एवं विश्वासो विश्रम्भोऽपि ।
विश्वसशब्दाऽन्वाख्यानमपि व्याकरणादस्पष्टम् । अतोऽत्र त्रिष्वपि मूलटीके एव प्रमाणम् । ३. योगे
चित्तैकाग्र्ये साध्वीति योग्या 'तत्र साधु' रिति यदन्यत्र । ४. गुण्यते गुणना । चुरादिणिजन्ताद् भावे
'ण्यासश्चन्येति युच् । ततः स्वार्थे कः । गुणनैव गुणनिका । ५. अभीक्ष्णौति अभीक्षणम् । 'क्ष्णु तेजने' ।
ब्राह्मलकाड्डमुः । अन्येषामपीति दीर्घः । इति रामाश्रमः । ६. अत्र मृपाऽलीकशब्दौ वक्ष्यमाणौ वितथ-
शब्दश्चासत्यवाचकः । मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वक्ष्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽ-
न्यत्र । तदुक्तममरे—'मृपा मिथ्या च वितथे' ३।४।१५ । 'अलीकं त्वप्रियेऽन्ये' ३।३।१२ । 'मोघं
निरर्थकम्' ३।१।८१ । व्यर्थके तु वृथा मुधा' ३।४।४ । 'वितथं त्वनृतं वचः' १।८।११ । इति ।
७. कर्पति कृन्तति वेति क्षी० स्वा० । ८. समस्यते स्म समस्तम् । 'अमु क्षेपणे' । कर्मणि कः ।
९. सङ्गतमग्रमस्य समग्रम् । १०. सह कलाभिर्वर्तते सकलम् ।

शकलं विकलं खण्डं शल्कं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे । शक्नोति काये शकलम् । शल्कं च । विगता कला यस्मात् तद् विकलम् ।
खण्ड्यते खण्डः । लिश्यते लेशः^१ । लिश विच्छ गतौ । “अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्”^२ । रौति शब्दं
करोति लवः । विदुः कथयन्ति । अर्धम् । नेमः । सामि । असम्पूर्णम् । दलं च ।

मर्म कोपं च

द्वौ मर्मणि । म्रियतेऽनेन मर्म । नान्तम् । कुप्यते कोपम्^४ ।

कलहं परिवादं छलं नयेत् ।

करेण हन्त्यत्र कलहः । परिवदनं परिवादः । छलयती (त्यत्रै)ति छलम् ।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं क्षतजासृजम् ॥ १८८ ॥

षड् रुधिरे । शोण्यते वर्ण्यते देहोऽनेन शोणितम् । तालव्यः । रोहति देहे जायते लोहितम् । १०
रजति रसं रक्तम् । रुणद्धि रुधिरम् । क्षताद् मृणाजायते क्षतजम् । अस्थ्यते क्षिप्यते अचक् ।

सन्ततानारताजस्रान्वहं कन्यापतिर्वरः ।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते । सन्तन्यते स्म सन्ततम् । न आरतम् अनारतम् । न जस्यतीत्येवंशील-
मजस्रम् । अन्वहम् । कन्यापतिर्वरः नन्दतु इति प्रयोजनीयम् ।

उद्वाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

चत्वारो विवाहे । उद्वाहनं उद्वाहः । परिणीयते परिणयनम् । विवाह्यते विवाहः ।
निवेश्यते निवेशनम् ।

शुपिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे । शुष्यति जलमत्र शुपिरम् । उपशुषीति रः । विम्रियते भूमध्यमनेन विवरम् ।
रणति वातेन रथ्यति हिनस्ति प्राणिनं वा रन्ध्रम् । छिद्यते तत् छिद्रम् । कुहरम् । विलम् । निर्व्य- २०
थनम् । रोकम् । श्वभ्रम् । वपा । शुपिः ।

गर्ता च गहरम् ।

गर्तायां द्वौ । पतितं प्राणिनं गिरति गर्ता । गर्तः । गूहतीति गहरम् ।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेधसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके । श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिर्धान्तं वा श्वभ्रम् । रसायां भयं २४
रस्यम् । पतन्त्यस्मिन् पातालम् । नराः कायन्त्यत्र नरकः । नारकः । पुंति । अमेधसः दुश्चिन्तिना

१. “लिश अप्पीभावे” । दिवादिः । ततो घञ्बिधानमर्थाद्भुक्तम् ॥ २. पा० २०
४।५।४ । ३. लूयते छिद्यते लवः । ऋदोरप् । टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनाप्यांनिषाद्यं । ४. कोपः
शब्दः पेशीवाचको मेदिन्यां लभ्यते । पेशीनां मर्मस्थानत्वमाहुर्वेदे सम्मतम् । छत्र उपलब्धत्वं कोपीति
मर्मैत्यभ्युन्नेयम् । तदुक्तम्—“कोपोऽस्त्री कुर्मले पात्रे दिव्ये मनुनिधाने । इति कोपेऽर्थात्पात्रे । कोपः
शब्दादिसङ्ग्रे” । पा०वर्गः ६ । ५. “तिमिरपिमदिमदिचन्द्रिविपरिचिह्नितः” पा० ३० । ६. १ ।
शुपिरस्यास्तीति विग्रहे तु “उपशुषिपुष्कमपो रः” पा० २० । ५।२।१०७ । इति रः । अन्वहस्ये अन्वहिरस्यम् ।
उपशुषीति पा० २० इति दन्त्य एव पाठः । श्रीरत्नायपि दन्त्यमेव वनाठः ।

पञ्च कार्यविलम्बे (मित्रे) । शीतं लाति मन्दो भवति कार्यं शीतलम् । ताग्यति स्वकार्यं मिच्छति तिमिरम्^१ । स्तिमितं स्थिमितं वा पाठः । यथा भवं याथम् । मन्द्यते मन्दम् । विलम्ब्यते स्म विलम्बितम् । विद्धि जानीहि ।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विश्वसो निजः ।

५ पञ्च स्वभावे निजे । स्वः स्वकीयो भावः स्वभावः । प्रकरणं प्रकृतिः । शील्यते शीलयति वा शीलम् । निख्यते निसर्गः । विश्वसितेति विश्वसः^२ । विश्वासश्च । विश्रम्भः ।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे । युज्यते योग्या^३ । गुण्यते ऽहर्निशं गुणनिका^४ । अभ्यासनमभ्यासः ।

स्यादभीक्षणं मुहुर्महुः ॥ १८५ ॥

१० मुहुर्मुहुर्वारं वारं स्यात् भवेत् । अभीक्षणम् । अभीक्षणम् अभीक्षणम् । अभिमुखमीकृते वा अभीक्षणम्^५ । नितराम् ।

मृपालीकं मुधा मोघम्

चत्वारोऽलीके । मृप्यते सहते नारकं दुःखमनेन मृपा । आदन्तमव्ययम् । अलति स्वस्वाङ्गा- (स्वर्गा)न्निवारयति अलीकम् । मुञ्चति त्यजति निमित्तं मुधा । आदन्तमव्ययम् । मुह्यतेऽत्र चित्तं मोघम् ।

विफलं वितथं वृथा ।

१५ निष्फलवचने त्रयः । विगतं फलं विफलम् । विगतं तथा सत्यं यस्मात् वितथम् । वृथो- त्याच्छादयति गुणान् वृथा । अव्ययम् ।

विधुरं व्यसनं कण्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत् ॥ १८६ ॥

२० पञ्च कण्टे । कण्टेन विधुनोति शरीरं विधुरम् । व्यस्यते अनेन व्यसनम् । कण्यते (कपति) कण्टम् । कृणोति छिनत्ति दुःखेन कृच्छ्रम्^६ । गह्यते गहनम् । उद्धरेत् निस्तरेत् ।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम् ।

पट् समस्ते । समस्यते एकीकरोति समस्तम्^७ । समं ग्रसते समग्रम्^८ । समानं कलयतीति^९ सकलम् । सरति सर्वम् । कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति कृत्स्नम् । विशति तिष्ठति सर्वत्र विश्वम् । नास्ति खिलं शून्यमस्याखिलम् । निखिलं च ।

१. "तिमि आर्द्राभावे" । तिम्यति आर्द्राभवति तिमिरः । विलम्बशीलो जनः सर्वदाऽर्द्र इव शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति । २. विश्वसशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तरं नास्ति । एवं विश्वासो विश्रम्भोऽपि । विश्वसशब्दाऽन्वाख्यानमपि व्याकरणादस्पष्टम् । अतोंऽत्र त्रिष्वपि मूलटीके एव प्रमाणम् । ३. योगे चित्तैकाग्र्ये साध्वीति योग्या "तत्र साधु"रिति यदन्यत्र । ४. गुण्यते गुणना । चुरादिणिजन्ताद् भावे "ण्यासश्चन्येति युच् । ततः स्वार्थे कः । गुणनैव गुणनिका । ५. अभीक्ष्णौति अभीक्षणम् । "क्षु तेजने" । बाहुलकाड्डमुः । अन्येषामपीति दीर्घः । इति रामाश्रमः । ६. अत्र मृपाऽलीकशब्दौ वक्ष्यमाणौ वितथ- शब्दश्चासत्यवाचकः । मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वक्ष्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽ- न्यत्र । तदुक्तममरे—“मृपा मिथ्या च वितथे” ३।१।१५ । “अलीकं त्वप्रियेऽनृते” ३।३।१२ । “मोघं निरर्थकम्” ३।१।८१ । व्यर्थके तु वृथा मुधा” ३।४।४ । “वितथं त्वनृतं वचः” १।८।२१ । इति । ७. कर्षति कृन्तति वेति क्षी० स्वा० । ८. समस्यते स्म समस्तम् । “अमु क्षेपणे” । कर्मणि कः । ९. सङ्गतमग्रमस्य समग्रम् । १०. सह कलाभिर्वर्तते सकलम् ।

शकलं विकलं खण्डं शल्कं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

पट् खण्डे । शक्नोति काये शकलम् । शल्कं च । विगता कला यस्मात् तद् विकलम् ।
खण्ड्यते खण्डः । लिश्यते लेशः^१ । लिश विच्छ गतौ । “अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्”^२ । रीति शब्दं
करोति लवः । विदुः कथयन्ति । अर्थम् । नेमः । सामि । असम्पूर्णम् । दलं च ।

मर्म कोपं च

द्वौ मर्मणि । प्रियतेऽनेन मर्म । नान्तम् । कुप्यते कोषम्^४ ।

कलहं परिवादं छलं नयेत् ।

करेण हन्त्यत्र कलहः । परिवदनं परिवादः । छलयती (त्यत्रे)ति छलम् ।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं क्षतजासृजम् ॥ १८८ ॥

पङ् रुधिरे । शोण्यते वर्ण्यते देहोऽनेन शोणितम् । तालव्यः । रोहति देहे जायते लोहितम् । १०
रजति रक्तं रक्तम् । रुणद्धि रुधिरम् । क्षताद् मृणाजायते क्षतजम् । अस्यते क्षिप्यते असृक् ।

सन्ततानारताजस्रान्वहं कन्यापतिर्वरः ।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते । सन्तन्यते स्म सन्ततम् । न आरतम् अनारतम् । न जस्यतीत्येवंशील-
मजस्रम् । अन्वहम् । कन्यापतिर्वरः नन्दतु इति प्रयोजनीयम् ।

उद्धाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

चत्वारो विवाहे । उद्धहनं उद्धाहः । परिणीयते परिणयनम् । विवाह्यते विवाहः ।
निवेश्यते निवेशनम् ।

शुपिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे । शुष्यति जलमत्र “शुपिरम् । उपशुषीति रः । विव्रियते भूमध्यमनेन विवरम् ।
शृण्वति वातेन रध्यति हिनस्ति प्राणिनं वा रन्ध्रम् । छिद्यते तत् छिद्रम् । कुहरम् । विलम् । निर्व्य- २०
थनम् । रोकम् । श्वभ्रम् । वपा । शुपिः ।

गर्ता च गह्वरम् ।

गर्तायां द्वौ । पतितं प्राणिनं गिरति गर्ता । गर्तः । गूहतीति गह्वरम् ।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेधसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके । श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिर्भ्रान्तं वा श्वभ्रम् । रसायां भवं २५
रस्यम् । पतन्त्यस्मिन् पातालम् । नराः कायन्त्यत्र नरकः । नारकः । पुंसि । अमेधसः बुद्धिरहिताः

१. “लिश अल्पीभावे” । दिवादिः । ततो घञ्विधानमर्यादुरूपम् । २. का० सू०
४।५।४ । ३. लूयते छिद्यते लवः । ऋदोरप् । टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनार्थाऽभिधायी । ४. कोप-
शब्दः पेशीवाचको मेदिन्यां लभ्यते । पेशीनां मर्मस्थानत्वमायुर्वेदे सम्मतम् । अत उपचारात् कोपोऽपि
मर्मैत्यभ्युन्नेयम् । तदुक्तम्—“कोपोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खङ्गपिधानके । जातिकोपेऽर्थसङ्घाते पेश्यां
शब्दादिसङ्ग्रहे” । पा०वर्ग० ६ । ५. “तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिबधिरुचिशुषिभ्यः किरः” का०उ० १।२३ ।
शुपिरस्यास्तीति विग्रहे तु “उपशुषिमुष्कमधो रः” पा०सू० ५।२।१०७ । इति रः । रप्रत्ययपक्षे दन्त्यादिरयम् ।
उपशुषीति पा० सूत्रे दन्त्य एव पाठः । क्षीरस्वाम्यपि दन्त्यमेव पपाठ ।

सम्यक्चारित्ररहिता यान्ति गच्छन्ति नरकम् । निरयः । दुर्गतिः ।

अदभ्रं भूरि भूयिष्ठं बंहिष्ठं बहुलं बहु ।

प्रचुरं नैकमानन्त्यं प्राज्यं प्राभूतपुष्कलम् ॥ १६१ ॥

५ द्वादश प्रभूते । न दभ्रमदभ्रम् । भवति प्राचुर्यमत्र भूरि, भूरिष्ठं च । अतिशयेन बहु भूयिष्ठम् । “बहो लोपो भू च बहोः” “इष्टस्य^२ यिद्चेति” भूरादेशो यिडागमश्च । अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः । वहति प्राचुर्यं बहुलम् । प्रचुरति^३ प्रचुरम् । न एकं नैकम् । अनन्तस्य भाव आनन्त्यम् । प्राज्यते प्रकर्षेण वीर्यतेऽनेन वा प्राज्यम्^४ । प्राभवति स्म प्राभूतम् । प्रभूतं च । पुष्यति पुष्कलम् । पुष्कं च । पुरुजम् । पुष्टम् ।

भवो भावश्च संसारः संसरणं च संसृतिः ।

तच्चञ्चतुरो धीरस्त्यजेज्जन्माजवं जवम् ॥ १६२ ॥

१० अष्टौ संसारे । भवतीति भवः । भवतीति भावः । “वा ज्वलादिदुनीभुवो णः” । संसरति अस्मिन् संसारः । संलियते अस्मिन् संसरणम् । संसरणं संसृतिः । जनयतीति जन्म । आजवतीति आजवम् । जवति चतुर्गत्यां भ्रमति (अत्र) जवः ।

ऊर्जस्फूर्जस्वी तरस्वी तेजस्वी च मनस्व्यपि ।

१५ चत्वार (पञ्च) स्तेजोयुक्तपुरुषे । ऊर्क् ऊर्जा वाऽस्त्यस्येति ऊर्जस्वी । स्फूर्जोऽस्यास्तीति स्फूर्जस्वी । तरोऽस्यास्तीति तरस्वी । तेजोऽस्यास्तीति तेजस्वी । मनोऽस्यास्तीति मनस्वी ।

भास्वरो भासुरः शूरः प्रवीरः सुभटो मतः ॥ १६३ ॥

पञ्च सुभटे । भासते इत्येवंशीलो भास्वरः^६ । भासुरः । “भिदि^७ भासिभंजां घुरः” । शूरयति शूरः । शूर वीर विक्रान्तौ । प्रवीरयते प्रवीरः । सुण्ड भटः सुभटः । विक्रान्तः ।

तनुत्रं वर्म कवचमावृतिर्वाणवारणम् ।

२० पञ्च कवचे । तनुं शरीरं त्रायते रक्षति तनुत्रम् । वृणोत्यङ्गं वर्म^८ । कच्यते वध्यते शरीरम् अनेन कवचम् । आवरणमावृतिः । वाणानां वारणं निषेधनं वाणवारणम् ।

कूर्पासं कञ्चुकम् ।

द्वौ कञ्चुके । करोति शोभां कूर्पासम् । कर्पासं च । कच्यते वध्यते कञ्चुकः ।

छत्रमातपत्रोष्णवारणम् ॥ १६४ ॥

२५ त्रयश्छत्रे । वर्षातपौ छादयतीति छत्रम् । त्रिषु । छत्रः, छत्री । आतपात् त्रायते आतपत्रम् । उष्णस्य वारणम् उष्णवारणम् । नृपलक्षम् ।

केशं शिरोरुहं वालं कचं चिकुरमीहयेत् ।

पञ्च केशे । के मस्तके शेते, केशः । शिरसि रोहति शिरोरुहः । वल्यते संत्रियते वालः । मस्तके चीयते कचति वा कचः । चीयते यत्नेन चिङ्गुरः । चिकुरश्च । मूर्धजः । शिरसिजः ।

१. पा० सू० ६।४।१५८ । २. पा० सू० ६।४।१५९ । ३. प्रचुरति प्रचुरम् । चुर स्तेये । चुरादीनां शिञ्जैकल्पिकः । इगुपधेति कः । प्रगतं चुरायाः प्रचुरमिति वा रामाश्रमः । ४. प्राज्यते काम्यते “अञ्जू व्यक्त्यादौ” अञ्जेः संज्ञायामिति क्यप् । यद्वा प्रवीर्यते “अज गतिक्षेपणयोः” क्यप् । बोभावो नेति टीकाशयः । ५. का० सू० ४।२। ५५ । इति णः । ६. “कपिपिसिभासीशस्याप्रमदां च” का० सू० ४।४।४७ । इति वरः । ७. का० सू० ४।४।४१ ।

वृजिनः^१ । कुन्तलः ।

चूडापाशं च धम्मिल्लं कवरी केशवन्धनम् ॥ १६५ ॥

चत्वारः केशवन्धने । चुद संचोदने । “चुरादेश्च^२” इन् । नामिनो^३ गुणः । चोदनं चूडा । “ऊन^४चूदपीडभृगयतिभ्य इनन्तेभ्यः संशायाम्” अङ् प्रत्ययः । कारितलोपः । निपातनात् उपधाया त्त्वत्वम् । दस्य डत्वम् । चूडायाः शिलायाः पाशः बन्धनं चूडापाशः । धम्मिः सौत्रः । धम्यन्ते केशा ५ वध्यन्ते धम्मिल्लः । कं मस्तकं वृणोति कवरो नदादित्वादीः । कवरी । इदन्तोऽपि कवरिः । आव्रन्तो वा कवरा । केशस्य बन्धनं केशवन्धनम् । वेणी । प्रवेणी । वीणा च

उररीकृतमप्युरीकृतमङ्गीकृतं तथा ।

त्रयोऽङ्गीकारे । ऊरीप्रभृतीनां कृता सह समासो वा भवति । तथाहि—ऊरी उररी अङ्गी- १०
करणे विस्तारे च । आश्रुतम् । प्रतिशतम् । उपगतम् ।

अस्तुङ्कारोऽभ्युपगमे

अभ्युपगमे अङ्गीकारे अस्तुङ्कारः कथ्यते । अस्तु करोतीति (करणम्) अस्तुङ्कारः^१ । “कर्मण्यण्”
अण् प्रत्ययः । अस्योप० वृद्धिः । व्यंजनम्^२ । “सत्यागदास्तूनां कारे” । मकारागमः ।

सत्यङ्कारः पणार्पणे ॥ १६६ ॥

सत्यापणे सत्यं करोतीति सत्यङ्कारः^३ ।

१५

सौहार्दं सौहृदं हार्दं सौहृद्यं सख्यसौरभम् ।

मैत्री मैत्रेयिकाज्यं सहाय्यं संगतं मतम् ॥ १६७ ॥

दश (एकादश) सख्ये । सुहृदां भावः सौहार्दम् । सौहृदम् । हार्दम् । सौहृद्यमेकमेव
वाक्यम् । सख्युर्भावः सख्यम् । सुरस्येदं (भेरिदं) सौरभम् । मित्रस्य भावो मैत्री । मैत्र्यां नियुक्तो
मैत्रेयिकः । न जीर्यते अजर्यम् । सहाजी (स्य) ते सहाय्यम् । संगमनम् सङ्गतम् । २०

क्षेमं कल्याणमुभयं श्रेयो भद्रं च मङ्गलम् ।

भावुकं भविकं भव्यं श्वोवसीयं शिवं तथा ॥ १६८ ॥

दश (एकादश) कल्याणे । क्षिणोति क्लेशान् क्षेमम् । कल्यते शायते कल्याणम् । कल्यं
नीरुजत्वमनिति वा कल्याणम् । प्रकृष्टं प्रशस्यं श्रेयस् । सान्तम् । भदते ह्लादते सुखीभवत्यनेन भद्रम् ।
मं पापं गालयतीति मङ्गलम् । भवनशीलं भावुकम् । “श्रुक्मगमहनवृषभूस्थालषपतपदामुकञ्^१” । प्रशस्तो २५
भवोऽस्त्यास्तीति भविकम् । पुण्यकृतो भवितव्यं भवति भव्यम् । श्वः शोभनञ्च वसीयः श्वोवसीयः ।
श्वोवसीयसं च । “श्वसो^२ वसीयस्” । शीयते तनूक्रियते दुःखमनेन शिवम् । भाष्यविधातृणां श्रीमदमर-
कोटीनां शिवं भवतु ।

१. वृजिनशब्दो भङ्गुरवाचो । तदुक्तम्—“वृजिनं भङ्गुरं भुजमरालं जिलमूर्तिमत्”
अभि० चि० ३।९३ । लक्षणया भङ्गुरकेशोऽपि वृजिनशब्दप्रयोगः । २. का० सू० ३।२।११ ।
३. का० सू० ३।५।२ । ४. का० सू० ४।५।२२ । अत्र दुर्गवृत्तिः “ऊनचुदपीडभृगयतिभ्य इनन्तेभ्यो यौ
प्राप्ते वचनम्” इत्येवंरूपा । ५. अस्तुकरणमस्तुङ्कारः । ६. का० सू० ४।३।१ । ७. “व्यञ्जनमस्त्वरं परवर्णं
नयेत्” का० सू० १।१।२१ । ८. का० सू० ४।१।२३ । ९. सत्यस्य करणं सत्यङ्कारः । भावे घञ् । कर्तृ-
विग्रहणीकोक्तस्त्वयुक्तः । १०. का० सू० ४।४।३४ । ११. का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः २७ ।

वक्ता वाचस्पतिर्यत्र श्रोता शक्रस्तथापि तौ ।

शब्दपारायणस्यान्तं न गतौ तत्र के वयम् ॥ १६६ ॥

अस्य श्लोकस्य सुगमव्याख्या ।

तथापि किञ्चित् कस्मैचित् प्रतिबोधाय सूचितम् ।

५

बोधयेत्किंयदुक्तिज्ञो मार्गज्ञः सह याति किम् ॥ २०० ॥

तथापि मया धनञ्जयकविना सूचितं कथितम् कस्मैचित् प्रतिबोधाय ज्ञानाय । उक्तिज्ञो बोधयेत् ज्ञापयेत् । मार्गज्ञः किं सह याति गच्छति, अपि तु न गच्छति ।

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

द्विःसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २०१ ॥

१०

एतद्रत्नत्रयमपश्चिमं नवीनमपूर्वं वर्तते ।

कवेर्यनञ्जस्येयं सत्कवीनां शिरोमणेः ।

प्रमाणं नाममालेति श्लोकानां हि शतद्वयम् ॥ २०२ ॥

धनञ्जयस्य कवेः सत्कवीनां शिरोमणेः इति अमुना प्रकारेण इयं नाममाला श्लोकानां शतद्वयं २०० प्रमाणमस्ति ।

१५

ब्रह्माणं समुपेत्य वेदनिनदव्याजात् तुपाराचल-

स्थानस्थावरमीश्वरं सुरनदीव्याजात् तथा केशवम् ।

अप्यम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशादहो

फूत्कुर्वन्ति धनञ्जयस्य च भिया शब्दाः समुत्पीडिताः ॥ २०३ ॥

अहो लोकाः धनञ्जयस्य च भिया कृत्वा शब्दाः समुत्पीडिताः सम्यक् प्रकारेण पीडिताः
२० फूत्कुर्वन्ति । किं कृत्वा पूर्वं वेदनिनदव्याजात् मिपात् ब्रह्माणं समुपेत्य प्राप्य, ईश्वरं तुपाराचलस्थान-
स्थावरं सुरनदीव्याजात् प्राप्य, केशवं श्रीविष्णुं किं विशिष्टं अम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोप-
देशात् समुपेत्य सुगमोऽयं श्लोकः ।

इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन

श्रीसेन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृतायां

धनञ्जयनाममालायां प्रथमं काण्डं

व्याख्यातम्

श्रीमद्धनञ्जयकविवरचिता

अनेकार्थ नाममाला

—०—

जिनेन्द्रं पूज्यपादं च चैलाचार्यं शिवायनम् ।
अर्हन्तं शिरसा नत्वाऽनेकार्थं विवृणोम्यहम् ॥ १ ॥
गम्भीरं रुचिरं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् ॥
शाब्दं मनाक् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥

गम्भीरं रुचिरं मनोज्ञं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् । सुगमव्याख्याऽस्ति ।

अर्हत्पिनाकिनौ शम्भू

शम्भू इति द्विवचनान्तं पदम् ।

जिंनावर्हत्तथागतौ ।

जिनौ कथ्येते ।

वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ

वेदश्च सूर्यश्च वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ सूर्यौ कथ्येते ।

विष्णुरुद्रौ वृषाकर्षी ॥ ३ ॥

विकुण्ठाविन्द्रगोविन्दौ अनन्तौ शेषशार्ङ्गिणौ ॥

शेषश्च धरणेन्द्रः, शार्ङ्गौ च विष्णुः शेषशार्ङ्गिणौ ।

जीमूतौ तु करिक्रीडौ पर्जन्यौ शक्रवारिदौ ॥ ४ ॥

वनमम्भसि कान्तारे

अम्भसि कान्तारे वनम् ।

भुवनं विष्टपेऽर्णसि ।

सुगमव्याख्या ।

१. शं कल्याणं भवतीति शम्भुः । दुप्रत्ययः । केशवब्रह्मवाची च । तदुक्तम् — “शम्भुः स्याद् ब्रह्मशिवयोरर्हत्यपि च केशवे” । इति वि० लो० भा० व० ९ । हैमे च — “शम्भुर्ब्रह्मार्हतोः शिवे” । २१६ । इति च । २. विष्णु, अतिवृद्ध, जित्वर, इत्येतेष्वपि जिनः । तदुक्तम् — “जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोस्त्रिषु” वि० लो० ना० व० ८ । हैमे — “जिनोऽर्हद्बुद्धविष्णुषु” २।२६९ । ३. “विवस्वान् देवसूर्ययोः” अने० सं० ३।३१७ । अत्र देवशब्दपाठात्प्रस्तुतेऽपि देवशब्द एव युक्तः । ४. अग्निश्च । तदुक्तम् — “वृषाकपिर्वासुदेवे शिवेऽनौ च” अने० सं० ४।२१६ । ५. अनवधिरप्यनन्तार्थः । “अनन्तः केशवे शेषे पुमाननवधौ त्रिषु” इति मेदिनी । ६. “जीमूतो वासवेऽम्बुदे । घोषकेऽद्रौ भृतिकरे” इति० अने० सं० । ७. पर्जन्यो मेघगर्जितेऽपि । तदुक्तम् — “पर्जन्यो मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुद-शक्रयोः” इति मेदिन्याम् ।

घृतं सर्पिषि पानीये विषं हालाहले जले ॥ ५ ॥
 तल्पं दारेषु शय्यायां ज्योतिश्चक्षुषि तारके ।
 धवले सुन्दरे रामो वामो चक्रे मनोहरे ॥ ६ ॥
 नक्षत्रे मन्दिरे धिष्ण्यम्

५ द्रष्टेष्टि शब्दं करोत्यत्र जनो धिष्ण्यम् । नपुंसकम् । विष शब्दे ।
 वसने गगनेऽम्बरम् ।
 वसने गगने अम्बरं वर्तते । अम्बं शब्दं राति ददातीति अम्बरम् ।

परिधौ पादपे सालः
 १० परिधौ पादपे सालो वर्तते । सां लक्ष्मीं लातीति सालः ।
 “सालः शर्जतरौ वृक्षमात्रप्राकारयोरपि” इति हेमः^१ ।

सिन्धुः स्रोतसि योपिति ॥ ७ ॥
 स्रोतसि योपिति सिन्धुः ।-स्यन्दते सिन्धुः ।

सारसः शकुनौ धूर्ते
 ५१ सरसि तडागे भवः^२ सारसः ।
 केतनं दीधितौ ध्वजे ।

केतन्ति जानन्त्यत्र केतनम् । तथा च—
 “कृत्ये निमन्त्रणे चिह्ने मन्दिरे केतनं विदुः ।”

मयूखः कीलके दीप्तौ
 मयते विस्तारं यातीति मयूखः ।

२० पतङ्गः शलमे रघौ ॥ ८ ॥
 पततीति पतङ्गः । पल्लु गतौ ।

अञ्जनः कज्जले नागे
 कज्जले नागे अञ्जनो वर्तते । अञ्जु व्यक्तिप्रक्षणकान्तिषु । विक्रमेण^३ अज्यते प्रकटी-
 क्रियते अञ्जनः ।

२५ सारङ्गः पृपते गजे ।
 सरतीति सारङ्गः^४ ।

सरलः प्रगुणे वृक्षे
 ऋजुत्वात्सरलः ।

पुन्नागः^५ सन्नरे तरौ ॥ ९ ॥

३० पुमाँश्चासौ नागः श्रेष्ठः ।

१. अने० स० २।२२७ । २. धूर्तपक्षे तु अरसेन द्वेपेण सहितः सारस इति विवेकः ।
 ३. गजोऽपि विक्रमेण जायते, कज्जलोऽपि विक्रमणवलेन प्रचयते । ४. सारं दृढमङ्गं यस्येत्यपि । सरतीत्यस्य
 स्थाने सारयतीति युक्तम् । ५. “पुन्नागस्तु सितोत्पले । जातीकले नरश्रेष्ठे पाण्डुनागे द्रुमान्तरे” इति मेदिनी

पाञ्चजन्योऽनले शङ्खे

पाञ्चजने पाताले भवः पाञ्चजन्यः ।

कम्बुः^२ शङ्खे मतङ्गजे ।

कम्बुः सौत्रः कम्ब्यते वर्ण्यते कम्बुः । अथ वा कवृ वर्णे उणादित्वादत्मादेव नकारागमश्च ।

कस्वरो द्युभवे द्युम्ने

५

द्युभवे स्वर्गोद्भवे द्युम्ने सुवर्णे कस्वरः । कुत्सितं स्वरति कस्वरः ।

स्यन्दनं शकटेऽम्बुनि ॥ १० ॥

स्यदन्ते स्यन्दनम्^३ ।

अद्रिर्गिरिवनस्पत्योः

गिरिश्च वनस्पतिश्च गिरिवनस्पती तयोर्गिरिवनस्पत्योः । अति आकाशमित्यद्रिः ।

१०

शिखरी तरुभूधयोः

शिखरमस्यातीति शिखरी ।

*राजा चन्द्रमहीपत्योः ।

राजते इति राजा ।

द्विजो दशनविप्रयोः ॥ ११ ॥

१५

द्विर्जातो द्विजः ।

मोचामरस्त्रियो रम्भा

ब्रह्मर्षीनपि रमयतीति रम्भा ।

कदली ध्वजमोचयोः ।

केन वायुना दल्यते विदार्यते कदली ।

२०

अशोकः सुमनस्तर्वाः

न शोको यस्माद्यस्य वा अशोकः ।

सुमनाः सुरपुष्पयोः ॥ १२ ॥

सुरश्च पुष्पं च सुरपुष्पे तयोः सुरपुष्पयोः । शोभनचित्तः सुमनाः ।

मुक्तारजतयोस्तारः

२५

तीर्यते तारः ।

भूरि भूयःसुवर्णयोः ।

पुण्यवस्तु भवतीति भूरि । क्लीवे ।

पानीयदुग्धयोः क्षीरम्^४

घस्तुः अदने । सौत्रोऽयम् ।

३०

१. "पाञ्चजन्यस्तु विष्णुशङ्खे द्रुमान्तरे" इति मेदिनी । २. "कम्बुः पुमान् गजे । बलये शङ्ख-
शम्बूककन्धरामलके स्त्रियाम्" इति वि० लो० वा० व० २ । ३. "स्यन्दनं प्रसवे नीरे स्यन्दनस्तिनिशे रये"
वि० लो० ना० व० १५१ । ४. राजा प्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ । पक्षे शक्रे च पुंसि स्यात्" इति
मेदिनी । ५. घस्यतेऽद्यते क्षीरम् । "घस्तुः अदने" । घस्तेः क्तिच्चेति कीरः ।

पयः सलिलदुग्धयोः ॥ १३ ॥

पीयते पयः ।

कालप्रकर्षयोः काष्ठा

कालश्च त्रुट्यादिलक्षणः ।

५

“स्वस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्देत लोचनम् ।

तस्य त्रिंशत्तमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ॥”

अथवा—

“सर्पस्य प्रयत्नेन क्षिप्तस्य पततोऽम्बरात् ।

द्वियवं यावदध्वानं कालः स (च) त्रुटिः स्मृतः ॥”

प्रकर्षश्च प्रकर्षता उत्कृष्टता वा । कालश्च प्रकर्षश्च कालप्रकर्षौ तयोः कालप्रकर्षयोः काष्ठा

१० कथ्यते । काशते भासते काष्ठा । शन्तोऽयम् ।

कोटिः संख्याप्रकर्षयोः ।

कुटर्तीति कोटिः ।

“कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षा च कोटिरपि कियती ।

औदार्योन्नतमनसां रत्नवती वसुमती कियती ॥”

१५

रन्त्रसंश्लेषयोः सन्धिः

सन्धानं सन्धिः ।

“सन्धिर्योनौ सुरङ्गायां नाट्येऽङ्गे श्लेषभेदयोः” इति हैमी^१ ।

सिन्धुर्नदसमुद्रयोः ॥ १४ ॥

स्यन्दते सिन्धुः ।

२०

निषेधदुःखयोर्वाधा

वन्धनं (वाधनं) वाधा । बाधृ प्रतिधाते ।

व्यामोहो मूर्खमौढ्ययोः ।

व्यामुह्यते व्यामोहः^२ ।

कौपीनाकारयोर्गुह्यम्

२५

गुह्यते गुह्यम् । गुह्यं संवरणे । “गुह्यमुपस्थे रहस्ये च” इति हैमी^३ ।

कीलालं रुधिराम्भसोः ॥ १५ ॥

कीलां लातीति कीलालम्^४ । “कीलालं रुधिरे नीले” इति हैमी^५ ।

मूल्यसत्कारयोरर्थः

अर्हते पूजयतेऽनेनेत्यर्थः । “व्यञ्जनाच्च” घञ् । होपश्रवादीर्षो ना । “न्यङ्क्वादीनां हश्च घः” ।

३०

जात्यः श्रेष्ठकुलीनयोः ।

१. अने० स० २।२५७ । २. व्यामोहशब्दस्य मूर्खार्थे मूलं मृग्यम् । ३. अने० स० २।३५८ । ४. कीलां ज्वालामलति वारयति । अल पर्याप्त्यादौ । इति जले विग्रहः । रुधिरार्थे तु टीकोक्तः । ५. अने० स० ३।६८३ । ६. का० सू० ४।५।९९ । ७. का० सू० ४।६।५७ ।

श्रेष्ठकुलीनयोर्जात्यः । जात्यां भवो जात्यः ।

मेघवत्सरयोरब्दः

अवतीति अब्दः । कुन्दादयः^१—“कुन्दतृन्दमन्दाब्दाः” । “अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके गिरिभिद्यपि ।”

ताक्ष्यो ह्यगरुत्मतोः ॥ १६ ॥

५

तृक्षस्यात्पयं ताक्ष्यः । पुंसि ।

स्तब्धतास्थूणयोः स्तम्भः

स्तम्भ इति सौत्रोऽयं धातुः ।

चर्चा चिन्तावितर्कयोः ।

चर्चणं चर्चा ।

१०

हरकीलकयोः स्थाणुः

तिष्ठतीति स्थाणुः ।

स्वैरः स्वच्छन्दमन्दयोः ॥ १७ ॥

स्वत्य ईरः स्वैरः । ^३स्वस्यात ऐतमारिणोरपि वक्तव्यम् । तथा चालङ्कारे—

“स्वैरं विहरति स्वैरं शेते स्वैरं च जल्पति ।

१५

मिक्षुरेकः सुखी लोके राजचौरभयोजितः ॥”

“स्वैरो मन्दे स्वतन्त्रे च” इति हैमी^४ ।

शङ्कुः सङ्कीर्णविवरे पलालाग्नौ च कीलके ।

संख्यायाम्

शं कायति कूयते वा “शङ्कुः ।

२०

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च ॥ १८ ॥

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च । दूनोतीति दवः । दावः । “वा^६ ज्वलादिदुनीभुवो णः” ।

कीनाशः कृपणे भृत्ये कृतान्ते पिशिताशिनि ।

तथा पुण्यजनान् प्राहुः सज्जनान् राक्षसानपि ॥ १९ ॥

लोभेन विलश्यते बाध्यते कीनाशः । तालव्यः ।

२५

विरोचनो रवौ चन्द्रे दनुस्सनौ हुताशने ।

विरोचते इत्येवंशीलो विरोचनः ।

हंसो नारायणे ब्रध्ने यतावरवे सितच्छदे ॥ २० ॥

हन्तीति हंसः ।

सोमश्चन्द्रोऽमृतं सोमः सोमो राजा युगादिभूः ।

३०

सोमः प्रतानिनीभेदः सोमपोऽगस्त्यदिपतिः ॥ २१ ॥

१. का० उ० सू० ३।६४ इति दप्रत्ययः । २. अने० स० २।२२६ । ३. “स्वत्येरेरिणीरिपु” का० सू० पू० ३८ । ४. अने० स० २।४८२ । ५. शङ्कते ऽस्मात् शङ्कुः । “शक्ति शङ्कायाम्” । औणा-
दिक उः । ६. का० सू० ४।२।५५ इति णप्रत्ययः “दुदु उपतापे” ।

पुञ् अभिप्रवे । अनेन सर्वेषां साधनिका ज्ञातव्या ।

अजो विधिरजो विष्णुरजः शम्भुरजस्तमः ।

अजस्रैवार्पिको व्रीहिरजो रामपितामहः ॥ २२ ॥

न जायते नोत्पद्यते अजः ।

५

शुद्धेऽनुपहते वह्नौ ब्राह्मणे सचिवोत्तमे ।

आपादेऽध्यात्मसंविक्तौ ब्रह्मचर्ये शुचिर्मतः ॥ २३ ॥

मतः कथितः । एतेष्वर्थेषु शुचिशब्दः । शोचति जनो देहलग्नेऽत्र शुचिः । तथा च यश-

स्तिलकचम्पूकाव्ये-

“न स्त्रीभिः सङ्गमो यस्य सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।

तं शुचिं सर्वदा प्राहुः मारुतं च हुताशनमिति ॥”

१०

अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।

अर्थशब्दः पठ्यते । अभिधेयश्च शब्दो वाचकः, शब्दमध्ये योऽसावर्थः स वाच्यः अभि-
धेयश्च कथ्यते । राः सुवर्णम् । वस्तु—अस्यादिलोहितादिर्वा । गैरिकान्वितं (दिक् च) वस्तु । प्रयोजनं
कार्यम् । निवृत्तिश्च मुक्तिः । तासु । ऋ गतौ । अर्थते इत्यर्थः ।

१५

भावः पदार्थचेष्टात्मसत्ताभिप्रायजन्मसु ॥ २४ ॥

एतेष्वर्थेषु भावः पठ्यते । भवतीति भावः । “वा^१ ज्वलादिदुनीभुवो णः ।”

प्रायो भूमोपमातर्क्यप्रभृत्यन्ननिवृत्तिषु ।

एतेष्वर्थेषु प्रायः^२ शब्दः ।

अन्तः पदार्थसामीप्यधर्मसत्त्वव्यतीतिषु ॥ २५ ॥

२०

एतेष्वर्थेषु अन्तः ।

अक्षो द्यूते वरूथाङ्गे नयनादौ विभीतके ।

द्यूते वरूथाङ्गे रथचक्रावयवे, नयनादौ, विभीतके पूतनायाम् अक्षो वर्तते ।

सारः श्रेष्ठे बले वित्ते कोशे जलचरे स्थिरे ॥ २६ ॥

श्रेष्ठे, बले, वित्ते, कोशे, कोशे वा पाठः । जलचरे, स्थिरे सारो वर्तते । सरत्थनेनेति सारः ।

२५

३ “बलमत्स्ययोश्च” इति परसूत्रेण घञ् । स्वमते “अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्” इति घञ् । “सारो
मज्जस्थिरांशयोः, बले श्रेष्ठे “च” इति हैमी ।

वाचि वारि पशौ भूमौ दिशि लोम्नि रवौ दिवि ।

विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौर्मतः ॥ २७ ॥

पूजां गच्छतीति गौः । गमेर्दोः ।

३०

चन्द्रे सूर्ये यमे विष्णौ वासवे दर्दुरे ह्ये ।

मृगेन्द्रे वानरे वायौ दशस्वपि हरिः स्मृतः ॥ २८ ॥

हरतीति हरिः ।

१. का० सू० ४।२।५५ । २. प्रकृष्टमयनं प्रायः । “इण् गतौ” । एरच् । ३. “सर्तैः स्थिरव्याधि-
मत्स्यत्रले” हे० श० ५।३।१७ । ४. का० सू० ४।५।४ । ५. अने० स० २।४७८ ।

पत्रे करिकरप्रान्ते व्योम्नि खड्गफले गदे ।

दाद्यभाण्डमुखे तीर्थे जले पुष्करमष्टसु ॥ २६ ॥

पुष्पातीति पुष्करम् ।

शृङ्गारादौ कषायादौ घृतादौ च विपे जले ।

निर्यासे पारदे रागे वीर्येऽपि रस इष्यते ॥ ३० ॥

शृङ्गारादौ—

“शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः ।

धीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥”

कषायादौ—तित्ताम्लमधुकटुकषायेषु । घृतादौ—दुग्धदधिघृततैललवणेश्चुरसेषु ।

विपे जले, निर्यासे वृत्तरसविशेषे, पारदे रागे, वीर्येऽपि रस इष्यते ।

तीर्थं प्रवचने पात्रे लघ्वाम्नाये विदां वरे ।

पुण्यारण्ये जलोत्तारे महासत्ये महामुनौ ॥ ३१ ॥

एतेष्वर्थेषु तीर्थम्^१ ।

धातुः पञ्चसु लोहेषु शरीरस्य रसादिषु ।

पृथिव्यादिचतुष्के च स्वभावे प्रकृतावपि ॥ ३२ ॥

पञ्चसु लोहेषु सुवर्णरजतताम्ररीतिकांस्येषु । शरीरस्य रसादिषु रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रेषु । पृथिव्यादिचतुष्के च पृथिव्यतैजोवायु (वनस्पति) पु, स्वभावे, वातपित्तश्लेष्मादिषु एतेष्वर्थेषु धातुः पठ्यते । दधातीति धातुः ।

प्रधानशृङ्गलाङ्गूलभूषापुण्ड्रप्रभावना ।

ध्वजलक्ष्मणतुरङ्गेषु ललामो नवसु स्मृतः ॥ ३३ ॥

एतेष्वर्थेषु ललामः । ललामन् ।

आकृतावक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु ।

मान्यानुलेपने चैव वर्णः षट्सु निगद्यते ॥ ३४ ॥

आकृतौ, अक्षरे, रूपे, ब्राह्मणादिषु जातिषु, मान्यानुलेपने च वर्णो^३ निगद्यते ।

अकारादाबुदात्तादौ षड्जादौ निस्वने स्वरः ।

एतेष्वर्थेषु स्वरः कथ्यते । अकारादौ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ । उदात्तादौ—“उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः,” “नीचैरनुदात्तः,” “समवृत्त्या स्वरितः” । षड्जादौ—

“निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रिकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥”

निस्वने शब्दे ।

सङ्केताचारसिद्धान्तकालेषु समयः स्मृतः ॥ ३५ ॥

समयते समयः ।

१. तरति तीर्थते वाऽनेन तीर्थम् । २. “लड विलाते” । डलयोरभेदात् ललतीति ललामः । ३. “वर्णं शब्दे” । वर्णयति वर्ण्यते वा वर्णः । घञ् कर्मणि, अज्वा कर्तरि । ४. सारस्व० सू० २ । ५. अम० को० १।७।१ ।

तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सैन्ये तन्तौ परिच्छदे ।

तन्त्यन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति तन्त्रम् । अप्रत्ययः ।

सत्त्वमोजसि सत्तायामुत्साहे स्थेन्नि जन्तुषु ॥ ३६ ॥

एतेष्वर्थेषु सत्त्वम् ।

५

रूपादौ तन्तुषु ज्यायामप्रधाने नये गुणः ।

गुण्यतीति गुणः ।

ज्ञानचारित्रमोक्षात्मश्रुतिषु ब्रह्मवाग्वरा ॥ ३७ ॥

वरा विशिष्टा ।

अवकाशे क्षणे वस्त्रे बहिर्योगे व्यतिक्रमे ।

१०

मध्येऽन्तःकरणे रन्ध्रे विशेषे रहितेऽन्तरम् ॥ ३८ ॥

एतेष्वर्थेषु अन्तरः ।

हेतौ निदर्शने प्रश्ने श्रुतौ कण्ठसमीकृतौ ।

आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ इष्यते ॥ ३९ ॥

इष्यते कथ्यते । अथ एष्वर्थेषु ।

१५

हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः ॥ ४० ॥

प्रकीर्तितः कथितः इतिशब्दः एतेष्वर्थेषु । इण् गतौ । इ । एति एवमादिकमर्थमिति ।

“इति” “अमुर्पणि प्रभृतिभ्यो यणवत्” इत्यनेनेतिप्रत्ययः । इति जातम् । प्रथ० विः । “अन्य-
“याच्च” सिलोपः ।

२०

धर्मो धनुष्यहिंसादावुत्पादादावये नये ।

द्रव्यक्रियाश्रये वित्ते जीवादौ दारुवैकृते ॥ ४१ ॥

एतेष्वर्थेषु धर्मः । धरतीति धर्मः ।

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।

एतेष्वर्थेषु पुद्गलः^३ ।

२५

अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥ ४२ ॥

(अकर्म-पुद्गलस्कन्धः) कर्म-ज्ञानावरणादि, नोकर्म — शरीरादि । जातिगोत्रादि । एतेषु वर्गणा
वर्तते ।

ऐश्वर्यस्यासमग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यस्यावबोधस्य पण्णां भग इति स्मृतः ॥ ४३ ॥

३०

भजन्त्यस्मिन्निति *भगः ।

प्राहुः कैवल्यमार्हन्त्ये विविक्ते निर्वृतावपि ।

१. कातन्त्रेऽस्य शुद्धं रूपं नोपलब्धम् । २. का० सू० २।४।४ । ३. पूर्यन्ते पुनः पुनः सत्यभर्मे
इति पुरः । गलन्ति विलीयन्ते गलाः । पुरश्च ते गलाश्च, पुद्गलाः । पृषोदरादित्वादस्य दः । ४. भज्यते
सेव्यते धार्यते वा भगः ।

केवलस्य भावः कैवल्यम् ।

लब्धिः केवलबोधादाविष्टाप्तौ नियतौ श्रियाम् ॥ ४४ ॥

लम्भनं लब्धिः ।

अनेकान्ते च विद्यादौ स्यान्निपातः श्रुते क्वचित् ।

स्यात् भवेत् एतेष्वधेषु निपातः ।

५

भ^२द्वारको धर्मचन्द्रस्तत्पट्टे धर्मभूषणः ।

तत्र देवेन्द्रकीर्तिः श्रीकुमुच्चन्द्रस्ततः परम् ॥ १ ॥

धर्मचन्द्रस्ततो ज्ञानसागरस्तत्पदेऽभवत् ।

तेन पुस्तकमेतद्वि दत्तं (लोकहितेच्छया) ॥ २ ॥

इति

धनञ्जयनाममाला सटीका समाप्ता

—

१. स्यात् इत्याकारको निपात एतेष्वधेषु इति सन्वन्धः । २. इतः परं मुद्रितपुस्तकेष्वधिकः पाठ उपलभ्यते, तद्यथा—“दर्शनादौ मणौ रत्नं भव्यः शस्ते प्रसेत्स्यति ॥४५॥ परमात्मा जिने सिद्धे परमेष्ठ्यर्हदादिषु । सिद्धाः सिद्धनिषद्यायामर्हत्सिद्धश्रियामपि ॥४६॥ अर्हत्सिद्धमिति द्वावप्यर्हत्सिद्धाभिधायिनौ । अर्हदादीनपि प्राहुः शरणोत्तममङ्गलान् ॥४७॥ इति । ३. अत्राशुद्रिदोषात्किञ्चित्पाठभेदः, स च शोधित इत्यंरूपः संवृत्तः ।

अनेकार्थ-निघण्टुः

गम्भीरान् रुचिरांश्चित्रान् विस्तीर्णार्थप्रसाधनान् । कण्ठशब्दान् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥१॥
वाग्दिवभूरश्मिवज्रेषु पश्वक्षिस्वर्गवारिषु । नवस्वयैषु मेधावी गोशब्दमुपलक्षयेत् ॥२॥
कः प्रजापतिरुद्दिष्टो को वायुरभिधीयते । कः शब्दः स्वर्गमाख्याति क इत्यात्मा मतः क्वचित् ॥३॥
सलिलं कमिति ज्ञेयं शिरः कमिति चोच्यते । देवाननिमिपानाहुर्मत्स्याननिमिपास्तथा ॥४॥
अग्निश्च बर्हिणः चैव वृक्षः कुक्कुट एव च । शिखिनोऽभिहिताः शस्त्रः पृथुकश्च मतः शिखी ॥५॥
हंसो नारायणः प्रोक्तः क्वचिद्वंसो दिवाकरः । अश्वश्चापि स्मृतो हंसो हंसश्चापि विहंगमः ॥६॥
सारसस्सरसिजेन्द्रोः पतत्र्यपि च सारसः । राजाऽपि नृपतिज्ञेयो राजा चोक्तो निशाकरः ॥७॥
विभावसुर्हुताशः स्याच्छ्वेतच्छत्रं क्वचिद्भवेत् । हिमारातिः स्मृतो बह्निः हिमारातिश्च भास्करः ॥८॥
धनञ्जयोऽग्निर्व्याख्यातो पार्थश्चापि धनञ्जयः । वीभत्सश्च मतः पार्थो वीभत्सो विकृतः स्मृतः ॥९॥
अग्निर्विरोचनः प्रोक्तो भास्करस्तु विरोचनः । विरोचनश्च चन्द्रः स्यात्क्वचिद्द्वैत्यो विरोचनः ॥१०॥
पाञ्चजन्यः क्वचिद्बह्निः क्वचिच्छङ्खो निगद्यते । कम्बुश्च गदितः शङ्खः कम्बुरिष्टश्च कुञ्जरः ॥११॥
भास्करोऽग्निः समुद्दिष्टः सहस्रांशुरपि क्वचित् । पतङ्गो दिनक्रुद्ध ज्ञेयः पतङ्गः शलभः स्मृतः ॥१२॥
कौशिको देवराजः स्यादुलूकश्चापि कौशिकः । शम्भुर्ब्रह्मा च विष्णुश्च शम्भुश्चैव महेश्वरः ॥१३॥
वृषकेतुर्मतः शङ्कुः शङ्कुः कील इहोच्यते । जम्बुको वरुणो ज्ञेयः शूगालश्चापि जम्बुकः ॥१४॥
अर्क इष्टस्तु मघवान् घर्मांशुरर्क उच्यते । मन्यो राहुश्च चन्द्रश्च ग्रहो मन्यो निरुच्यते ॥१५॥
केतवो रश्मयो ज्ञेयाः केतवश्च महाध्वजाः । तमोमुदः सहस्रांशुरग्निश्चापि प्रकीर्त्यते ॥१६॥
मयूखाः किरणा ज्ञेया मयूखाश्चापि कीलकाः । सप्तपिस्तसवः प्रोक्तः सप्तान्ये ऋषयः क्वचित् ॥१७॥
वसवः शंवरा उक्ता देवाश्च वसवो मताः । नक्षत्रं धिष्ण्यमित्युक्तं गेहं धिष्ण्यं मतं क्वचित् ॥१८॥
वासोऽम्बरमिति व्यातमम्बरं च नभःस्थलम् । पयः सलिलमुद्दिष्टं पयः क्षीरं मतं क्वचित् ॥१९॥
शिवं पानीयमुद्दिष्टं शिवं श्रेयः शिवं सुखम् । शिवं व्योमपतिं प्राहुः शिवं श्रेष्ठं प्रचक्षते ॥२०॥
क्षरं जलं विजानीयात्क्वचिन्मेघं विदुः क्षरम् । स्पन्दनं चाम्बु निर्दिष्टं स्पन्दनश्च महारथः ॥२१॥
कृष्णं तमः समाख्यातं कृष्णश्चाधोक्षजस्तथा । अमृतं क्षीरमित्युक्तं क्वचिच्चेष्टं समुद्रजम् ॥२२॥
शवं च सलिलं प्रोक्तं मृतमाहुः शवं तथा । तोयं घृतमिति प्रोक्तं घृतं सर्पिः क्वचिद्भवेत् ॥२३॥
पानीयं च विषं प्रोक्तं क्वचिद्दालाहलं विषम् । हस्तिहस्तः करः प्रोक्तः करो हस्तः प्रचक्ष्यते ॥२४॥
कीलालं रुधिरं प्रोक्तं नीरं चैव प्रशस्यते । भुवनं सलिलं प्रोक्तं आकाशं भुवनं स्मृतम् ॥२५॥
प्रवालं कोमलं ज्ञेयं कोमलं स्पष्टवाचकम् । सदनं च स्मृतं तोयं सदनं वैश्व उच्यते ॥२६॥
तोयं सद्येति गदितं निलयं सद्य निगद्यते । संवरं च जलं प्रोक्तं संवरः पर्वतो भवेत् ॥२७॥
संवरश्चाऽसुरः ख्यातो यो विभर्ति रसां प्रियाम् । स्वरवाक्क्षमास्विडां प्राहुरिडा चाम्बरदेवताम् ॥२८॥
पत्नीं चन्द्रेरिडां प्राहुरिला तत्समतां गता । अदितिः पृथिवी ज्ञेया देवमाताऽदितिः क्वचित् ॥२९॥
अध्यूढा भार्या परित्यक्ता त्वद्भिदिश्च निगद्यते । वृषो धर्मः क्वचिज्ज्ञेयो गवामपि पतिर्वृषः ॥३०॥
वृषा कर्णश्च गदितो वृषा चोक्तः शतक्रतुः । रौहिणेयो बलः प्रोक्तो रौहिणेयो बुधः क्वचित् ॥३१॥
बलदेवो मतः शोपो नागो वा शेष उच्यते । रामस्तु लांगली ज्ञेयो रामो दाशरथिः क्वचित् ॥३२॥
रामश्च शुकलो वर्णो रामश्च क्षत्रनाशनः । वराहः केशवः ख्यातो वराहो जलदः क्वचित् ॥३३॥
वराहः शकरो ज्ञेयो विष्णुर्मेघो हरिस्तथा । अजाराट्स्मरेन्दवो ज्ञेयास्त्रिनेत्रश्चाप्यजो मतः ॥३४॥
अजः पशुश्च विख्यातो तथाजौ ब्रह्मकेशवौ । शरीरजः स्मृतो रोगः पुत्रश्चापि शरीरजः ॥३५॥

ज्ञेयं पुष्करभञ्जं च नागनासाग्रमेव च । कूलं नभः समाख्यातं कूलं रोधः प्रचक्षते ॥३६॥
 खं चानन्तमिति प्रोक्तमनन्तं च बलं क्वचित् । विष्णुः क्वचिदनन्तः स्थान्नागश्चानन्त उच्यते ॥३७॥
 प्रजापतिः स्मृतो राजा ब्रह्मा चापि प्रजापतिः । प्रजापतिः स्मृतः क्षत्ता क्षत्ता च चर उच्यते ॥३८॥
 वामः पयोधरः प्रोक्तो वामः स्याद्द्विविधं हरः । वामश्च मदनः प्रोक्तो वामश्च प्रतिकूलके ॥३९॥
 आगोपो गोपको ज्ञेयः क्वचिदागोपको ध्वजः । उरश्चाङ्गः समाख्यातः स्थानमङ्गः स्मृतस्तथा ॥४०॥
 वासरस्तु स्मृतो नागो वासरो दिवसो मतः । विभावमुर्निशा ज्ञेया गन्धर्वश्च क्वचिन्मतः ॥४१॥
 शर्वर्यो रात्रयः प्रोक्ताः शर्वर्यश्च स्त्रियो मताः । सान्द्रं घनमिति प्रोक्तं स्निग्धं सान्द्रं निगद्यते ॥४२॥
 स्वः स्वर्गस्य मतं नाम स्वः सुखं क्वचिदुच्यते । स्व आत्मा चैव निर्दिष्टः स्वः प्रोक्तो गृहमूषिकः ॥४३॥
 ककुश्छन्दोविशेषज्ञो मतः शास्त्रेपि ना ककुप् । ककुम्महीरुहः प्रोक्तो ज्ञेयास्तु ककुभो दिशः ॥४४॥
 क्षयं वेदम समुद्दिष्टं क्षयं रोगं प्रचक्षते । जलदस्तु प्लवो ज्ञेयः प्लवो ज्ञेयस्तथोदुपः ॥४५॥
 प्रासादो मण्डपः प्रोक्तो विहारश्चापि कथ्यते । घनं घनं विजानीयाद् घनं विपुलमुच्यते ॥४६॥
 प्रयुज्यते च कस्मिंश्चिद् घनं सङ्घातवाद्ययोः । वरूथं स्यन्दनाग्रं स्याद्वरूथं वेदम उच्यते ॥४७॥
 चमूश्च वर्म सहसा प्रवदन्ति मनीषिणः । असुराश्च सुरा ज्ञेयाः क्वचिद्देवारयोऽसुराः ॥४८॥
 नागाश्च द्विरदा ज्ञेयाः पन्नगाश्च क्वचिन्मताः । गन्धर्वश्च तथा वायुः क्वचित्स्याद् देवगायनः ॥४९॥
 ताक्षर्यो हयः समुद्दिष्टस्ताक्षर्यश्चापि पतत्रिराट् । बालेयानसुरानाहुर्बालेयाश्च क्वचित् खरान् ॥५०॥
 तृणी वनस्पतिः प्रोक्ता क्वचिदार्द्राश्च कथ्यते । शिखरी वृक्ष उद्दिष्टः शिखरी पर्वतः स्मृतः ॥५१॥
 द्विजो विप्रश्च दन्तश्च द्विजः पक्षी निगद्यते । चौरो मलिम्लुचो ज्ञेयो वातश्चापि मलिम्लुचः ॥५२॥
 आत्मजं रक्तमुद्दिष्टं, सुतः कामस्तथैव च । कीनाशो मृतको ज्ञेयः कीनाशश्चापि राक्षसः ॥५३॥
 कीनाशोऽग्निः कृतघ्नश्च कृपणो यम एव च । कीनाशः कर्षको ज्ञेयः कीनाशश्च वृकोदरः ॥५४॥
 अवदातं प्रधानं स्यादवदातं च पाण्डुरम् । ज्योतिर्लोकचनमुद्दिष्टं ज्योतिर्नक्षत्रमुच्यते ॥५५॥
 ज्योतिश्च गदितो वह्निः काव्येषु मुनिपुङ्गवैः । प्रधानं सज्जनं ज्ञेयं प्रधानं श्वेतमुच्यते ॥५६॥
 अवदः संवत्सरो ज्ञेयो मेघश्चापि क्वचिन्मतः । बलाहका महामेघाः शिखरी च बलाहकः ॥५७॥
 तोयदं जलदं प्राहुस्तोयदं कथ्यते घृतम् । जीमूतश्च मतो नागो जीमूतः क्वचिदम्बुदः ॥५८॥
 पौलस्त्यं तु मतं युद्धं पौलस्त्यं पौरुषं विदुः । शुचिकृद्रजकश्चैव प्रोक्तो नित्यं वुधं रसः ॥५९॥
 पर्जन्यं जलदं प्राहुः पर्जन्यं तु शतक्रतुः । शिलीमुखाः स्मृता वाणा भ्रमराश्च शिलीमुखाः ॥६०॥
 लेखा सीमेति विज्ञेया लेखा चित्रकृती मता । अम्बरीषं क्वचिद्भ्राष्ट्रं क्वचिद्युद्धं निगद्यते ॥६१॥
 पुस्त्वं चापि मतं युद्धं पुस्त्वं पौरुषमुच्यते । विद्वांसोऽरिपवो ज्ञेया विद्वांसस्त्वसवो मताः ॥६२॥
 मायाऽविद्येति विज्ञेया क्वचिन्माया तु सांवरी । मधु द्राक्षीति विज्ञेया क्वचित्स्थानमधु माक्षिकम् ॥६३॥
 मधु चाम्बु समाख्यातं सुरा च मधुसंज्ञका । खं रंध्यमिति विज्ञेयं खं गृहं नभ एव च ॥६४॥
 खमिन्द्रियमिति ध्यातं खं च नक्षत्रमुच्यते । धार्तराष्ट्रा महाहंसा धृतराष्ट्रमुताः क्वचित् ॥६५॥
 प्रभाकरो मतः सूर्यो वह्निश्चापि प्रभाकरः । सितं शुक्लमिति ज्ञेयं सितं वद्धं प्रचक्षते ॥६६॥
 असितं कृष्णमित्युक्तं अशितं भक्षितं स्मृतम् । वभ्रुस्तु नकुलो ज्ञेयः पाण्डवो नकुलस्तथा ॥६७॥
 त्रिशङ्कुमाहुर्मार्जारमृषिश्चापि तथेष्टते । यमस्तु वायसो ज्ञेयो यमः प्रेताधिपस्तथा ॥६८॥
 लक्ष्मणं सारसं विद्यात्तथा दशरथात्मजम् । लक्ष्म चन्द्रस्य काण्वर्यं स्याल्लक्ष्म्यः केतुः प्रकीर्तितः ॥६९॥
 केतुश्चापि मतः काव्ये लक्ष्मेति मुनिपुङ्गवैः । आरुणेयः स्मृतो दक्षो दक्षश्चाचेतसः क्वचित् ॥७०॥
 आशुकारी भवेद्दक्षः स्यादली तोमरः स्मृतः । आदित्यं च रविं विद्याद्दैत्यश्चाप्यदितेः सुगः ॥७१॥
 रोगो रजस्तथा रेणू रजो लोहितमुच्यते । स्कन्धो नितम्बसंज्ञः स्थान्निताम्बं जघनं तटम् ॥७२॥
 हेम वस्त्विति विज्ञेयं वसु तेजो निगद्यते । सारङ्गं चातकं प्राहुः स्वर्णं चापि सितासितौ ॥७३॥
 रम्भाश्च कदलीः प्राहु रम्भा स्वर्गाङ्गना मता । श्रावाणो गिरिजाः प्रोक्ता मेघाश्चापि मनीषिभिः ॥७४॥

..... निगद्यते । औषणं रसमुद्दिष्टमृतं सत्यमपि यवचित् ॥७५॥
 अक्ष आत्मेति विज्ञेयः केचिदाहुर्विभीतकम् । ज्ञेयमिन्द्रियमक्षं च शाकटं कर्प एव च ॥७६॥
 अक्षं च पाशकं विद्याद्वयावहारिकमेव च । पद्ममिन्द्रियमित्युक्तं पद्मं तामरसं विदुः ॥७७॥
 चैत्यमायतनं प्रोक्तं नोडमायतनं तथा । पुष्पं लोहितमुद्दिष्टं पुष्पं च कुसुमं तथा ॥७८॥
 बाजी तुरङ्गयो ज्ञेयो बाजी श्येनो विहङ्गमः । विष्णवन्त्रसिंहनण्डकचन्द्रादित्यास्तु वानरान् ॥७९॥
 वभ्रुशिवानिलहयान् हरीनिच्छन्ति कोविदाः । पुरुषध्वजलिङ्गेषु हयभूषणलक्ष्मण ॥८०॥
 रामशेषायनोन्नेषु ललामं नवसु स्मृतम् । शुक्रा स्मृताऽक्षिदोषोना लवली मञ्जरी तथा ॥८१॥
 वक्रवक्रः शुक्रो ज्ञेयः कोकिला वचनप्रिया । पुलिनं जलविच्छेदः पङ्कजं स्यात्कुशेशयम् ॥८२॥
 रतं पापमिति ज्ञेयं सत्वरं शीघ्रमुच्यते । पिशङ्गं रोचनाभं स्यान्मेचकस्तिलको मतः ॥८३॥
 ललाटेऽवस्थितं चित्तं विद्वद्भिस्तिलकं मतम् । परिचयं च कटकं निकपस्तु कपो मतः ॥८४॥
 नानारत्नैरुपचिता मञ्जूप रागिणी स्मृता । दिनकृद्वाजिसिंहेषु केसरित्वं विधीयते ॥८५॥
 अव्यक्तो मधुरः शब्दः कल इत्यभिधीयते । अलातमुल्मुकं ज्ञेयं छेदो नाम भयङ्करः ॥८६॥
 भावः शृङ्गारमाधुर्यं भावोऽवस्थाप्ररूपणम् । विलासः कामजो दोषस्तदेव ललितं मतम् ॥८७॥
 उत्तमाङ्गं विना देहं कवन्धं चेति शस्यते । शिरसो वेष्टनं यद्वं तदुष्णीषं निगद्यते ॥८८॥
 आहतं समवीर्यं स्यान्निविडं पीडितोन्नतम् । मण्डूको भेकसंज्ञः स्याद्वर्याभूश्चातको मतः ॥८९॥
 शिवा पिङ्गवती ज्ञेया विशालं सवलं मतम् । दुश्चर्ना क्षिपिविष्टः स्यात्कर्पकस्तु कृषीबलः ॥९०॥
 कन्याजातश्च फानीनो पण्डः क्लीब इति स्मृतः । उत्कृष्टः श्वसुरः स्यातां म्लिष्टमव्यक्तवाचकम् ॥९१॥
 रदतो हस्तिवन्तः स्याद्दानं कटकसंज्ञितम् । तोदनं चाङ्कुशं विद्यादालानं हस्तिवन्धनम् ॥९२॥
 घनाघन इति ख्यातः शास्त्रेण्वधिकपौरुषः । अपाचीनं मनोज्ञं च बुद्धिर्ज्ञेया तु शेमुषी ॥९३॥
 अर्कस्तु पादपे ज्ञेयो नदी स्यात्फेनवाहिनी । अश्वारोहो मरुद्यानोऽश्वानां हृदये ध्वनिः ॥९४॥
 आक्रान्त इति विज्ञेयः खुराश्च शफसंज्ञिताः । आममासं भवेत्कव्यं पक्वं पिशितमुच्यते ॥९५॥
 शुष्कं तु विरसं ज्ञेयं मृष्टं सरसमुच्यते । शङ्खजं शुक्तिजं चैव वाराहं तिमिमौक्तिकम् ॥९६॥
 वंशावाशीविषान्नागाज्जीमूताच्च तयाष्टमम् । लोकज्ञो दक्षिणो ज्ञेयो दक्षिणश्च तुरः स्मृतः ॥९७॥
 आकूतं तु मतं विद्यात्कण्टकं गहनं मतम् । आननं चाकुले नेत्रे चिकुरं चापि शस्यते ॥९८॥
 पापः श्याम इति प्रोक्तो वभ्रुस्तु कपिलो मतः । स्यविष्टं स्यादरे चैव दविष्टं द्वरमुच्यते ॥९९॥
 परमेष्ठी मतः श्रेष्ठः प्रेम प्रियमुदाहृतम् । प्रकाशः स्त्रीगूहेरक्तः शैलूप इति संज्ञितः ॥१००॥
 पदकृच्चर्मकारः स्यान्नापितस्त्वजयः स्मृतः । लावण्यमाहुर्मधुर्यं चित्रं च शुभकर्मजम् ॥१०१॥
 व्याधयश्चामयाः प्रोक्ताः पानीयं तु समुच्चयः । आधयस्तु स्मृताः प्राज्ञैश्चित्तोत्पन्ना उपद्रवाः ॥१०२॥
 रंहो वैगः समाख्यातः सत्रं सच्चरितं स्मृतम् । आलवालं स्मृतं सद्भिरपां वेगनिवारणम् ॥१०३॥
 चटकः कलविद्धुः स्यात्तुल्यं सवृक्षमुच्यते । किलासं पाण्डुरं ज्ञेयं दोला प्रेङ्खेति शस्यते ॥१०४॥
 मन्दिरं नगरं ज्ञेयं निलयं चापि मन्दिरम् । सहजनयनोऽगारिः प्रधनं युद्धमुच्यते ॥१०५॥
 पलाशो हरितो वण्णो मेचको नीलपिञ्जरः । उक्षाणं वृषभं विद्याल्लुलायो महिषो मतः ॥१०६॥
 उल्ला बंध्या वसा वेहत् पृष्ठोर्हो गर्भिणी हि या । व्याख्यातो मस्करो वेणुस्त्वचिसारः परिकीर्तितः ॥१०७॥
 हिलं कामं शपं चैव रोपमाहुर्मनोपिणः । कलभोऽल्पवयो नागः कलुषं चाविलं मतम् ॥१०८॥
 वृजिनं कुटिलं विद्यात्सम्राट् राजा च भूभुजो । रत्नं वज्रं विजानीयात्त्रियामा क्षणदा मता ॥१०९॥
 दीर्घं प्राशुं विजानीयात् ह्रस्वं नीचकमुच्यते । भूरि प्रभूतमुद्दिष्टमभितः सर्ववाचकम् ॥११०॥
 पवनश्चानिलो ज्ञेयः पवनश्चाधमो जनः । प्रियवाक्यो भवेदायः स्नातश्च परिकीर्तितः ॥१११॥
 आडम्बरश्च पटहो व्यञ्जनं बोधनं मतम् । विपंची वल्लकी ख्याता दीणा चैव निगद्यते ॥११२॥
 मालती सुमना ज्ञेया सुमना मुदितो जनः । वल्लरी मञ्जरी ख्याता प्रपाऽप्याला प्रकीर्तिताः ॥११३॥

आयुनिरुच्यते तोयं तेन जीवति पद्मकम् । तस्य पत्राक्षिमानेन रामो राजीवलोचनः ॥११४॥
 उत्कृत्य कवचं देहादसृग्दग्धं च यत्पुरा । इन्द्राय दत्तवान्कर्णस्तेन वैकर्त्तनः स्मृतः ॥११५॥
 तीक्ष्णश्चैव प्रचण्डश्च वृको नामानलो मतः । स पाण्डवस्य उदरे तेन भीमो वृकोदरः ॥११६॥
 यस्य श्रुतिमुखा वाणी पुष्प-श्लोकः स उच्यते । यः खेदो चानिवर्त्ती न युद्धशौण्डः स उच्यते ॥११७॥
 महासंसर्गसङ्घातं महेष्वासं प्रचक्षते । स्वविक्रमैस्तापयेच्च परं...यूथं तापयेत् ॥११८॥
 यूथं तापयेद्यस्तं विज्ञेयश्च स यूथपः । तस्मादपि च यो वर्यः स तु यूथपयूथपः ॥११९॥
 सिंहान्नितान्तसौवीरः स नृसिंह इति स्मृतः । ये हि स्पष्टप्रवक्तारो मतास्ते व्यक्तवादिनः ॥१२०॥
 यो यमित्थं च नाम्नाति स कीनाश इति स्मृतः । योऽप्रबुद्धोऽल्पबुद्धिश्च स तु मन्द इति स्मृतः ॥१२१॥
 उपकारं तु यो हन्ति स कृतघ्न इति स्मृतः । हर्षे गर्वे सुखे खेदे वृद्धौ च प्रतिभासते ॥१२२॥
 स्नेहभाग्यक्षये चैव मन्दशब्दो निगद्यते । नातीत्य वर्तते यत्र तदध्यात्मं प्रचक्षते ॥१२३॥
 चेतसश्च समाधानं समाधिरिति गद्यते । सर्वक्लेशविनिर्मुक्तो स हि दान्त इति स्मृतः ॥१२४॥
 निर्ममो निरहङ्कारो विज्ञेयः छिन्नसंशयः । प्रदाता देशकालज्ञः समाधिस्थः स उच्यते ॥१२५॥
 मुखरोऽल्पमतिर्यस्तु सक्रोधश्चैव कीटकः । वृत्तिर्यत्र तु गृह्यानां परोक्षे बहिः तत्क्रिया ॥१२६॥
 आहारव्यवहारेषु सा प्रीतिर्निरूपस्करा । परस्परं स्वदारेषु सतां येषां प्रवर्तते ॥१२७॥
 विश्वम्भात्रप्रणयाद्वापि सा प्रीतिर्निरूपद्वा । यशः ख्यातिरिति प्रोक्तं तद्योगात्प्राहुश्च्यते ॥१२८॥
 कीर्तिख्यातियशयोगाद् भगवन्निति चोच्यते । प्रियदानेषु यः शुद्धः स उदार इति स्मृतः ॥१२९॥
 रजस्वला तु या नारी सा चोदक्या प्रकीर्तिता । प्रीतिर्भावक्रिये स्वच्छरक्षालिङ्गितनुं विपुम् ॥१३०॥
 तेजो रेतसि दीप्तौ तपो हि स्याद् वृषार्थकः । योऽन्यजातो हनो जीवः स शरारु इति स्मृतः ॥१३१॥
 मिथ्यादृष्टिरहंमानी नास्तिकः सः प्रकीर्त्तितः । कामः क्रोधश्च वै पूर्वं लोभोऽस्तयं च मध्यमे ॥१३२॥
 अन्ते मोहो विषादश्च यस्य ज्ञेयः स षड्वदः । अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्त्तरि गोलकः ॥१३३॥
 अनयोर्योऽन्नमश्नाति स कुण्डाशी निगद्यते । भ्रूणस्त्री गर्भिणी बाला ब्राह्मणी बह्वर्जो विनी ॥१३४॥
 परचित्ते यद्वीयान् योऽज्येष्ठपत्नीं परामृशन् । यः पश्चिमश्च ज्येष्ठोऽपि परचित्तः स उच्यते ॥१३५॥
 पुष्पजं क्षोमजं चर्मकोशजं भर्मजं तथा । गुणजं च समुद्दिष्टं तदभेदा वस्त्रजातिषु ॥१३६॥
 बिम्बारक्तधरा या स्त्री बिम्बोष्ठीं तां विनिर्दिशेत् । या स्यात् संक्रीडनपरा ललना तां विनिर्दिशेत् ॥१३७॥
 दूर्वाकाण्डप्रतीकाशा कुम्भौ यस्यास्तनू कुचौ । सर्वरूपविविक्ताङ्गी सा भवेद्वरवर्णिनी ॥१३८॥
 लावण्ययुक्ता या नारी ललितां तां विनिर्दिशेत् । या मत्ता मत्तवज्ज्योतिः सा ज्ञेया मत्तकाशिनी ॥१३९॥
 भूरिश्च भूरिमुद्दिष्टं अन्नं श्रव इति स्मृतम् । भूरि श्रवो ददातीह तस्माद् भूरिश्रवो हि सः ॥१४०॥
 चतुष्पाद्विशतिभुजो लोहितश्रीव एव च । निसर्गाद्विहणात्कूराद्रवणाद् रावणः स्मृतः ॥१४१॥
 रोषणा या भवेन्नारी भामिनीं तां विनिर्दिशेत् । न्यग्रोधलक्षणं विद्याद्वाना परिमण्डलम् ॥१४२॥
 ताभ्यामुपेता वनिता न्यग्रोधपरिमण्डला । तत्तुल्ये चाक्षिणी यस्याः सा स्त्री राजीवलोचना ॥१४३॥
 वर्णप्रमाणनिर्धोऽच्छिन्नसंपद्भिरन्वितः । राजीवमन्ये शंसन्ति स्निग्धवर्णं सितसितम् ॥१४४॥*
 किञ्चिदुत्तरतद्योगात्सीता राजीवलोचना । बलिभिर्यास्त्रिभिर्युक्ता शङ्खकण्ठी उदाहृता ॥१४५॥
जराकराकारं स्यन्दनाग्रमिवाग्रतः । वस्त्वे...ति तज्ज्ञेयं तस्यैवाग्रं..... ॥१४६॥
तं मर्मसंयुक्तं तत्तयालिनमुच्यते । ग्रहणे धारणे सामे वाहने धर्मसंयुता ॥१४७॥
 रमणे क्रीडने सङ्गे भार्या नाम प्रवर्त्तते । मूढतायां सविद्यायां सप्ताश्वत्स्वंशुमालिनी ॥१४८॥
 विषमाक्षदरा एते ज्ञेयाः तैः विसंस्थिताः । कोटरस्था इति ज्ञेयाः सर्पकीटखगादयः ॥१४९॥
 आताम्रपल्लवो यस्तु वृक्षाणामचिरोद्गमः । ॥१५०॥
 सौकुमार्यं किसलयं कोमलत्वं च तत्स्मृतम् । शतानां च चतुर्हस्तं नत्वं तदिहसंज्ञितम् ॥१५१॥

कुम्भो बाहुः प्रस्थः समं नत्व इति विधीयते । विपिनं शून्यमित्युक्तं विपिनं गृहमेव च ॥१५२॥
रक्म वण्णं च घामं च दर्शनीयार्थवाचकः । सर्वार्थश्चाप्युवर्णश्च पानीयं शीतमुच्यते ॥१५३॥
नीहारं शीतमित्युक्तं प्रदोषान्तो निशीथकः । ॥

इति महाकविश्रीधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णे अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीयपरिच्छेदः ॥२॥

एकाक्षरी-कोषः

विश्वाभिधानकोशानि प्रविलोक्य प्रभाष्यते । अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका ॥१॥
अः कृष्णः आः स्वयंभूरिः काम ई श्रीरुरीश्वरः । ऊ रक्षणः ऋ ऋ ज्ञेयी देवदानवमातरो ॥२॥
लृर्देवसूनुर्वराही भवेदेविष्णुरः शिवः । ओर्वेधा ओरनंतः स्यादं ब्रह्म परमेश्वरः शिवः ॥३॥
को ब्रह्मात्मप्रकाशार्कः कः स्याद्वायुयमानिपु । कं शीर्षं सुमुखे कुस्तु भूमी शब्दे च किं पुनः ॥४॥
स्यात्क्षेपनिन्दयोः प्रश्नं वितर्कं च खमिन्द्रिये । स्वर्गं व्योम्नि मुखे शून्ये सुखे संविदि खो रवी ॥५॥
गस्तु गातरि गंधर्वं गा गीतो गो विनायके । स्वर्गे दिशि पशो वज्रे भूमाधिपदी जले गिरि ॥६॥
घस्तु सुघटीशे घा किंकिण्या च घुघ्वनी । ङं मञ्जने डो वृष भेजने चः चन्द्रचौरयोः ॥७॥
चःसूर्ये कच्छपे छं तु निमले जस्तु जेतरि । विजये तेजसि वाचि पिशाच्यां जिः जवेऽपि च ॥८॥
झो नष्टे रवे वायी जो गायने घर्घरघ्वनी । टं पृथिव्यां करटे च ठो ध्वनी ठो महेश्वरे ॥९॥
शून्ये वृहद्वनौ चंद्रमंडले ङं शिवे ध्वनी । ढो भये निर्गुणे शब्दे ढक्कायां णस्तु निश्चये ॥१०॥
ज्ञाने तत्तत्स्करे ऋडपुच्छयोस्ता पुनर्दया । थो भीत्राणे महीधे दं पत्न्यां दा दातृदानयोः ॥११॥
वन्धे च घा गुह्ये केशे घातरि धीमंतो । धूर्भारकंपचितासु नो नरे वन्धुवृद्धयोः ॥१२॥
निस्तु नेतरि नुः स्तुत्यां नोः सूर्ये पस्तु पातरि । पावने जलयाने च फो झंझाजलफेनयोः ॥१३॥
भाः कांतो भूर्भुवः स्थाने भीर्भये मः शिवे विधौ । चंद्रे शिरसि मा माने श्रीमात्रोर्वारणेऽव्ययम् ॥१४॥
मुः पुंसिर्वंधने यस्तु मातरिश्वनि यं यशः । यास्तु यातरि खट्वांगे याने लक्ष्म्यां च रो घृती ॥१५॥
तीव्रे वैश्वानरे कामे राः स्वर्णे जलदे ध्वनी । री भ्रमे रुर्भये सूर्ये ल इंद्रे चलनेपि च ॥१६॥
लं तैले लीः पुनः श्लेषे ली भये वो महेश्वरे । वः पश्चिमदिशास्वामी व इवार्थे स्मरेऽप्ययम् ॥१७॥
शं शुभे शा तु शोभायां शो शयने शु निशाकरे । षः शिल्लटे पुनर्गर्भे विमोक्षे षः परोक्षके ॥१८॥
सा लक्ष्म्यां हो निपाते च हुस्ते दारुणि शूलिनि । क्षं क्षेत्ररक्षसीत्युक्ता माला प्राक्सूरिसम्मता ॥१९॥

इति एकाक्षरी नाममाला समाप्ता ॥छ॥

धनञ्जय-नाममालागतशब्दानु क्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ			अत्यर्थ	८३	१७३	अन्तक	७१	१४५
अंशु	२३	४५	अदभ्र	९०	१९१	अन्तरिक्ष	२८	५३
अंशुक	५९	११७	अदितिसुत	३०	५६	अन्त्य	६३	१२४
अंस	५०	१०१	अद्भुत	८४	१७४	अन्त्यकाश्यप	५८	११५
अंहस्	६६	१३०	अद्रि	४	८	अन्तेवासिन्	३	४
अंहिप	५	११	अधम	{ ७३	१५४	अन्धकार	७२	१४८
अकूपार	१२	२५	अधर	{ ८१	१६८	अन्वय	६३	१२४
अक्ष	{ ६१	१२२	अधिप	५०	१००	अन्ववाय	"	"
अक्षि	{ ६५	१३०	अधोक्षज	५	१०	अन्वह	७९	१८९
अक्षौहिणी	४९	९९	अध्वन्	३७	७५	अन्वित	७७	१६१
अखिल	४३	८६	अनन्तर	७८	१६२	अन्वीत	"	"
अग	८८	१८७	अनन्तात्मन्	६९	१४१	अह्नाय	७६	१५७
अग्न	५	११	अनन्यज	३६	७३	अप्	७	१५
अग्नि	३३	६४	अनभ्राट्	३९	७७	अपघन	१९	३८
अग्निसूनुः	३४	६६	अनल	८	१८	अपत्य	१९	३९
अग्रज	{ २१	४३	अनारत	३३	६५	अपाङ्ग	४९	९९
अग्रिम	{ ५७	११४	अनालम्ब	८९	१८९	अपारवार	१३	२५
अज	७५	१५६	अनिमिष	६७	१३५	अप्राज्ञ	८०	१६६
अजं	६६	१३०	अनिमेष	८	१७	अप्सरानाथ	३०	५९
अङ्ग	८०	१६५	अनिल	३२	६२	अवला	१५	३१
अङ्गना	१९	३८	अनीक	३२	६२	अवज	२७	५१
अङ्गराग	१४	३०	अनुकम्पा	४३	८६	अब्धि	१२	२५
अङ्गीकृत	६०	११९	अनुक्रोश	५४	११०	अभय	९१	२००
अङ्घ्रि	९१	१९७	अनुग	"	"	अभियोग	८४	१७४
अङ्घ्रिघ्न	५१	१०३	अनुचर	१४	२९	अभिराम	८५	१७५
अङ्घ्रिघ्नप	"	११	अनुज	"	"	अभिरूप	५५	१११
अचल	५	११	अनुजा	२१	४२	अभिलाष	७७	१६०
अज	४	८	अनुजीविन्	२१	४३	अभिलाषुक	८४	१७५
अजर्य	३६	७२	अनुरहस्	१४	२९	अभिसारिका	१७	३५
अजल	९१	१९७	अनेकप	८४	१७५	अभीक्ष्ण	८८	१८५
अजातरिपु	८९	१८९	अनेहस्	४५	८८	अभ्यर्ण	६९	१४१
अजनात्मज	७१	१४६	अनोकह	६२	१३२	अभ्यास	{ ६९	१४१
अटनी	३३	६३	अन्त	५	११	अभ्र	{ ८६	१८५
अटवी	४०	७९	अन्तःकरण	५	११	अमर	{ ८	१८
अत्यन्त	६	१३		५	९		{ २८	५३
	८३	१७३		४१	८१		३०	५६

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अमर्ष	५४	१०९	अवरज	२१	४२	आत्यन्तिक	७७	१६१
अमल	८४	१७३	अवलग्न	६७	१४१	आदेश	७४	१५५
अमा	७७	१५९	अवसथ	६६	१३३	आनन	४९	९८
अमित्र	२२	४४	अवसान	८२	१७१	आनन्त्य	९०	१९१
अमृत	६२	१२२	अवसर्प	८६	१८२	आनन्द	५४	१०९
अमृतोद्भव	१५	२५	अवश्याय	८५	१७९	आपगा	१२	२४
अम्बर	{ २८ ५९	{ ५३ ११७	अविहूर	६९	१४२	आभरण	६०	११९
अम्बु	७	१५	अशनि	९	१९	आद्य	५७	११४
अम्बुजानन	६८	१३७	अश्लील	७५	११५	आम्नाय	६३	१२४
अम्बुधि	८	१६	अश्व	२८	५२	आयुध	४२	८३
अम्भस्	७	१५	अष्टपात्	४६	९०	आर्या	१७	३४
अयस्	८२	१७२	अष्टापद	{ ४६ ४७	{ ९० ९३	आलम्ब्यमुख	६७	१३५
अरण्य	६	१३	असि	४३	८५	आलय	६६	१३३
अरण्यानीचर	७	१४	असित	७२	१४८	आलम्ब्य	७७	१६०
अरम्	८३	१७२	असुपति	१८	३७	आली	२०	४१
अरविन्द	११	२१	असृज्	८२	१८८	आवलि	१३	२७
अराति	२२	४४	अस्तुकार	९१	१९६	आवास	६६	१३३
अरि	२२	४४	अस्त्र	४२	८३	आवृत्ति	९०	१९४
अरुण	७२	१५०	अहंयु	८१	१६८	आशय	५१	११०
अर्क	२६	४९	अहन्	२६	५०	आशा	३२	६१
अर्चि	२३	४५	अहन्तोक्ति	५४	११०	आशु	८३	१७२
अर्जुन	{ ४७ ७० ७१	{ ९३ १४३ १४७	अहि	६४	१२८	आशुशुक्षणि	३३	६४
अर्णव	१५	२६	अहित	२२	४४	आश्चर्य	८४	१७४
अर्णस्	७	१५	अहो	८४	१७४	आसन	{ ५६ ६७	{ ११३ १३५
अर्थ	४७	९५	आ			आसन्दी	५६	११३
अर्भक	२०	४०	आकालिकी	९	१९	आसन्न	६९	१४१
अयंमन्	२६	४९	आकाश	२८	५३	आसव	६१	१२१
अर्वन्	२७	५२	आकूत	४१	८१	आस्थानाधिपति	५६	११२
अर्हत्	५८	११६	आखण्डल	३०	५७	आस्पद	६६	१३३
अलकानिलय	४८	९६	आगम	३	४	आस्य	४९	९८
अलि	४२	८२	आगार	६६	१३३	आस्वनित	४१	८१
अलिप्रभ	७२	१४८	आचार्य	५५	१११			
अलीक	८८	१८६	आजि	४४	८७			
अवदात	७१	१४७	आज्ञा	७४	१५४			
अवद्य	७३	१५२	आज्य	६१	१२२	इन	{ ५ २६	{ १० ५०
अवधि	१३	२६	आतन	७६	१५८	इन्दिरा	३८	७६
अवनि	३	५	आतपत्र	९०	१९४	इन्दीवर	११	२१, २२
			आताम्र	७२	१४९	इन्दु	२३	४६
			आत्मज	१९	३९	इन्दुमीलि	३५	६९
			आत्मभू	३६	७३			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
इन्द्र	{ ५ ३०	१० ५७	उद्योग	८४	१७४	ऐक्ष्वाकु	५७	११४
इन्द्रजित्	६५	१२८	उद्वह	२०	१०	ओ		
इन्द्रिय	६५	१२९	उद्वाह	८९	१८९	ओष	{ ६३ ६९	१२५ १४०
इभ	४५	८८	उन्नत	७६	१५८	ओष्ठ	५०	११०
इरा	६१	१२०	उपकण्ठ	१३	२६	ओषधीश्वर	२४	४७
इला	३	६	उपत्यका	४	९	क		
इषु	३९	७८	उपमा	६७	१३६	क	{ ७ ३६ ५२	१५ ७३ १०४
इष्ट	१८	३७	उपमान	६८	१३७	ककुप्	३२	६१
इष्टा	१६	३३	उपल	८२	१७०	कक्ष	६	१३
ईरित	५२	१०४	उपांशु	८४	१७५	कक्षा	६७	१३६
ईशान	५	१०	उपेन्द्र	३७	७४	कच	९०	१९५
ईशितृ	५	१०	उभय	२	२	कञ्चुक	९०	१९४
ईश्वर	५	१०	उमापति	३५	७०	कटाक्ष	४९	९९
ईहामृग	६५	१२७	उरग	६४	१२८	कटि (कटी)	५१	१०३
उ			उररीकृत	९१	१९६	कटिसूत्र	{ ६०	१२०
उग्र	{ ३५ ८७	७० १८४	उरस्	५१	१०२	कटीसूत्र		
उच्च	७६	१५८	उर्वरा	३	६	कठिन	७५	१५५
उच्चावच	"	१५८	उर्वी	३	६	कठोर	"	"
उच्चैस्	"	१५८	उल्का	९	१९	कण	३९	७८
उच्छिन्न	"	१५८	उल्वण	८७	१८४	कण्ठ	५०	१००
उडु	२५	४८	उष्ट्र	४६	९१	कण्ठीरव	४५	९०
उत्कट	८७	१८४	उष्णवारण	९०	१९४	कदन	४४	८७
उत्कलिका	१३	२७	उस	२३	५५	कदम्बका	६९	१३९
उत्तमाङ्ग	५२	१०४	ऊ			कद्वद	८०	१६६
उत्तराशापति	४८	९६	ऊरीकृत	९१	१९६	कनक	४७	९३
उत्तानशय	२०	४०	ऊर्जस्	२३	४६	कनीयस्	२१	४३
उत्पल	११	२२	ऊर्जस्विन्	९०	१९३	कन्दर्प	४२	८३
उत्प्रेक्षा	६८	१३८	ऋ			कपर्दिन्	३५	७०
उत्सव	५४	१०९	ऋक्ष	२५	४८	कपालिन्	३५	७०
उत्ताह	८४	१७४	ऋत	८७	१८२	कपि	६	१२
उदन्वत्	१३	२७	ऋवि	२	३	कपिध्वज	७०	१४३
उदर	५१	१०२	ए			कवरी	९१	१९५
उदञ्चित्	६२	१२३	एकपत्नी	१७	३४	कमन	८५	१७७
उद्गम	४०	८०	एकपिङ्गल	४८	९५	कमनीय	८५	"
उद्गीव	८१	१६८	एकागारिक	८१	१६९	कमल	१०	२०
उद्गत	८१	१६८	एनस्	६६	१३१	कम्र	८५	१७७
उद्गर	८१	१६८	ऐ			कर	{ २३ ५०	४५ १०१
उद्यम	८४	१७४	ऐक्षव	४२	८३	करण	६५	१२९
			ऐरावणाधिप	३०	५९			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
करभ	४६	९१	कामिन्	१८	३७	कुमुद	११	२२
करवालक	४३	८५	कामिनी	१४	३०	कुमुदप्रिय	२४	४७
कराङ्गुलि	५०	१०१	कामुक	१८	३७	कुमुदविप्रिय	२७	५१
करिन्	४५	८८	कामुकी	{ १५	३१	कुम्भिन्	४५	८८
करुण	५४	११०		{ १७	३६	कुम्भिनी	३	६
करेणु	४५	८९	काय	१९	३८	कुम्भशत्रु	८४	१४५
कर्कश	७५	१५४	कार्तस्वर	४७	९४	कुल	६३	१२४
कर्ण	४९	९८	कार्तिकेय	३४	६७	कुलटा	१७	३५
कर्णशूलिन्	७०	१४४	कार्मुक	४०	७९	कुल्या	१६	३२
कर्दम	१०	२०	कार्मुकिन्	७०	१४३	कुवलय	११	२२
कर्पूर	५९	११८	काल	{ ७१	१४५	कुश	७	१५
कलङ्क	७३	१५२		{ ७२	१४८	कुशलिन्	७९	१६४
कलत्र	१६	३२	कालशेय	६२	१२३	कुसुम	४०	८०
कलवीत	४७	९४	काली	७३	१५०	कूपार	१२	२५
कलभ	५२	१०५	काश्यप	५८	११५	कूपसि	९०	१९४
कलम	८१	१६७	काहल	७५	१५५	कुच्छू	८८	१८३
कलह	{ ४४	८७	काण्डा	३२	६१	कृतान्त	{ ३	४
	{ ८९	१८८	काण्डापाल	३२	६१		{ ७१	१४५
कलापिन्	६३	१२६	काण्डाम्बर	३२	६१	कृतिन्	७९	१६४
कलामृत	२४	४७	किन्दन्ती	७४	१५४	कृत्स्न	८८	१८७
कलिल	६६	१३१	किंकर	१४	२९	कृपण	८४	१७५
कलेवर	१९	३९	किंचन	७६	१५७	कृपा	५४	११०
कल्माषी	७३	१५०	किजलक	{ ७३	१५१	कृपाण	४३	८५
कल्याण	९१	१९८		{ ७३	१५२	कृश	८२	१७१
कल्लोल	१३	२७	कितव	७९	१६१	कृशानु	३३	६५
कवच	९०	१९४	किरण	२३	४५	कृष्ण	{ ३९	७४
कष्ट	८८	१८६	किरात	७	१४		{ ७२	१४८
कस्तूरी	५९	११७	किरीटिन्	७०	१४४	केकर	४९	९९
कस्वर	४७	९५	किल्बिष	६६	१३१	केकिन्	६३	१२५
काञ्चन	४७	९३	कीचकशत्रु	७१	१४५	केतु	४३	८४
काञ्ची	६०	११९	कीर्ति	७४	१५३	केवलिन्	५८	११६
काण्ड	३९	७८	कीनाश	८४	१७५	केश	९०	१९५
कादम्बरी	६१	१२०	कु	३	६	केशवन्धन	९१	"
कानन	६	१३	कुक्कुर	४६	९२	केशरिन्	४५	९०
कानीनजनक	२७	५१	कुक्षि	५१	१०२	केशव	३७	७४
कान्त	{ १८	३७	कुङ्कुम	१९	११७	केशवाग्रज	७०	१४२
	{ ८५	१७७	कुच	५१	१०२	केशिन्	३६	७५
कान्ता	१६	३३	कुवेर	४८	९५	कैरव	११	२२
कान्तार	६	१३	कुब्ज	७६	१५८	कोक	६४	१२७
कान्तिमत्	२४	४७	कुमार	३४	६७	कोकनद	१०	२१
काम	३९	७७						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
कोटि	४०	७९	खग	३९	७८	गुरुस्थान	६८	१३७
कोदण्डक	४०	७९	खङ्ग	४३	८५	गुलिका	४७	९४
कोप	५४	१०९	खण्ड	८९	१८७	गुह	३४	६७
कोमल	७५	१५५	खन्कृत	५३	१०६	गूढचर	८१	१६९
कोविद	७९	१६४	खरदण्ड	१०	२१४	गृध्नु	८४	१५५
कोष	८९	१८८	खल	२२	४४	गृह	{ १६	३२
कोशेयक	४३	८५	खला	१७	३५		{ ६६	१३२
कौतुक	८४	१७४	खलु	{ ७६	१५९	गेह	६६	१३२
कान्तेय	७१	१४६		{ ८४	१७३	गेहिनी	१६	३२
कौमुदी	२४	४७	खात	६७	१३४	गो	{ ३	६
कीरव्य	७१	१४६	खेचर	२८	५४		{ २३	४५
कौलेयक	४६	९२	खेद	५४	१०९		{ ७९	१६३
कौशिक	३०	६०	खेय	६७	१३४	गोत्र	८०	१६५
कौसुम	७३	१५१	ख्याति	७४	१५३	गोत्रशत्रु	३०	५८
क्रतु	५६	११२		ग		गोधा	१३	२८
कैकृत	५३	१०७	गगन	२८	५३	गोपुर	६७	१२४
क्रोड	४६	९१	गङ्गा	{ ३६	७१	गोमण्डल	७८	१६२
क्रोध	५४	१०९		{ ७८	१६२	गोमिनी	३८	७६
कांच	५३	१०७	गज	४५	८८	गोलाङ्गूल	६	१२
क्रौंचभेदिन्	३४	६७	गणिका	१७	३६	गोविन्द	३७	७६
क्षणे	७६	१५७	गन्धवाह	३२	६२	गौतम	५७	११४
क्षणदा	२५	४८	गभस्ति	२३	४५	गौर	७२	१४०
क्षगरुचि	९	१९	गरुड	६५	१२८	गौरी	७३	१५०
क्षतज	८९	१८८	गरुत्मत्	६५	"	ग्रन्थ	३	४
क्षपाकर	२६	४८	गर्ज	५२	१०५	ग्रहाधिप	२६	४९
क्षमा	३	५	गती	८९	१९०	ग्रामशार्दूल	४६	९२
क्षाम	८२	१७१	गवित	८१	१६८	ग्रीवा	५०	१००
क्षिति	३	६	गल	५०	१००	ग		
क्षिपा	२५	४८	गव्या	४१	८२	घन	{ ८	१८
क्षिप्र	८३	१७२	गहन	{ ६	१३		{ ८२	१७०
क्षीर	६२	१२२	गहर	{ ८८	१८३	घनसार	५९	११८
क्षीण	८२	१७४	गह्वरी	८९	१९०	घनाघन	८	१८
क्षुण्ण	७९	१६४	गाण्डीविन्	३	५	घृष्टि	४६	९१
क्षुरप्र	३९	७८	गिर्	७०	१४३	घोर	८७	१८४
क्षेम	९१	१९८	गिरि	५२	१०४	घोष	७८	१६२
क्षोणी	३	६	गिरीश	४	८	घ्राण	५०	१०२
क्षमा	३	"	गोर्वाणेश	३५	६९	च		
			गुण	३०	५८	चक्रघर	३८	७६
ख	{ २८	५३	गुणनिका	{ ४१	८२	चक्रवाक	२७	५१
	{ ६५	१२९	गुणावलि	{ ६०	११९	चक्राङ्ग	६३	१२५
			गुरु	८८	११९	चण्डी	१६	३३
				७४	१५३	चतुर	७९	१६५
				६२	१२३			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
चतुर्मुख	३६	७२	जननी	१८	३८	तट	{ ४	९
चतुष्पात्	७९	१६३	जनपद	४८	९७	{ १३	२६	
चन्द्र	२४	४७	जनान्त	४८	"	तटी	४	९
चन्द्रमस्	२४	"	जनि	१६	३२	तटोच्छ्वास	१३	२७
चमू	४३	८६	जनोदाहरण	८४	१५३	तडित्	९	१८
चमूर	४६	९०	चक्षु	५१	१०३	तडिद्वन्वा	३०	५६
चर	८६	१८२	जल	७	१५	तनि	६९	१४०
चरण	५१	१०३	जलद	५३	१०५	तनय	२०	४०
चरण्य	३२	६३	जव	८५	१७२	तनु	१९	३८
चलन	५१	१०३	जवन	३०	६३	तनुय	९०	१९४
चला	१५	३१	जङ्गल	२९	५५	तनूदरी	१५	३१
चादुकुन्	७९	१६५	जात	८१	१६७	तनूनपात्	३३	६४
चाप	४०	७९	जातरूप	४७	९३	तपन	२६	४९
चाग	८६	१८२	जातवेदस्	३३	६४	तपनीय	४७	९४
चारु	८५	१७८	जानु	५१	१०३	तपस्विन्	२	३
चिकुर	९०	१९५	जाया	१६	३२	तम	७२	१४८
चित्त	४१	८१	जाह्वी	३६	७१	तमस्	७२	"
चित्र	८४	१७४	जित्या	७०	१४२	तमोर्गि	२६	५०
चिह्न	४३	८४	जिन	५७	११२	तर	८३	१७२
चिराय	५५	१८२	जिष्णु	७०	१४३	तरंग	१३	२७
चीत्कृत	५३	१०६	जिह्वा	४६	९२	तरंगिणी	१२	२४
चीर	५९	११७	जीमूत	८	१८	तरणि	२६	४९
चूडापाश	९१	१९९	जीर्ण	{ ७६	१५६	तरवारि	४३	८५
चेतस्	४१	८१	{ ८२	१७१		तरस्विन्	९०	१९३
चेल	५९	११७	जीवन	७	१५	तरु	५	११
चोद्य	८४	१७३	जीवा	४१	८२	तस्कर	८१	१६९
चीर	८१	१७९	ज्या	४२	८२	तापस	२	३
छ			ज्यायस्	५७	११४	तामरस	१०	२०
छत्र	९०	१९४	ज्येष्ठ	२१	४३	तारा	२५	४८
छन्न	६८	१३८	ज्योति	२३	४६	तारुण्य	६२	१२४
छिद्र	८९	१९०	ज्वलन	३३	६५	तादर्थ्य	६५	१२८
छल	{ ६८	१३८				तिग्म	{ २६	४९
	{ ८९	१८८				{ ८७	१८४	
ज			झ			तिमि	८	१७
जगत्	५७	११३	झटिति	८३	१७२	तिमिर	{ ७२	१४८
जगती	३	६	झप	८	१७	{ ८७	१८४	
जघन	५१	१०३	झपकेतु	४३	८४	तिमिरारि	२६	५०
जठर	{ ५१	१०२	झपध्वज	४३	"	तीर	१३	२६
	{ ७६	१५६	झङ् कृत	५३	१०१	तीर्थ	५८	११५
जङ्	८०	१६६	त			तीर्थकर	५८	११६
जनक	१८	३८	तक्र	६२	१२३	तीर्थकृत्	५८	"

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
तीर्थंकर	५८	११६	दशमीस्थ	५४	१०८	दृष्टि	४९	९९
तीव्र	८७	१८४	दशा	६२	१२४	देव	३०	५६
तुक्	१८	३९	दस्यु	७	१४	देवानांप्रिय	८०	१६६
तुङ्ग	७६	१५८	दहन	३३	६५	देह	१९	३८
तुरग	२७	५२	दामोदर	३७	७४	देहिका	७९	१६३
तुरंगम	२७	"	दारक	२०	४०	दैत्यारि	७०	१४४
तुरासाह	३०	६०	दारा	१६	३२	दोस्	५०	१०१
तुला	६७	१३६	दारिका	१७	३६	दोष	{ २५ ५०	५० १०१
तुलाकोटि	५३	१०७	दारुण	८७	१८४	द्युति	२३	४५
तुल्य	६७	१३६	दासी	१७	३६	द्युमणि	२६	४९
तुषार	८५	१७९	दिक्-दिक्	३२	६१	द्युर्धनी	३६	७१
तुहिन	८५	१७९	दिक्पाल	३२	६१	द्युस्	{ २८ ३६	५३ ७१
तूर्ण	८३	१७२	दिगम्बर	३२	६१	द्युत	६१	१२२
तेजस्	२३	४५	दिग्गज	३२	६१	द्यौ	{ २८ ३०	५३ ५६
तेजस्विन्	९०	१९३	दिन	२६	५०	द्रविण	४७	९५
तोक	१९	३९	दिव्-दिव	{ २८ ३०	५३ ५६	द्रव्य	४७	"
तोमर	३९	७८	दिवस	२६	५०	द्राक्	७६	१५७
तोय	७	१५	दिवा	२६	५०	द्रुत	८३	१७२
तोष	५४	१०९	दिव्यवाक्पति	५८	११६	द्रुम	५	११
त्रिककुत्	४	८	दीक्षित	३	४	द्रुहिण	३६	७१
त्रिदश	३०	५६	दीधिति	२३	४५	द्वन्द्व	२	२
त्रिनेत्र	३५	६९	दीन	८४	१७५	द्वय	२	"
त्रिपयगा	३६	७१	दीप्ति	२३	४६	द्वितय	२	"
त्रिपुरारि	३५	६९	दीर्घ	८७	१८३	द्विप	४५	८९
त्रिमार्गंगा	७८	१६२	दुग्ध	६२	१२२	द्विरद	४५	८८
त्र्यम्बक	३५	६८	दुरित	६६	१३१	द्विरेफ	{ १२ ४२	२४ ८२
द			दुर्ग	६	१३	द्विष	२२	४४
दंष्ट्रिन्	४६	९१	दुर्जन	२२	४४	द्विषत्	२२	"
दक्षकन्या	३२	६१	दुष्कृत	६६	१३१	द्वेष	५४	१०९
दण्ड	४३	८६	दुष्ट	२२	४४	द्वेषिन्	२२	४४
दन्त	४	९	दुहितृ	२०	४०	द्वैत	२	२
दन्तवास	५०	१००	द्वती	१७	३५	घ		
दन्तिन्	४५	८८	दून	८२	१७१	घन	४७	९५
दया	५४	११०	दूढ	७५	१५५	घनंजय	७०	१४४
दयित	१८	३७	दृतिहरि	७८	१६३	घनद	४८	९६
दयिता	१६	३३	दृष्ट	८१	१६८	घनदाय	४८	"
दरीभृत्	४	८	दृश	४९	९९	घनुष	४०	७९
दर्शनीय	८५	१७८	दृषत्	८२	१७०	घन्वन्	४०	७९
दशनच्छद	५०	१००	दृष्ट	५४	१०८	घमनीघम	५०	१००

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
धम्मिल्ल	९१	१९५	ननांदु	२१	४३	नित्य	७७	१५९
घरणी	३	६	नन्दन	२०	४०	निदेश	७४	१५४
धरा	३	५	नभस्	२८	५३	निपुण	७९	१६४
धरित्री	३	६	नभस्वत्	३२	६३	निवोध	७३	१५२
धर्म	४०	७९	नभ्राट्	८	१८	निभ	६८	१३८
धर्मचक्रभृत्	५८	११६	नमुचिशत्रु	३०	५८	निम्नगा	१२	२४
धर्मात्मज	७१	१४६	नयन	४९	९९	नियन्त्रित	८५	१७६
धव	१४	२८	नर	१३	२८	नियामित	८५	१७६
धवल	७१	१४७	नरक	८९	१९०	नियोग	७४	१५४
धातु	८२	१७०	नलिन	१०	२०	निर्घात	९	१९
धात्री	३	५	नव	७५	१५६	निर्व्यूह	६७	१३५
धानुष्क	७	१४	नव्य	"	"	निलय	६६	१३३
धामन्	{ २३ ६६	{ ४६ १३३	नाक	३०	५६	निवसन	५९	११७
धिषणा	५५	११०	नाग	{ ४५ ६४	{ ८९ १२८	निवृत	६६	१३२
धिष्य	६६	१३२	नागरिक	८०	१६५	निवेशन	८९	१८९
धी	५५	११०	नागारि	४५	९०	निशा	२५	४८
धुनी	१२	२४	नाथ	५	१०	निशाचर	८१	१६९
धुर्य	२७	५२	नाथहरि	७८	१६३	निशान्त	६६	१३२
धूम	७२	१४८	नाथान्वय	५८	११५	निपाद	७	१४
धूर्जटि	३५	६८	नाभिज	५७	११४	निपादिन्	४५	८९
धूतं	७९	१६५	नाम	८०	१६५	निष्णात	७९	१६४
धूलि	७३	१५१	नारद	३७	७३	निसर्ग	८८	१८५
धूलिकुट्टिम	६७	१३४	नाराच	३९	७८	निस्तल	८७	१८३
धेनु	५२	१०५	नारायण	३७	७४	निस्त्रिश	४३	८५
धैर्य	८३	१७१	नारी	१४	३०	नीच	{ ७६ ८१	{ १५८ १६८
ध्वजा	४३	८४	नासा	५०	१०२	नीचैस्	७६	१५८
ध्वजिनी	४३	८६	निकट	६९	१४१	नीर	७	१५
ध्वान्तारि	२६	५०	निकर	६९	१३९	नील	७२	१४८
न			निकाय	{ ६६ ६९	{ १३३ १४०	नीलकण्ठ	६२	१२६
न	७६	१५७	निकुरम्ब	६९	"	नीलपिञ्जरी	७३	१५०
नक्तम्	२५	४८	निकेतन	६६	१३२	नीललोहित	३५	६९
नक्षत्र	२५	"	निगूढपुरुष	८६	१८२	नीलवसन	७०	१४२
नग	५	११	निचय	६९	१४०	नीलाम्बुजन्मन्	११	२२
नगरी	४८	९७	निज	८८	१८५	नीहार	८५	१७९
नद	१२	२४	नितम्ब	{ ४ ५१	{ ९ १०३	नूतन	७५	१५६
नदी	१२	"	नितम्बिनी	१५	३१	नूपुर	५३	१०७
नदीश्वरी-नदीश्वर	३६	७१	नितान्त	८३	१७३	नृ	१३	२८
नदीष्ण	७९	१६४				नृप	{ ४ १४	{ ७ २८

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
नृपक्रतु	५६	११२	परासु	५४	१०८	पाशित	८५	१७८
नेड	८०	१६६	गरिखा	६७	१३४	पाशनीत	८५	१७६
नत्र	४९	९९	परिचित	५४	१०८	पाषाण	८२	१७०
नैक	६०	१६१	परिणयन	८९	१८९	पितामह	३६	७२
नैयायिक	५५	१११	परिधि	६७	१३४	पितृ	१८	३८
न्यच्	७६	१५८	परिवाद	{ ८६ ८६	{ १८१ १८८	पिनद्ध	८५	१७६
प			परिवृढ	५	१०	पिनाकिन्	३५	६८
पक्षिन्	२९	५४	परिषत्	१०	२०	पिशित	२९	५५
पङ्क	{ १० ७३	{ २० १५२	परुष	७५	१५५	पिशुन	८१	१६८
पङ्क्ति	६१	१४०	पर्जन्य	८	१८	पिशङ्गी	७३	१५०
पटु	७९	१६४	पर्वत	४	८	पीठ	५६	११३
पट्टन	४८	९७	पल	२९	५५	पीत	७२	१४९
पण्डित	५५	१११	पल्लक	७७	१६०	पुंश्चली	१७	३५
पण्यस्त्री	१७	३६	पवन	३२	६२	पुटभेदन	४८	९७
पतङ्ग	{ २६ २६	{ ४६ ५४	पवनपुत्र	३३	६३	पुण्य	६५	१२९
पतत्रिन्	२९	५४	पवमान	३२	६२	पुण्डरीक	१०	२१
पताका	४३	८४	पवनसख	३३	६४	पुत्र	१९	३९
पति	५	१०	पशु	७९	१६३	पुनर्भू	१७	३५
पतिवल्ली	१७	३४	पांसु	७३	१५१	पुमस्	१३	२८
पतिव्रता	१७	३४	पाकशत्रु	३०	५८	पुर्	४८	९७
पत्तन	४८	९७	पाटल	७२	१४९	पुर	४८	"
पत्ति	१४	२९	पाठीन	८	१७	पुरन्दर	३०	५८
पत्नी	१६	३२	पाणि	५०	१०१	पुरन्ध्री-पुरन्धि	१६	३१
पत्रिन्	२६	५४	पाण्डु	७१	१४७	पुराण	७६	१५६
पथिन्	७८	१६१	पाण्डुर	७१	१४९	पुरी	४८	९७
पद	{ ५१ ६६ ६८	{ १०३ १३३ १३८	पाताल	८९	१९०	पुरु	५७	११४
पदग	१४	२९	पाथस्	७	१५	पुरुष	१३	२८
पदाति	१४	"	पाद	{ २३ ५१	{ ४५ १०३	पुरुषोत्तम	३७	७४
पद्म	१०	२०	पादप	५	११	पुरुहूत	३०	६०
पद्मनाभ	३७	७५	पाप	६६	१३१	पुरोगति	४६	९२
पन्नग	६४	१२८	पाप्मन्	६६	"	पूर्ण	६२	१२३
पयस्	{ ७ ६२	{ १५ १२२	पार	१३	२६	पुलिन्द	७	१४
पयोधर	५१	१०२	पारावार	१२	२५	पुलोमारि	३०	६०
पराग	७३	१५१	पारिषद्य	५६	११०	पुष्कर	११	२१
			पार्श्व	४	९	पुष्करिन्	४५	८९
			पालाश	७२	१४९	पुष्कल	{ ८४ ९०	{ १७३ १९४
			पाली	१३	२७	पुष्प	४०	८०
			पावक	३३	६४			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
पुष्पहेति	४२	८३	प्रवृत्ति	७४	१५४	फुल्ल	४०	८०
पूग	६९	१३९	प्रशस्त	८६	१७८	व		
पूपन्	२६	४९	प्रसन्ना	६१	१२१	वद्ध	८५	१७६
पृतना	४३	८६	प्रसव	४०	८०	वन्वकी	१७	३५
पृथिवी	३	५	प्रसाधन	६०	११८	वन्धु	२१	४२
पृथुरोमन्	८	१७	प्रसून	४०	८०	वन्धुर	८५	१७८
पृथुल	८७	१८३	प्रस्तर	८२	१७०	वल	{ ४३ ८६ ७० १४२	
पृथु	८७	"	प्रस्थ	४	९	वलयानु	३०	५८
पृथ्वी	३	५	प्रसन्ना	१६	१२१	वलाहक	८	१८
पृषत	६४	१२७	प्रांशु	८७	१८३	वलिसूदन	३७	७५
पेशल	७५	१५५	प्राकार	६७	१३४	वंहिष्ठ	९०	१९१
पेशिन्	२९	५५	प्राक्तन	७६	१५६	वहु	९०	१९५
पोत	२०	४०	प्राचीनवर्हि	३०	५७	वहुल	{ ८७ १८३ ९० १९७	
पोत्रिन्	४६	९१	प्राज्य	९०	१९१	वाण (वाण)	३९	७८
पौरुष	८३	१७१	प्राज्ञ	५५	१११	वाणवारण	९०	१९४
प्रकर	६९	१४०	प्राभूत	९०	१९१	वाणसूदन	३७	७५
प्रकृति	८८	१८५	प्रायस्	६२	१२३	वाणी (वाणी)	५४	१०४
प्रगल्भ	७९	१६४	प्रारम्भ	५२	१०४	वाल	९०	१९५
प्रचर	७८	१६२	प्रालेय	८५	१७९	वाला	१५	३१
प्रचुर	९०	१९१	प्रावृषिक	६३	१२६	वाहु	५०	१०१
प्रजा	१९	३९	प्रासाद	६७	१३५	वाहुशिरस्	५०	"
प्रजापति	{ ३७ ७४ ५७ ११४		प्रिय	{ १८ ३७ ७४ १५४		विसिनी	११	२३
प्रज्ञा	५५	११०	प्रिया	१६	३३	वुध	५६	११२
प्रणयिनी	१६	३३	प्रियाम्बिका	२२	४३	वध्न	२६	४९
प्रणिधि	{ ८१ १६९ ८६ १८२		प्रीत	१८	३७	ब्रह्मन्	७३	११४
प्रतिरोधक	८१	१६९	प्रेमन्	७७	१६०	ब्रीहि	८१	१६१
प्रतीत	५४	१०८	प्रेयस्	१८	३७	भ	२५	४८
प्रतौली	६७	१३४	प्रेयसी	१६	३३	भंग	१३	२७
प्रत्यग्र	७५	१५६	प्रेरित	५२	१०४	भट	{ १४ २९ ५३ १०६	
प्रभञ्जन	३२	६३	प्रेष्ठा	१६	३३	भद्र	९१	१९८
प्रभा	२३	४५	प्रेष्य	७४	१५४	भर्तृ	५	१०
प्रभु	५	१०	प्लवग	६	१२	भर्तुःस्वसा	२१	४३
प्रमथाधिप	३५	६८	फ			भर्मन्	४७	९३
प्रमद	५४	१०९	फणिन्	६४	१२८			
प्रमदा	१६	३३	फलन्	५	११			
प्रमोद	५४	१०९	फलेग्राहिन्	५	११			
प्रवीण	७९	१६४	फल्गु	७५	१५५			
प्रवीर	९०	१९३	फाल्गुन	७०	१४३			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
भरतान्वय	७१	१४८	भ्रातृजानी	२१	४३	मन्यु	५४	१०९
भव	{ ३५ ९०	७० १९२	भ्रातृव्य	२२	४४	मंत्रपूतात्मन्	६५	१२९
भवन	६६	१३२	म			मय	४६	९१
भविक	९१	१९८	मकरध्वज	३९	७७	मयूखवत्	२८	५२
भव्य	९१	१९८	मकरन्द	७३	१५१	मयूर	६३	१२६
भागधेय	६५	१३०	मंक्षु	८३	१७२	मराल	६३	१२५
भागीरथी	३६	७१	मंगल	९१	१९८	मरीचि	२३	४५
भाग्य	६५	१३०	मद्यवत्	३०	६०	मरुत	३०	५९
भानु	{ २३ २६	४५ ४९	मंजीरक	५३	१०७	मरुत्	{ ४ ३२	८ ६२
भामा	१५	३१	मंडल	४६	९२	मरुत्वत्	३०	५९
भामिनी	१४	३०	मंडलाग्र	४३	८५	मरुत्पुत्र	३३	६३
भारती	५२	१०४	मणित	५३	१०६	मरुत्सग्न	{ ३० ३३	६० ६४
भार्या	१६	३२	मतंगज	४५	८८	मर्कट	६	१२
भाव	९०	१९२	मतालम्ब	६७	१३५	मर्त्य	१३	२८
भावुक	९१	१९८	मत्स्य	८	१६	मर्म	८९	१८८
भास्	२३	४५	मत्तवारण	६७	१३५	मलिन	७३	१५२
भासुर	९०	१९३	मथित	६२	१२३	मल्लिका	५९	११३
भास्कर	२३	४६	मदन	३९	७७	मलीमस	७३	१५२
भास्वर	९०	१९३	मदिरा	६१	१२०	महति	५८	११५
भिक्षु	२	३	मद्य	६१	१२०	महस्	२३	४६
भीरु	१४	३०	मद्यप	६१	१२१	महावीर	५८	११५
भुज	५०	१०१	मधु	७३	१५१	महाहव	४४	८७
भुजंगम	६४	१२८	मधुवारा	६१	१२१	महिला	१६	३२
भुवन	५७	११३	मधुव्रत	४२	८२	महिषी	७९	१६३
भू	३	५	मधुसूदन	३७	७५	मही	३	५
भूमि	{ ३ ३८	५ ७६	मध्यमपाण्डव	७०	१४३	महेश्वर	३५	६८
भूमिधर	३८	७६	मनस्	४१	८१	महोत्पल	१०	२१
भूयिष्ठ	९०	१९१	मनस्विन्	९०	१९३	मांस	२९	५५
भूरि	९०	१९१	मनस्विनी	१७	३४	मा	७६	१५९
भूषण	६०	११९	मनीषा	५५	११०	नातंग	४५	८९
भृंग	४२	८२	मनुज	१३	२८	मातरिद्वन्	३२	६३
भृतक	१४	२९	मनुष्य	१३	"	मातुलानी	२२	४३
भृत्य	१४	२९	मनोज्ञ	८५	१७८	मातृ	१८	३८
भृशम्	८३	१७३	मनोहर	८५	१७७	मानव	१३	२८
भो	७६	१५७	मंद	{ ८० ८७	१६६ १८४	मानिन्	८१	१६८
भ्रमर	४२	८२	मन्दाकिनी	३६	७१	मानिनी	१६	३२
			मन्दिर	६६	१३२	मानुष	१३	२८
			मन्मथ	३९	७७	मार	४१	८१

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
मार्ग	७८	१६२	मंत्री	९१	१९७	रक्षस्	२९	५५
मार्गण	३९	७८	मंत्रेयिक	९१	१९७	रजत	४७	९४
मार्तण्ड	२६	४९	मैरेय	६१	१२०	रजनी	२५	४८
माला	६०	११९	मोघ	८८	१८६	रजस्	७३	१५१
माल्य	६०	"	मोण्ड्य	३	४	रण	४४	८७
मिर्तंगम	४५	८८	मीकितक	४७	९४	रत्नाकर	१२	२५
मित्र	२०	४१	मीर्वी	४१	८२	रथ्य	२७	५२
मिश्रयुक्	२०	"	य	५		रन्ध्र	८९	१९०
मिहिर	८	१८	यज्ञारि	३५	६९	रमण	१८	३७
मीन	८	१७	यति	२	३	रमणी	१६	३३
मीनाकर	१२	२५	यन्तृ	४५	८९	रमणीय	८५	१७७
मुख	४९	९८	यम	{ २	२	रम्य	८५	"
मुग्ध	८०	१६६		{ ७१	१४५	रय	८३	१७२
मुग्धा	१४	३०	यमजनक	२७	५१	रवि	२६	४९
मुक्ता	१७	३५	यमल	२	२	रश्मि	२३	४६
मुद्	५४	१०९	यमुनाजनक	२७	५१	रसना	६०	११९
मुधा	८८	१८६	यशस्	७४	१५३	रस्य	८१	१९०
मुनि	२	३	यातुधान	२९	५५	रहस्	८४	१७५
मुखसूदन	३७	७५	यातृ	४५	८९	रहस्य	८४	१७५
मुहुर्मुहुः	८८	१८५	याथ	८७	१८४	राग	७७	१६०
मूक	८०	१६६	यादम्	८	१७	राजन्	५	१०
मूर्ख	"	"	युक्त	७७	१६१	राजयक्ष्मन्	७१	१४६
मूढ	"	"	युग	२	२	राजराज	४८	९६
मूर्ति	१९	३९	युगल	२	२	राजसूय	५६	११२
मूर्द्धन्	५२	१०४	युग्म	२	२	रात्रिचर	२९	५५
मृग	६४	१२७	युन	७७	१६१	रात्रिजागर	४६	९२
मृगनाभिजा	५९	११७	युद्ध	४४	८७	रामा	१५	३१
मृगांक	८६	१७९	युधिष्ठिर	७१	१४६	राष्ट्र	४८	९७
मृगेश्वर	४५	९०	युवति	१५	६१	रिपु	२२	४४
मृत	५४	१०८	योगिन्	२	३	रुचिर	८४	१७८
मृत्यु	७१	१४५	योग्या	८५	१८५	रुचि	२३	४५
मृदु	७५	१५५	योषा	१४	३०	रुच्य	६०	११९
मृषा	८८	१८६	योषित्	१४	३०	रुद्र	३५	६९
मेखला	{ ४	९	योवन	६२	१२४	रुधिर	{ ५९	११८
	{ ६०	११९	योवनिक	६२	१२३		{ ८९	१८८
मेघ	८	१८		२		रुप्	५४	१०९
मेघपथ	२८	५३	रंहस्	८३	१७२	रुपाजीवा	१७	३६
मेदिनी	३	५		{ ५९	११८	रूप्य	४७	९४
मेधावी	५५	१११	रक्त	{ ७२	१४९	रे	७६	१५७
				{ ८१	१८८			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
रेणु	७३	१५१	वत्स	८१	१६७	वस्त्य	६६	१३३
रेवतीदयित	७०	१४२	वदन	४९	९८	वस्त्र	५९	११७
रै	४७	९५	वधू	१४	३०	वाग्मिन्	५५	१११
रोधस्	१३	२६	वन	{ ६	१३	वाच्	५२	१०४
रोपण	३९	७८		{ ७	१५	वाचस्पति	९२	१९९
रोहिणीपति	८६	१७९	वनस्पति	५	११	वाजिन्	२७	५२
रोहिताश्व	३३	६५	वनिता	१४	३०	वात	३२	६२
			वनेचर	६	१३	वातायन	६७	१३५
ल			वह्नि	३३	६४	वानर	६	१२
लक्ष्मन्	७२	१५२	वपुस्	१९	३८	वाण (वाण)	३९	७८
लक्ष्मी	३८	७६	वप्र	६७	१३४	वाणवारण	९०	१९४
लक्ष्मीपति	३८	"	वयस्	{ २९	५४	वाणसूदन	३७	७५
लघु	८३	१७२		{ ६२	१२४	वाणी (वाणी)	५२	१०४
लंजिका	१७	३६	वयस्या	२०	४१	वामलोचना	१५	३१
लता	११	२३	वर	{ १८	३७	वायु	३२	६२
लतान्त	४०	८०		{ ८९	१८९	वायुपथ	२८	५३
लपन	४९	९८	वरटा	६४	११७	वायुपुत्र	७१	१४५
लब्ध	५४	१०८	वराह	४६	९१	वार्	७	१५
ललना	१४	३०	वह्निनी	४३	८६	वार्ता	७४	१५४
लव	८९	१९७	वर्ग	६३	१२५	वारण	४५	८८
लांगल	७०	१४२	वर्ण	७४	१५३	वारली	६४	१२७
लाञ्छन	७३	१५२	वर्णिन्	२	३	वारि	७	१५
लुब्ध	८४	१७५	वर्तुल	८७	१८३	वारिधि	१२	२३
लब्धक	७	१४	वर्त्मन्	७८	१६२	वारिराशि	१२	२६
लेलिहान	६४	१२८	वर्द्धमान	५७	११५	वारुणी	६१	१२१
लेश	८६	१८७	वर्मन्	९०	१९४	वार्द्धान	६३	१२४
लोक	५७	११३	वर्षीयस्	५७	११४	वासर	२६	५०
लोह	८२	१७०	वर्हिण (वर्हिण)	६३	१२६	वासव	३०	५९
लोहित	{ ७२	१४९	वलक्ष	७१	१४७	वासस्	५९	११७
	{ ८९	१८८	वलिमुख (वलीमुख)	६	१२	वासुदेव	३७	७६
लोहिनी	७३	१५०	वल्लभ	१८	३७	वाह	२७	५२
व			वल्लभा	१६	३३	वाहिनी	४३	८६
वक्ता	९२	१६९	वल्लरी	११	२३	वि	२९	५४
वक्त्र	४१	९८	वल्ली	११	२३	विकल	८९	१८७
वक्षस्	५१	१०२	वसति	६६	१३३	विक्रम	८४	१७४
वक्षोज	५१	१०२	वसु	४७	९५	विक्षण	५५	१११
वचन	५२	१०४	वसुधा	३	६	विट	१८	३७
वचस्	५२	१०४	वसुन्धरा	३	६	विटपिन्	५	११
वज्र	९	१९	वसुमती	३	५	विडो जन्	३०	५३
वज्रिन्	३०	५७	वस्तु	४७	९५			

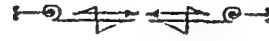
शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
वितथ	८८	१८६	विश्वरूप	३५	७०	वैशारिण	८	१७
वित्त	४७	९५	विश्वस	८८	१८५	वैश्रवण	४८	९६
विदग्ध	७९	१६६	विश्वम्भरा	३	५	वैश्वानर	३३	६५
विद्यमान	८६	१३७	विप	७	१५	वंश	६३	१२४
विद्युत्	९	१९	विपक्षय	६५	१२८	व्यतिकर	६८	१३८
विद्वत्	५५	१११	विपधर	६४	१२७	व्यपदेश	६८	१३८
विद्यातृ	३६	७२	विपय	४८	९७	व्यसन	८८	१८६
विधि	३६	७२	विष्किर	२९	५४	व्याघ्र	४६	९०
विधिपुत्र	३७	७३	विष्टप	५७	११३	व्याज	६८	१३७
विधु	२४	४७	विष्टर	५६	११३	व्याध	७	१४
विधुर	८८	१८६	विष्णु	३७	७४	व्यूह	६९	१३९
विनतात्मज	६५	१२७	विस्मय	८४	१७४	ब्रज	६९	१३९
विन्मान्य	६८	१३७	विहायस्	२८	५३		६९	१४०
विपिन	६	१३	वीचि	१३	२७		७८	१६२
विफल	८८	१८६	वीतराग	५८	११६	व्रतती (व्रतति)	११	२३
विभावसु	{ २३	४६	वीर	५८	११५	व्रतिन्	२	३
	{ ३३	६५	वृक	६४	१२७	व्रात	६९	१३९
विभु	५	१०	वृकोदर	७१	१४५	व्योमन्	२८	५३
विभ्रम	{ १३	२७	वृक्ष	४	७	श		
	{ ४९	९९	वृजिन	६६	१३९	शकल	८९	१८७
वियत्	३८	५३	वृत्त	८७	१८३	शकुनि	२९	५४
वियोग	७७	१६०	वृत्तान्त	६८	१३८	शकुनीश्वर	६५	१२८
विरचिन्	३६	७२	वृत्तहन्	३०	५८	शकुन्ति	२९	५४
विरह	७७	१६०	वृथा	८८	१८६	शकृत्करि	८१	१६७
विरूपाक्ष	३५	७०	वृषन्	३०	५९	शक्तिमत्	३४	६७
विरोचन	२६	५०	वृषभ	५७	११४	शक्र	{ ३०	५७
विलम्बित	८७	१८४	वृषभध्वज	३५	६९		{ ९२	१९९
विलेपन	६०	११८	वृषभेश्वर	५९	११७	शक्रनन्दन	७०	१४४
विलोचन	४९	९९	वृषसेन	७०	१४४	शंकर	३५	६८
विवर	८९	१९०	वृषाकपि	३३	६६	शंपा	९	१८
विवाह	८९	१८९	वृंहित	५२	१०५	शंभु	३५	६८
विशद	{ ७२	१४८	वेग	८३	१७२	शंभुविघ्नकर	४३	८४
	{ ८४	१७३	वेधस्	३६	७२	शठ	७९	१६५
विशाख	३४	६७	वेला	१३	२७	शतक्रतु	३०	५७
विशारद	७९	१५६	वेश्मन्	६६	१३२	शतपत्र	११	२१
विशारिन्	८	१७	वेश्या	१७	३६	शतमन्यु	३०	६०
विशाल	८७	१८३	वैजयन्ती	४३	८४	शत्रु	२२	४४
विशालाक्ष	३५	६९	वैनतेय	६२	१२९	शकटी	८	१७
विशिख	४१	८१	वैरिन्	२२	४४	शवरी	७३	१५१
विश्व	८८	१८१				शब्दभेदिन्	७०	१४४

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
शर	{ ७ ३९	१५ ७८	शिव	{ ३५ ९१	६८ १९०	श्रीद	४८	९६
शरणा	६६	१३३	शिष्य	३	४	श्रुति	४९	९८
शरभ	४६	९०	शीघ्र	८३	१७६	श्रेयस्	९१	१९८
शरवणोद्भव	३४	६७	शीघ्रगामुक	४६	९१	श्रोणि(श्रोणी)	५१	१०३
शरीर	१९	३९	शीतल	८८	१८४	श्रोणीविव	६०	१२०
शर्व	३५	६७	शीघ्र	६१	१२०	श्रोतस्	६३	१२९
शर्वरी	६४	१२६	शीर्ण	८२	१७१	श्रोता	९२	१९९
शर्वरीकर	६४	१२७	शील	८८	१८५	श्रोत्र	४९	९८
शल्क	८९	१८७	शुक्तिज	४७	९४	श्लक्ष्ण	८५	१७८
शवर	७	१४	शुक्ल	७१	१४७	श्वन्	४६	९२
शशिन्	२३	४७	शुचि	७१	१४७	श्वभ्र	८९	१९०
शशिप्रभ	७१	१४७	शुंडा-शुंड	६१	१२१	श्वसन्	३२	६२
शश्वत्	७७	१५९	शुंडाल	४५	८९	श्वेत	७१	१४७
शस्त्र	४२	८३	शुनासीर	३०	५७	श्वेतवाजिन्	७०	१४३
शस्त्रजीविन्	१४	२९	शुभ्र	७१	१४७	श्वोवसीय	९१	१९८
शाखिन्	५	११	शुषिर	८९	१९०	प		
शातकुम्भ	८२	१७२	शूकर	४६	९०	पटपद	४२	८२
शान्त	८२	१७१	शूर	९०	१९३	पङ्कशन	८१	१६७
शारंगी-सारंगी	७३	१५०	शूलिन्	३५	७०	पङ्क्षीण	८	१७
शार्ङ्गिन्	३७	७४	शृङ्खलिक	४६	९१	पणमुख	३४	६७
शार्ङ्गल	४६	९०	शृङ्खलित	८४	१७६	प्राष्टिक	८१	१६७
शालि	८१	१६७	शृङ्गिन्	{ ४ ७८	८ १६३	पोडन्	८१	१६७
शासन	७४	१५४	शोमुषी	५५	११०	स		
शास्त्र	२	४	शैल	{ ४ ३८	७ ७६	संयत	४४	८७
शित्रिन्	४	८	शैलधर	३८	७६	संयमिन्	२	३
शिखिन्	{ ३३ ६३	६४ १२६	शोणित	८९	१८८	संयुग	४४	८७
शिखिवाहन	३४	६६	शोणी	७३	१५०	संशित	२	३
शिखंडिन्	६३	१२६	शौड	६१	१२०	संसरण	९०	१९२
शिपिविष्ट	३५	७०	शौडीर	८१	१६८	संसार	९०	"
शिरस्	५२	१०४	शौरि	३७	७५	संसृति	९०	"
शिरोधर	५०	१००	शौर्य	८३	१७१	संस्कृत	७७	१६१
शिरोरुह	९०	१९५	श्यामा	२५	४८	संस्तुत	५४	१०८
शिला	८२	१७०	श्येत	७१	१४८	संस्थित	५४	१०८
शिलीमुख	{ ३९ ४२	७८ ८२	श्येनी	७३	१५०	संहनन	१९	३८
शिलीमुखासन	४०	७९	श्रव	४९	९८	संहित	७७	१६१
शिलोच्चय	४	८	श्रवण	४९	९८	सकल	८८	१८७
शिलोद्भव	४७	९४	श्री	३८	७६	सक्त	६१	१२२
						सखी	२०	४१
						सख्य	९०	१९३

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सगोत्र	२१	४२	सप्ताचिप्	३३	६४	सलिल	७	१५
संकन्दन	३०	६०	सप्ति	२७	५२	सवयम्	२०	४१
संगत	९१	१९७	सभोजित	५६	११२	मयणं	६७	१३६
संग्राम	४४	८७	सम्य	५६	११२	सवितृ	{ १८ २७	{ ३८ ५१
संघ	६९	१४०	सम	{ ६७ ७७	{ १३६ १६९	सवित्री	१८	३८
संघात	६९	१४०	समज	६९	१४०	सव्यसाचिन्	७०	१४३
सजाति	६७	१३६	समर	४४	८७	सह	७७	१५९
सजुप्	७७	१५९	समवर्तिन्	७१	१४५	सहकारिन्	२१	४२
संचर	७८	१६२	समवायिक	२१	४२	सहकृत्वन्	२१	४२
संज्ञा	८०	१६५	समवेत	७७	१६१	सहचरी	२०	४१
संतत	८९	१८९	समस्त	८८	१८७	सहसा	८३	१७२
सतत	७७	१५७	समाज	६६	१३९	सहाय	२१	४२
सती	१७	३४	समालम्भ	६०	११८	सहजपात्	३६	७३
सत्कृत	६५	१२९	समिति	६९	१४०	सहन्नाथ	३०	५८
सत्य	८७	१८२	समीगर्म	३३	६६	सहित	७७	१६१
सत्यंकार	९१	१९७	समीप	६९	१४१	साकम्	७७	१६०
सत्रा	७७	१६०	समीरण	३२	६२	सागर	१२	२६
सदन	६६	१३२	समुदय	६९	१४०	साधन	४३	८६
सदञ्चित	५६	११२	समुद्र	१२	२६	साधीयस्	८३	१७३
सदा	७७	१५९	समूह	६९	१३९	साधु	{ २ ८०	{ ३ १७०
सदागति	३२	६२	सम्पराय	४४	८७	साधुवाद	७४	१५३
सदुचित	५६	११२	सम्पृक्त	७७	१६१	साध्वी	१७	३४
सदृश	६७	१३६	सम्फली	१७	३५	सानु	४	९
सदृश	६७	१३५	सम्भृत	७७	१६१	सानुमत्	४	८
सदृश	६७	१३६	सम्बन्ध	२०	४१	सामज	४५	८९
सद्वन्	६६	१३२	सरणि	७८	१६२	साम्प्रतम्	७५	१५६
सधर्म	६७	१३६	सरसीरुह	१०	२०	सारमेय	४६	९२
सधृची	२०	४१	सरस्वत्	१२	२६	नादं	७७	१५९
सनातन	६३	१२५	सरस्वती	५२	१०४	साल	{ ६७ ८६	{ १३५ १८१
सनाभि	२१	४२	सरित्	१२	२४	साहस	७४	१५३
सन्तति	{ ६३ ६९	{ १२४ १३९	सरूप	६७	१३६	साहाय्य	६२	१९७
सन्तमस	७२	१४८	सरोज	१०	२०	सित	{ ७१ ८५	{ १४९ १७६
सन्तान	६३	१२५	सर्व	६४	१२८	सिद्धान्त	३	४
सन्देश	७४	१५४	सर्व	८८	१८७	सिन्धु	१२	२४
सन्धानीत	८५	१७६	सर्वज	५८	११६	सिन्धुर	४५	८९
सन्निधि	६९	१४१	सर्वदा	७७	१५९	सिंह	५२	१०५
सन्मति	५८	११५	सर्ववल्गना	१७	३६			
सपत्न	२२	४४						
सपदि	७६	१५७						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सीलकृत	५३	१०६	सीहृद	९१	१९७	स्वाहापति	३३	६५
सीमन्	१३	२६	सीहृद्य	९१	१९७	स्वैरिणी	१७	३५
सीमन्तिनी	१४	३०	स्कन्द	३४	६६	ह		
सीर	७०	१४२	स्तन	५१	१०२	हंस	६३	१२५
सुकृत	६५	१२१	स्तनंधय	२०	४०	हंसवाह	६३	१२५
सुचिरंतेन	७६	१५६	स्तनित	५३	१०५	हंसी	६४	१२७
सुत	१९	३९	स्तब्ध	{ ७५	१५६	हंहो	७६	१५७
सुधासूति	२४	४७		{ ८१	१६८	हन्तोक्ति	५४	११०
सुनाशीर	३०	५७	स्तम्भकरि	८१	१६७	हय	२७	५२
सुनिर्मोक	७०	१४४	स्तम्बेरम	४५	८८	हर	३५	७०
सुन्दर	८५	१७७	स्तेन	८१	१६९	हरि	{ ६	१२
सुन्दरी	१५	३१	स्त्री	१४	३०		{ २७	५२
सुपर्ण	६५	१२९	स्थपुट	८७	१८३		{ ३०	५७
सुभट	९०	१९६	स्थविर	६३	१२४		{ ३७	७४
सुमन	४०	८०	स्थाणु	३५	६८		{ ४५	९०
सुर	३०	५६	स्थान	६६	१३३	हरिण	६४	१२७
सुरा	६१	१२१	स्नेह	७७	१६०	हरिणी	७३	१५०
सुवर्ण	४७	९३	स्पर्शा	१७	३५	हरित्	{ ३२	६१
सुष्ठु	८३	१७३	स्पष्ट	८४	१७३		{ ७२	१४९
सुहृत्	२०	४१	स्फीकृत	५२	१०५	हरित	७२	१४९
सूत्रामन्	३०	५७	स्फुट	८४	१७३	हरिद्राभ	७२	१४९
सूनु	१९	३९	स्मर	४०	८०	हरिवाहन	६०	५९
सूनुत	८७	१८२	स्मृत	५४	१०८	हर्म्य	६७	१०५
सूरि	५५	१११	स्यद	८३	१७२	हर्ष	५४	१०९
सूर्य	२६	५०	स्यन्दन	५३	१०६	हल	७०	१४२
सूर्पकारि	३९	७७	सज्	६०	११९	हलि	७०	,,
सेना	४३	८६	सष्ट	३६	७३	हव्यवाह	३३	६६
सेनानी	३४	६६	सवन्ती	१२	२४	हस्त	५०	१०१
सेनानीपितृ	३५	६८	स्रोतस्विनी	१२	२४	हस्तशाखा	५०	१०१
सेन्द्र	३०	५६	स्रोतस्विनीपति	१२	२५	हस्तिन्	४५	८८
सेन्य	४३	८६	स्व	४७	९५	हाटक	४७	९२
सौंदर्य	२१	४२	स्वभाव	८८	१८५	हार्द	९१	१९७
सोमवंश	७१	१४६	स्वर्	३०	५६	हाला	६१	१२१
सौशमिनी	९	१८	स्वर्ग	३०	५६	हिम	{ ५९	११८
सौध	६७	१३५	स्वर्ण	४७	९३		{ ८५	१७९
सौम्य	८७	१७७	स्वसृ	२१	४३	हिमवत्सुता	३६	७१
सौरभ	९१	१९७	स्वान्त	४१	८१	हिरण्य	४७	९३
सौरि	३८	७५	स्वामिन्	{ ५	१०	हिरण्यकशिपुसूदन	३७	७५
सौहार्द	९१	१९७		{ ३४	६७	हिरण्यगर्भ	३६	७३
						हिरण्यरेतस्	३३	६४

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
हीन	८२	१७१	हय	८५	१७८	हेमन्	४७	९३
हुताश	३३	६५	हपीक	६५	१२९	हेरिक	८१	१६९
हुताशन	३३	६६	हपीकेश	३७	७४	हेपा	५२	१०५
हंकृत	५३	१०५	है	७६	१५६	हैयंगवीन	६१	१२२
हृदय	४१	८१	हेति	४२	८३	ह्रस्व	७३	१५८



अनेकार्थनाममालास्थशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ			कैवल्य	१००	४४	दाव	९७	१८
अक्ष	९८	२६	कोटि	९६	१५	द्रव्य	१००	४१
अज	९८	२१	क्षीर	९५	१३	द्विज	९५	११
अञ्जन	९४	९	ग			घ		
अय	१००	३९	गुण	१००	३७	घर्म	१००	४१
अद्रि	९५	११	गुह्य	९६	१५	वातु	९९	३२
अनन्त	९३	४	गो	९८	२७	घिष्ण्य	९४	७
अन्त	९८	२५	घ			प		
अन्तर	१००	३८	घृत	९३	५	पतंग	९४	८
अव्द	९७	१७	च			पयस्	९६	१३
अम्बर	९४	७	चर्चा	९७	१७	पर्जन्य	९३	४
अर्घ	९६	१६	ज			पाञ्चजन्य	९५	१०
अर्थ	९८	२४	जात्य	९६	१६	पुद्गल	१००	४२
अशोक	९५	१२	जिन	९३	३	पुन्नाग	९४	९
इ			जीमूत	९३	४	पुष्कर	९९	२९
इति	१००	४०	ज्योतिष्	९४	६	प्राय-प्रायस्	९८	२४
क			त			वाचा	९६	१५
कदली	९५	१२	तंत्र	१००	३६	ब्रह्मवाच	१००	३७
कम्बु	९५	१०	तल्प	९४	६	भ		
कस्वर	९५	१०	तार	९५	१३	भग	१००	४३
काण्डा	९६	१४	ताक्ष्य	९७	१६	भाव	९८	२४
कीनाश	९७	१९	तीर्थ	९९	३१	भुवन	९३	५
कीलाल	९६	१५	द			भूरि	९५	१३
केतन	९४	७	दव	९७	१८			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
म			विवस्वत्	९३	३	सारंग	९४	९
मदूख	९४	८	विष	९४	५	सारस्त	९४	८
र			वृषाकपि	९३	३	साल	९४	७
रम्भा	९५	११	वैकुण्ठ	९३	४	सिन्धु	{ ९४	७
रस्त	९९	३०	व्यामोह	९६	१४	{ ९६	१४	
राजन्	९५	११	श			सुमनस्	९५	१२
राम	९५	६	शङ्खु	९७	१८	सोम	९७	२१
ल			शम्भु	९३	३	स्तम्भ	९७	१७
लब्धि	१०१	४४	शिखरिन्	९५	११	स्याणु	९७	१७
ललाम	९९	३३	शुचि	२८	२३	स्यन्दन	९५	११
व			स			स्यात्	१०१	४५
वन	९३	५	सत्त्व	१००	३६	त्वर	९९	३५
वर्गणा	१००	४२	सन्धि	९६	१४	त्वेर	९७	१७
वर्ण	९९	३४	समय	९९	३५	ह		
वाम	९४	६	सरल	९४	९	हंस	९७	२०
विरोचन	९७	२०	सार	९४	८	हरि	९८	२८



नाममालाभाष्यस्थशब्दानामकारादिसूची

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अ			अचिरांशु	९	२०	अन्धकरिपु	३६	४
अंशु	२६	२१	अच्युत	३८	१५	अन्धतमन	७२	१२
अंशुमान्	२६	२१	अण्डज	८	२८	अपथी	२३	२
अंशुमाली	२६	२०	अतिमात्र	८३	१८	अपसर्प	८६	२३
अक्ष	४९	२३	अतिवेल	८३	१८	अपांपित्त	३४	१६
अग	६	६	अत्रिनेत्रप्रसूत	२४	२५	अफल	६	२४
अग्निभू	३५	३	अधिष्ठान	४९	८	अवज	२४	२५
अशधन्वन्	३१	२६	अनन्त	२८	१५	अवद	९	१२
अग्निय	२१	१८	अनन्ता	४	६	अविज्ञा	३८	२२
अङ्गज	३९	१२	अनरवर	७७	११	अनिज	१८	२०
अङ्गुर	५०	२४	अनिमिष	३०	१४	अनिग्या	७४	१३
अङ्गुरी	५०	२४	अनीक	४५	२	अनिशन	६३	८
अचला	४	६	अनीकिनी	४४	२०	अनिनन	७५	१५

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अभिमन्थी	२३	३	आ			उदधि	१३	२
अभियाति	२३	१	आ	३८	२२	उदन्त	६८	२०
अभिसारिका	१७	१७	आच्छादन	५९	१२	उदन्त	७५	२
अभीक	१८	१९	आत्मीय	२१	१०	उदन्वान्	१३	२
अभीशु	२३	१८	आदित्य	२६	१९	उद्धव	५४	२४
अभ्यग्र	७०	१	आदित्य	३०	१२	उद्यस्य	६२	१३
अभ्यागम	४५	२	आधार	६२	७	उपकण्ठ	६९	२३
अमुक	१८	२०	आनर्त	८	५	उपगत	९१	१०
अमृत	८	४	आप्त	२१	१०	उपधृति	२३	१९
अमृतनिर्गम	२५	२	आप्तरूप	५६	२	उपमा	६८	८
अमृताशन	३०	१४	आभील	८७	२२	उपलब्धि	५५	८
अम्बा	१८	२३	आमिष	२९	२१	उपहृर	८४	१८
अम्बुभृत्	९	१३	आयत	७६	१८	उपाधि	६८	१८
अयन	७८	१२	आयोधन	४५	१	उरसिज	५१	२३
अरण्यश्वा	६४	१४	आरात्	६९	२३	उर	८७	१८
अरण्यानी	६	२३	आरोह	५१	९	उपबृध	३४	१५
अरिष्ट	६२	१८	आशीविष	६५	१			
अचिष्मान्	३४	१५	आशुग	३३	८	ऊ		
अर्दनि	२७	२५	आश्रयाश	३४	१६	ऊमि	१३	१७
अर्ध	८९	४	आश्रुत	९१	१०			
अर्भक	२०	२	आसन्न	७०	१	ऋ		
अलंकार	६०	११	आसव	६१	१५	ऋक्थ	४८	७
अवतमस	७२	१२	आस्कन्दन	४५	१	ऋक्षेश	२४	२५
अवदान	७४	१५	आहार्य	४	३०	ऋभु	३०	१३
अवयव	११	१६				ऋश्य	६४	१७
अविनश्चर	७७	११	इ			ऋष्टि	४३	२३
अविनीता	१७	१७	इक्षूद	१३	३	ऋप्य	६४	१७
अव्यय	८८	१६	इचिकिल	१०	१०	ए		
अशुभ	६६	१०	इत्वरी	१७	१७	एकपदी	७८	१२
अश्मन्	८२	९	इन्दिन्दिर	४२	९	एकान्त	८४	१८
अण्डीवान्	५१	२२	इन्दु	२४	२४	एण	६४	१७
असती	१७	१७	इन्द्रावरज	३८	१५	ऐ		
असम्पूर्ण	८९	४				ऐरावती	९	३१
असहन	२२	२	ई	३८	२२	क		
असुहृत	२३	२	ईशान	३६	२	ककुद्मती	५१	१९
अन्नप	२९	२८				कङ्कपत्र	३९	२०
अस्वप्न	३०	१३	उ			कच्छ	१३	९
अहर्षति	२६	२२	उत्कर्ष	५४	२४	कञ्चुकी	६५	३
			उदक	८	४	कटिसूत्र	६०	१९
			उदग्र	७६	१८	कटीर	५१	१९

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
कडव	५१	१९	कालिन्दीसोदर	७१	११	कैतव	६८	१८
कदम्ब	{ ३९ ६३	२१ १२	काश्यपनन्दन	६५	१६	कैरवविप्रिय	३७	८
कदर्य	८५	१	काश्यपी	४	७	कोल	४६	१५
कनिष्ठ	२१	१५	किण्वं	६६	१०	कोविद	५६	२
कन्धरा	५०	११	किम्पचान	८५	१	कौणप	२९	२८
कन्याङ्ग	५२	९	किर	४६	१६	कौस्तुतिक	८०	२
कपट	६८	१८	किरि	४६	१५	कतुपुरुष	३७	१४
कवन्ध	८	४	किर्मि	११	२७	क्रव्याद	२९	२८
कमल	८	४	कीनावा	{ २९ ७१	२८ ११	क्लीव	८५	१
कमला	३८	२१	कीलाल	८	४	क्षणिका	९	२०
कमिता	१८	१९	कीश	६	१५	क्षितिधर	४	३०
कम्बल	६५	२१	कुज	६	५	क्षीर	८	४
कर्णजप	८१	२१	कुट	६	५	क्षीरोद	१३	२
कर्दमज	१०	१२	कुण्डली	६५	१	क्षीरोदतनया	३८	२१
कर्पट	५९	१२	कुभ्र	४	३०	क्षुद्र	{ ८१ ८५	२१ १
कर्जूर	{ २९ ४७	२८ १५	कुन्तल	९१	१	क्षुल्ल	८५	१
कर्मसाक्षी	२६	२२	कुमुदविवल्लभ	२७	७	क्षुल्लक	८५	१
कर्पु	१२	११	कुम्भीनस	६५	३	क्षेत्र	{ १६ १९	१५ १६
कलत्र	५१	१८	कुरंग	६४	१७	क्षेत्रज	७९	२०
कलम्ब	३९	२०	कुरंगम	६४	१७	ख		
कलाघौत	४७	१९	कुल	६७	२	खग	२६	२१
कलाप	{ ५३ ६०	१४ १९	कुल्या	१२	११	खर	३९	२१
कल्क	६६	९	कुहक	८०	२	खर्जूर	४७	१९
कल्मष	६६	१०	कुहर	८९	२१	ग		
कल्य	६१	१६	कूच	५१	१०	गन्धदारिका	१८	६
कल्याण	४७	१५	कूट	६८	१८	गन्धर्व	२७	२४
कवि	५६	२	कूल	१३	९	गन्धोत्तमा	६१	१५
कश्य	६१	१६	कूलङ्गुपा	१२	१०	गरिष्ठ	६२	१७
काकोदर	६५	२	कृतकर्मा	७९	२०	गर्भपोत	२०	२
काञ्चीपद	५१	१८	कृतसुख	७९	२०	गाङ्गेय	{ ३५ ४७	४ १५
कान्ता	१६	१	कृतहस्त	७९	२०	गार्दपध	३९	२१
कापिशायन	६१	१६	कृती	५६	२	गिरिक	४७	१५
कामध्वंसी	३६	४	कृत्तिवासा	३६	५	गिरिज	३६	३
कार्पटिक	८०	२	कृपीटयोनि	३४	१५	गीर्वाण	३०	१३
कालसार	६४	१७	कृष्टि	५६	२	गुडिका	४७	१९
कालिङ्ग	४५	१६	कृष्णवर्मा	३४	१६	गुरु	८७	१८
कालिन्दीकर्षण	७०	११	कृष्णसार	६४	१७			
			केतु	२३	१९			

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
गुल्मिनी	११	२७	चन्द्रहास	४३	३६	जैवातृक	२५	२
गूढ	४४	२०	चपला	{ ९	२०	ज	५६	२
गूढपात्	६५	१	चंय	१७	१७	जाति	२१	१०
गृहा	१६	१५	चला	६३	१२	ज्योति	४९	२३
गोकर्ण	६५	३	चामीकर	३८	२२	उ		
गोकुल	७८	१८	चिह्नुर	४७	१५	डिम्भ	२०	२
गोत्र	{ ४	{ ३०	चिह्नित्स	९०	२९	त		
	{ १९	{ १६	चित्रक	१०	१०	तटिनी	१२	१०
	{ ६३	{ ८	चित्रकाय	८६	११	तटी	१३	९
गोत्रभिद्	३१	२६	चित्रपुङ्ख	४६	७	तडित्वान्	९	१३
गोपति	{ २६	२०	चित्रभानु	३९	२०	तनया	२०	१४
	{ ३१	२६	चीवर	{ २६	२१	तन्य	४४	२०
गोष्ठ	७८	१८		{ ३४	१५	तप्तकी	६०	१९
गौर	७२	१	ज	५९	११	तमाल	६६	९
गौरीपुत्र	३५	३	जगच्चक्षु	२६	२२	तमस्विनी	२५	२५
ग्रावन्	८२	९	जगत्कर्ता	३७	१०	तमालपत्र	८३	११
ग्रावा	८	३०	जगत्प्राण	३३	७	तमिन्न	७२	१२
ग्रीवी	४६	१९	जघन	५१	१९	तमिन्ना	२५०	२४
घ			जङ्घा	५१	२२	तमी	२५	२५
घन	१९	१६	जनान्तिक	८४	१८	तमोघ्न	२४	१६
घनरस	८	३	जन्य	४५	१	तरक्षु	४६	७
घल	२६	२८	जम्बाल	१०	१०	तरस	२१	२२
घृणि	२३	१९	जम्बूनद	४७	१५	ता	३८	२२
घृत	६२	७	जयन्त	४३	१०	तार	४७	१९
घृतोद	१३	३	जयन्ती	४३	१०	तारका	४९	२३
घोटक	२७	२५	जरठ	६३	४	तारकारि	३५	३
घोणा	५१	२	जरन्	६३	४	तारापथ	२८	१४
च			जलचर	८	२९	तार्क्ष्य	२७	२५
चक्र	४८	२०	जलमुच्	९	१३	तिग्मांशु	२६	१९
चक्रवाल	६३	१३	जलराशि	१३	२	तिमिररिपु	२६	२०
चक्राङ्गवाह	६२	२५	जलशयन	३८	१७	तीर	१३	१०
चक्री	६५	१	जाल	{ ६३	१३	तुण्ड	४९	१४
चक्षुःश्रवा	६५	२		{ ६७	२३	तुन्द	५१	१०
चञ्चरीक	४०	९	जालक	६७	२३	तोयनिधि	१३	२
चञ्चला	९	२१	जालिक	८०	२	त्रयीतनु	२६	२२
चटुला	९	२१	जिर्घासु	२३	२	त्रिक	५१	१९
चन्द्रकी	६४	३	जिन	३८	१५	त्रिकस्थानक	५१	१९
चन्द्रवसु	४७	१५	जिष्णु	३१	२५	त्रिदश	३०	१२
चन्द्रसंज्ञ	६०	५	जिह्वा	६५	२			
			जीर्ण	६३	४			

त्रिदशदीर्घिका	३६	११
त्रिदिव	२८	१५
त्रिपथा	७८	१५
त्रिपुरान्तक	३६	३
त्रिप्रचरा	७८	१५
त्रियामा	२५	२६
त्रिवर्त्मा	२७	१५
त्रिविष्टपसद्	३०	१३
त्रिसंचरा	७८	१५
त्रिसरणि	७८	१४
त्रिस्रोता	३६	११
त्र्यध्वा	७८	१४

द

दक	८	४
दक्ष	७९	२०
दक्षाध्वरध्वंसक	३६	४
दक्षिणापति	७१	१२
दण्डधर	७१	११
दण्डाहत	६२	१८
दध्युद	१३	३
दन्तावल	४५	१६
दन्दशूक	६५	२
दमुना	३४	१६
दमूना	३४	१७
दयिता	१६	१
दर्वीकर	६५	२
दल	८९	४
दशमीस्थ	६३	४
दस्यु	{ २३ ८२	{ ३ ४
दाक्षायणीरमण	२५	२
दाण्डाजिनक	८०	२
दाव	६	२३
दाशार्ह	३८	१४
दासेरक	४६	१९
दिगम्बर	७२	१३
दिनकर	२६	२०
दिनमणि	२६	१९
दिवस्पति	३१	२७

दीर्घ	७६	१८
दीर्घजङ्घ	४६	१९
दीर्घपृष्ठ	६५	२
दुर्गति	९०	१
दुर्जन	८१	२१
दुर्वर्ण	४७	१९
दुर्हत्	२३	३
दुश्च्यवन	३१	२५
दृक्श्रुति	६५	३
देवता	३०	१२
दैवत	३०	१४
दोषग्राही	८१	२१
दोषज्ञ	५६	२
द्यु	२६	२८
द्युम्न	४८	६
द्रङ्ग	४९	८
द्रु	६	५
द्रुणा	४२	१
द्वन्द्व	४५	२
द्वादशात्मा	२६	२२
द्विजराज	२५	१
द्विजिह्व	८१	२१
द्विरसन	६५	२
द्वीपवती	१२	११
द्वीपी	४६	७
द्वेषण	२३	२

ध

धनञ्जय	३४	१६
धरणिधर	३८	१४
धर्मराज	७१	११
धर्पणी	१७	१७
धव	१८	१९
धाम	२३	१९
धाराधर	९	१२
धीर	५६	१
धूपक	४६	१९
धूमध्वज	३४	१५
धूमयोनि	९	१३
धूमल	७२	७

धूमिका	८५	२५
धृष्णि	२३	१९
ध्रुव	७७	११

न

नक्तमुखा	२५	२५
नखरायुध	४६	४
नलिनी	११	२२
नाक	२८	१५
नागान्तक	६५	१६
नालीक	८०	१५
नासिका	५१	२
निःशलाक	८४	१८
निकाय	६३	११
निकुरम्ब	६३	१२
निखिल	८८	२४
निगम	{ ४९ ७८	{ ८ १२
नितराम्	८८	११
निरय	९०	१
निर्जर	३०	१२
निर्झरिणी	१२	१०
निर्व्ययन	८९	२१
निवह	६३	११
निशीथिनी	२५	२६
निशीथिनीनाथ	२५	१
निपट्टर	१०	१०
नूत्न	७६	१७
नृपलक्ष्म	९०	२६
नेम	८९	४
नेस्ता	५१	१
नैकपेय	२९	२८
नैकसेय	२९	२८
नैर्ऋत	२९	२८
न्यङ्कु	६४	१७

प

पङ्क	६६	१०
पङ्कज	१०	१२
पञ्चशास्त्र	५०	१९
पञ्चानन	४६	४

पञ्चपु	३९	१२	पिण्ड	१९	१६	प्रच्छन्न	८४	१८
पट	५९	१३	पितृपति	७१	११	प्रतन	७६	४
पटी	५९	१३	पीतवासा	३८	१३	प्रतानिनी	११	२७
पट्टसूत्र	६१	१	पीति	२७	१५	प्रतिकिट्ट	६६	१०
पताकिनी	४४	२०	पीयूष	६२	१३	प्रतिज्ञात	९१	१०
पति	१८	१९	पीयूषरुचि	२५	१	प्रतिपक्ष	२३	२
पदजेय	१४	३०	पीलु	४५	१६	प्रतिभय	८७	२२
पदवी	७८	१२	पुञ्ज	६३	१७	प्रतिभा	५५	१७
पदाङ्गद	५३	१४	पुटकिनी	११	२२	प्रतिम	६८	८
पदिक	१४	३०	पुण्डरीक	४६	७	प्रतिमोपक	८२	५
पद्ग	१४	३०	पुत्री	२०	१४	प्रतीक	१९	१६
पद्धति	७८	१२	पुद्गल	१९	१६	प्रतीपदर्शिनी	१६	१
पद्मगाशन	६५	१६	पुर	{ १९	१६	प्रत्न	७६	४
पद्मवासा	३८	२१		{ ६७	२	प्रत्यनीक	२३	२
पद्मा	३८	२१	पुरन्ध्री	१५	२८	प्रदह	३९	११
पद्मी	४५	१६	पुरुज	९०	७	प्रद्युम्न	३९	११
पद्या	७८	१२	पुलक	८२	९	प्रद्योत	२३	१९
पयूष	६२	१३	पुलुप	१४	९	प्रद्योतन	२६	१९
पयोधर	९	१२	पुष्क	९०	७	प्रघन	४५	१
पर	२३	२	पुष्कर	{ ८	३	प्रपात	१३	१०
परमेश्वर	३६	३		{ २८	१४	प्रबुद्ध	५६	२
परमेष्ठी	३७	१०	पुष्ट	९०	७	प्रभाकर	२६	२१
परास्कन्दी	८२	४	पुष्पलिट्	४२	९	प्रमदा	१५	२८
परिपन्थी	२३	२	पूग	६३	१२	प्रलम्बघ्न	७०	११
परिप्लुता	६१	१५	पूर्वज	२१	१८	प्रवयाः	६३	४
परिपञ्ज	१०	१२	पूर्वदिग्पति	३१	२६	प्रविदारण	४५	१
परिष्कार	६०	११	पृथुक	२०	२	प्रवृत्ति	६८	२०
पर्जन्य	३१	२६	पृदाकु	६५	१	प्रवेणी	९१	७
पर्यवस्थाता	२३	२	पृश्नि	२३	१९	प्रांशु	७६	१८
पलाशी	६	५	पृषदश्च	३३	८	प्राणाधिनाथ	१८	२०
पल्ल	७७	१४	पृषत्क	३९	२१	प्रायेयांशु	२५	१
पवनाशन	६५	३	पोत	५९	१३	प्रावर	५९	१३
पशु	८०	१५	प्रकट	८४	५	प्रावार	५९	१३
पशुपति	३६	३	प्रकार	६८	८	प्रीति	५४	२३
पांशुला	१७	१७	प्रकाश	{ ६८	८	प्रेक्षा	५५	७
पाक	२०	२		{ ८४	५	प्रेतपति	७१	११
पाकशासन	३१	२७	प्रकोष्ठ	५०	१६	प्लवङ्गम	६	१५
पानीय	८	४	प्रल्य	६८	८			
पार्वतीनन्दन	३५	४	प्रग्रह	२३	१९	फ		
पिचण्ड	५१	१०	प्रचलाकी	६४	३	फल	६	२३
						फलक	५१	१९

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

व	व	भुवन	८	४	माधव	६१
वद्धभूमिक	६७	भूच्छाय	७२	१३	माधवक	६१
वद्धर	८०	भूतधात्री	४	६	माधवीक	६१
वभ्रु	३८	भूतेश	३६	३	मानसौकम्	६३
वल	७०	भैरव	८७	२२	माया	३८
वलसूदन	३१	भोक्ता	१८	१९	मायावी	८०
वहिर्ज्योति	३४	भोगी	६५	२	मायी	८०
वहुल	३४	भ्रूण	२०	३	मितम्पच	८५
वाडिश	८०	मञ्जुकेश	३८	१३	मित्र	२६
वाणासन	४२	मण्डन	६०	११	मिष	६८
वाल	{ २०	मण्डल	६३	१२	मिहिका	८५
	{ ८०	मति	५५	८	मिहिर	२६
वाल्लिश	८०	मतिमान्	५६	३	मुकुन्द	३८
वाहुलेय	३५	मत्स्य	८	२८	मुदिर	९
वृक्कण	४७	मधु	६१	१५	मूर्तिज	१९
वुद्धि	५५	मधुकर	४२	८	मूर्धज	९०
वृहत्	८७	मधुसख	३९	१२	मृगदंश	४७
वृहद्भानु	३४	मनसिज	३९	११	मृगरिपु	४६
ब्रह्मचारी	३५	मनीषी	५६	२	मृगाङ्गा	२५
ब्राह्मी	५२	मन्त्रज्ञ	८७	२	मृगारि	४६
		मन्या	५०	११	मृणालिनी	११
भग	२६	मयूख	२३	१९	मृदुल	७५
भयानक	८७	मरालवाह	६३	२५	मृद्य	४५
भर्ग	३६	मरुत्	३०	१३	मृद्वीक	६१
भर्ता	१८	मरुद्वर्मन्	२८	१४	मेघपुष्प	८
भर्भरी	३८	मल	६६	१०	मेघा	५५
भल्ल	३९	मल्लिलुच	८२	४	मोपक	८२
भल्लि	३९	मस्तक	५२	९		
भषण	४७	महातेजस्	३५	४	य	
भसल	४२	महावल	३३	८	यथार्थवर्ण	८७
भानुमान्	२६	महाविल	२८	१५	ययु	२७
भास्कार	२६	गहारजत	४७	१५	याज्य	६२
भास्वान्	२६	महासेन	३५	४	यातयान	६३
भीम	{ ३६	महिला	१६	१	यामिनी	२५
	{ ८७	महीरुह	६	५	यूप	६३
भीषण	८७	महेला	१६	१	यूनी	१५
भीष्म	८७	मा	{ २५	२		
भीष्मसू	३६	माणवक	{ ३८	२२	रजनीकर	२५
भुजङ्गभुक्	६५		२०	३	रत्नगर्भा	४
					रत्नवती	४

धनञ्जय-नाममाला

1600	रमाङ्गपाणि	३८	१४	वरयिता	१८	१९	विल	८९	२१
	रमणी	१५	२८	वरला	६४	११	विन्द्याय	६५	२
	रमा	३८	२२	वराक	८५	१	विवसन	५९	१०
	रवण	४६	१९	वरिष्ठ	२१	१८	विवस्वान्	२६	२०
	रश्मि	२३	१९	वर्णिनी	१५	२८	विविक्त	८४	१८
	रसा	४	६	वर्तनी	७८	१२	विशारद	५६	३
	राक्षस	२९	२७	वर्षायान	२१	१८	विशिख	३९	२०
	रागसूत्र	६१	१	वर्ष्म	१९	१६	विश्रम्भ	८८	६
	राजसर्प	६५	३	वर्हण	५२	२८	विश्वरूप	३८	१३
	राजा	२४	२४	वशा	१६	१	विश्वास	८८	६
	रात्रि	२५	२६	वसति	२५	२६	विष्टर	६	६
	राशि	६३	१२	वसु	{ २३	१९	विष्टरश्रवाः	३८	१५
	रिश्य	६४	१७		{ ३४	१५	विष्णुपद	२८	१५
	रक्म	४७	१५	वस्त्र	५९	१२	विष्णुपदी	३६	११
	रुम	४७	१५	वस्न	५९	१०	विष्णुग्रथ	६५	१६
	रुचि	२३	१९	वह्निरेता	३६	४	विष्वक्सेन	३८	१३
	रुच्य	२९	२२	वातप्रमी	६४	१७	विसर	६३	११
	रुह	६४	१७	वामदेव	३६	४	विसार	८	२९
	रोक	८९	२२	वामनेत्रा	१५	२८	विस्तीर्ण	८७	१८
	रोचि	२३	१८	वारिद	९	१३	वीचिमाली	१३	२
	रोधोवका	१२	११	वार्ता	६८	२०	वीणा	९१	७
	रोप	३९	२१	वासतेयी	२५	२६	वीतहोत्र	३४	१६
	रोलम्ब	४२	९	वासिता	१५	२८	वीति	२७	२५
	रोहिणीवल्लभ	२४	२५	वास्तोष्पति	३१	२६	वीरुब्	११	२७
	ल			विकर	६३	११	वृक्ष	६	५
	लक्ष्य	६८	१८	विकिर	२९	१७	वृजिन	९१	१
	लव्यवर्ण	५६	१	विकर्तन	२६	२०	वृत्तान्त	७५	२
	लवणोद	१३	२	विक्रान्त	९०	१८	वृत्वारि	३१	२५
	लहरी	१३	१७	विग्रह	{ १९	१५	वृद्ध	{ ५६	२
	लेख	३०	१३		{ ४५	२		{ ६३	४
	लेङ्गवह	४७	२	विजन	८४	१८	वृद्धश्रवाः	३१	२५
	व			विद्या	६८	८	वृन्दारक	३०	१३
	वक्षोऽह	५१	१४	विवेय	८०	१४	वृषाकपि	३८	१५
	वज्रवर	३१	२६	विपश्चित्	५६	२	वृषाङ्क	३६	५
	वटु	२०	३	विपुला	४	६	वेणी	९१	७
	वनमाली	३८	१५	विवुष	३०	१३	वैकुण्ठ	३८	१४
	वनीकस्	६	१५	विभव	४८	७	वैजयन्त	४३	१०
	वपा	८९	२२	विभा	२३	१९	वैवस्वत	७१	११
	वयसी	२०	१६	विभावरी	२५	२५	व्यक्त	५६	३
				विरोक	२३	१९	व्यञ्जक	८०	३

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

व्याल	६५	१	शुक्लापाङ्ग	६४	३	सदेश	६९	१३३
व्यूह	६३	१३	शुचि	३४	१५	सन्	४६	२३
व्योमकोश	३६	३	शुण्डा	६१	१५	सनातन	{ ३८ ७७	२ १५
व्रज	६३	११	शुपि	८९	२२	सनाभेय	२१	१०
व्रात	११	२७	शूर	२६	२०	सनीड	६९	२३
			शोक	२३	२०	सन्निकट	७०	१
शकली	८	२८	शेवलिनी	१२	११	सन्निभ	६८	८
शक्तिपाणि	३५	३	शैल	४	३०	सपिण्ड	२१	१०
शतधृति	३७	१०	श्यामकण्ठ	६४	३	सप्ताश्व	२६	२१
शतहृदा	९	२०	श्रीकण्ठ	७१	११	सभासद	५६	७
शतानन्द	३७	१०	श्रीनन्दन	३९	११	सभास्तार	५६	७
शवल	६४	१७	श्रोपति	३८	१३	समय	३	१४
शम	५०	१९	श्रीवत्साङ्ग	३८	१३	समयादि	६९	२३
शमन	७१	११	श्लोक	७४	१३	समवाय	६३	१२
शम्बर	६४	१७	श्वभ्र	८९	२२	समाख्या	७४	१३
शम्भु	{ ३६ ३८	३	श्वेत	४७	१९	समानोदर	२१	१०
शय	५०	१९	श्वेतच्छद	६३	२३	समानोदर्य	२१	१०
शर्वरी	२५	२५	श्वेतरोचि	२५	१	समिति	४५	२
शल्की	८	२९				समीक	४५	१
शशध्वज	१३	२				समीर	३३	८
शशाङ्क	२५	१	पट्चरण	४२	९	समुदय	६३	१२
शशिशेखर	३६	३	षडङ्घ्रि	४२	९	समुदाय	{ ४५ ६३	२ १२
शाखामृग	६	१५				समुद्रकान्ता	१२	१२
शातकुम्भ	४७	१५				समुद्रनवनीत	२५	२
शात्रव	२३	२	संख्य	४५	१	समूह	६३	११
शाद	१०	१०	संख्या	५५	८	सम्मर्द	४५	३
शारिवा	११	२७	संख्यावान्	५६	३	सम्मिन्	४५	२
शाल	६	५	संगर	४५	३	सरस्वती	१२	११
शालावृक	४७	२	संवित्ति	५५	८	सरिहरा	३६	११
शाव	२०	३	संवेग	८३	१३	सरीसृप	६५	१
शाश्वत	७७	११	संव्यान	५९	१३	सर्पाशन	६४	३
शाश्वतिका	७१	११	संस्त्याय	६७	२	सर्वसहा	४	७
शिक्षित	७९	२०	संस्फोट	४५	२	सर्वज	३६	३
शिखावल	६४	३	सखा	२१	२	सर्वतोमुख	८	४
शिञ्जिनी	{ ५३ ६०	१३	सगर्भ	२१	१०	सलि	८०	१४
शिरसिज	९०	१९	सङ्कल्पजन्मा	३९	११	सविता	२६	१९
शिशु	२०	२	सञ्चय	६३	११	सहचरा	१६	१५
शीर्ष	५२	१	सत्र	६	२३	सहचरी	१६	१५
			सुदातन	७७	११	सहधर्मचारिणी	१६	१५

धनञ्जय-नाममासा

अहोत्रिकरण	२६	१९	सुरवर्त्म	२८	१५	स्वादूद	१३	३
सहाय	१४	३०	सुरसरित्	३६	१०	स्वापतेय	४८	६
सागराम्बरा	४	६	सुरोद	१३	३	स्वैरिणी	१७	१७
सामाजिक	५६	७	सूर	२६	१०	ह		
सामि	८९	४	सेवता	१८	२०	हंस	२६	२१
सायक	३९	२१	सेवक	१४	३०	हंसक	५३	१४
सार	४८	६	सैरिन्वी	१८	१८	हरि	२६	२०
सारङ्ग	६४	१७	सोदर	२१	१०	हरि	३३	८
सारसन	६०	१९	स्कन्ध	५०	२१	हरि	७१	११
सार्थ	६३	१२	स्तनयितु	९	१२	हरिण	७२	९
सिंह	४६	४	स्तन्य	६२	१३	हरिदश्व	२६	२१
सिद्धनी	५१	२	स्तोम	६३	१३	हरिप्रिया	३८	२१
सिचय	५९	१२	स्थविर	३७	१०	हरिमान्	३१	२७
सित	४७	१९	स्थानीय	४९	८	हरिहय	३१	२६
सिताभ्र	६०	५	स्थिरा	४	७	हर्यक्ष	४६	४
सितेतरगति	३४	१५	स्निग्ध	२१	२	हविः	६२	७
सीता	३८	२२	स्पर्शन	३३	८	हव्य	६	२३
नुकुमार	७५	१४	स्पश	८७	१	हारहूर	६१	१६
नुचरिता	१७	९	स्पृह्य	६२	७	हिमवालुक	६०	५
नुधामूर्ति	२५	२	लपटा	३६	४	हिरण्य	४८	७
नुधी	५६	२	नोतस्	१२	११	हृच्छय	३९	१२
नुपणकेतु	३८	१४	स्वजन	२१	१०	हेपण	५२	२६
नुपर्वी	३०	१४	स्वयम्भू	३७	१०	हैपा	५२	२६
नुमनस्	३०	१२	स्वराट्	३१	२६	हादिनी	९	२०
मुख्येष्ट	३७	१०	स्वर्गीकस्	३०	१२	हादिनी	१२	११
मुरनिम्नगा	३६	११	स्वादुरसा	६१	१५	होपा	५२	२६

यौगिकशब्दानुक्रमणिका

अग्निपर्यायसूनुः सेनानी ६६	जित्यापर्यायिकरः बलः १४२	मनुष्यपर्यायपतिः नृपः १४
अघपर्यायजयी जिनः १३१	ज्ञाद्यादिः ध्वजाद्यन्तःस्मरः ८४	मयूरपर्यायपतिः गुहः १२६
अदितिशब्दात्परं सुतपर्याय- प्रयोगे देवनामानि ५६	तामरसपर्यायवती विसिनी २३	मेघपर्यायपथः आकाशः ५३
आकाशपर्यायगः खगः ५४	दिनपर्यायिकरः सूर्यः ५०	रात्रिपर्यायचरः राक्षसः ५५
आकाशपर्यायचरः खेचरः ५४	देवपर्यायपति इन्द्रः ५७	लक्ष्मीपर्यायपतिः हरिः ७६
उडुपर्यायपतिः चन्द्रः ४८	देहपर्यायभवः सुतः ३९	वायुपर्यायपथः आकाशः ५३
काष्ठादिनामतः परं पालप्रयोगे गजप्रयोगे अम्बरप्रयोगे च दिम्पाल नामानि ६१	द्युपर्यायधुनी गंगा ७१	वार्यपर्यायचरः मत्स्यः १६
कायपर्यायरहितः मन्मथः ७७	धनपर्यायदायकः कुवेरः ९६	वार्यपर्यायधिः अम्बुधिः १६
कार्मुकपर्यायकोटिः अटनी ७९	धीनामवर्जितः मूर्खः १६६	वार्यपर्यायोद्भवः पद्मम् १६
किरणवाचिभ्यः पूर्व शीतशब्द- प्रयोगे चन्द्रनामानि, यथा- शीतकिरणः ४६	नागपर्यायारिः मृगेन्द्रः ९०	वित्तपर्यायपतिः कुवेरः १६
किरणशब्देभ्यः पूर्वम् उष्णशब्द- प्रयोगे सूर्यनामानि, यथा- उष्णकिरणः ४६	निशापर्यायिकरः चन्द्रः ४८	विधिपर्यायपुत्रः नारदः ५३
कृष्णपर्यायपुत्रः मन्मथः ७७	पद्मपर्यायवैरी गरुडः १२८	विपिनपर्यायचरः वनेचरः १३
गङ्गानदीश्वरः सिन्धुः ७१	परिषत्पर्यायजं कमलम् २०	विष्टपर्यायपतिः जिनः ११३
क्षित्तिपर्यायहारि मनोहरम् १७८	पवनपर्यायपुत्रः भीमः ६६	शम्पापर्यायपतिः अम्बुदः १९
जाङ्गलपर्यायप्रियः राक्षसः ५५	पवनपर्यायपुत्रः हनुमान् ६३	शैलभम्पादिधरः हरिः ७६
	पवनवाचिसखा अग्निः ६४	सेनानीपर्यायपिता शङ्करः ६८
	पुष्पपर्यायशरः स्मरः ८०	स्रोतस्विनीपर्यायपतिः- अट्ठिः २४
	पुष्पपर्यायास्त्रः स्मरः ८०	स्वर्गपर्यायपतिः इन्द्रः ५७
	प्रस्थपर्यायवान् गिरिः ९	स्वर्गपर्यायवत्सः त्रिदशः ५७
	भूमिपर्यायधरः शैलः ७	स्वान्तपर्यायोद्भवः मारः ८१
	भूमिपर्यायपतिः नृपः ७	हिमपर्यायिकरः चन्द्रः १७९
	भूमिपर्यायपरुहः वृक्षः ७	

अनेकार्थनिघण्टुगतशब्दानामकरादिसूची

अक्ष	१०४	७६,७७	इडा	१०२	२९	केसरिन्	१०४	८५
अगारि	१०४	१०५	उ			कोकिला	१०४	८२
अङ्क	१०३	४०	उक्षन्	१०४	१०६	कोटरस्थ	१०५	१४९
अज	१०२	३४,३५	उदकया	१०५	१३०	कोमल	१०२	२६
अदिति	१०२	२९	उदार	१०५	१२९	कीधिक	१०२	१३
अध्यात्म	१०५	१२३	उष्णीष	१०४	८८	क्रव्य	१०४	९५
अध्यूहा	१०२	३०	उत्सा	१०४	१०७	क्षत्ता	१०३	३८
अनन्त	१०२	३७	ऋ			क्षय	१०३	४५
अनिमिष	१०२	४	ऋत	१०४	७५	क्षर	१०२	२१
अपाचीन	१०४	९३	ओ			ख	१०३	६४,६५
अव्द	१०३	५७	ओषण	१०४	७५	ग		
अमृत	१०२	२२	क	१०२	३,४	गो	१०२	२
अम्बर	१०२	१९	ककुप्	१०३	४४	गोलक	१०५	१३३
अम्बरीष	१०३	६१	कवन्ध	१०४	८८	ग्रावाण	१०३	७४
अकं	{ १०२ १०४	{ १५ ९४	कम्बु	१०२	११	घ		
अलात	१०४	८६	कर	१०२	२४	घन	१०३	४६,४७
अवदात	१०३	५५	कर्पक	१०४	९०	घनाघन	१०४	९३
अद्वारोह	१०४	९४	कल	१०४	८६	घृत	१०२	२३
असित	१०३	६७	कलभ	१०४	१०८	च		
असुर	१०३	४८	कलुप	१०४	१०८	चटक	१०४	१०४
आ			कानीन	१०४	९०	चमू	१०३	४८
आकूत	१०४	९८	किलास	१०४	१०४	छ		
आक्रन्द	१०४	९५	कीटक	१०५	१२६	छेद	१०४	८६
आगोष	१०३	४०	कीनाश	{ १०३ १०५	{ ५३,५४ १२१	ज		
आडम्बर	१०४	११२	कीलाल	१०२	२५	जम्बुक	१०२	१४
आत्मज	१०३	५३	कुण्ड	१०५	१३३	जीमूत	१०३	५८
आदित्य	१०३	७१	कुण्डाशी	१०५	१३४	ज्योति	१०३	५५,५६
आधि	१०४	१०२	कूल	१०३	३६	त		
आयतन	१०४	७८	कृतघ्न	१०५	१२३	तपस्	१०५	१३१
आर्य	१०४	१११	कृष्ण	१०२	२२	तमोनुद	१०२	१६
आलवाल	१०४	१०३	केतु	१०२	१६	तादर्य	१०३	५०
आलान	१०४	९२						
आहत	१०४	८९						

तिलक	१०४	८४
तुल्य	१०४	१०४
तृणी	१०३	५१
तेजस्	१०५	१३१
तोदन	१०४	९२
तोयद	१०३	५८
त्रियामा	१०४	१०९
त्रिशङ्कु	१०३	६८
द		
दक्ष	१०३	७०-७१
दक्षिण	१०४	९७
दविष्ठ	१०४	९९
दान	१०४	९२
दान्त	१०५	१२४
दीर्घ	१०४	११०
दुश्चर्मन्	१०४	९०
दोला	१०४	१०४
द्विज	१०३	५२
ध		
धनञ्जय	१०२	९
धार्तराष्ट्र	१०३	६५
धिष्ण्य	१०२	१८
न		
नकुल	१०३	६७
नत्व	१०५	१५१, १५२
नाग	१०३	४९
नापित	१०४	१०१
नास्तिक	१०५	१३२
निकष	१०४	८४
नितम्ब	१०३	७२
निरुपद्रवा	१०५	१२८
निरुपस्करा	१०५	१२७
निविड	१०४	८९
नृत्तिह	१०५	१२०
न्यग्रोधपरिमण्डला	१०५	१४३
प		
पद्म	१०४	८२

पण्ड	१०४	९१
पतङ्ग	१०२	१२
पदकृत	१०४	१०१
पद्म	१०४	७७
पय	१०२	१९
परचित	१०५	१३५
परमेष्ठी	१०४	१००
परिचर्य	१०४	८४
पर्जन्य	१०३	६०
पलाश	१०४	१०६
पवन	१०४	१११
पानीय	१०४	१०२
पाप	१०४	९९
पाञ्चजन्य	१०२	११
पिशङ्ग	१०४	८३
पिशित	१०४	९५
पुण्यश्लोक	१०५	११७
पुलिन	१०४	८२
पुष्कर	१०३	३६
पुष्प	१०४	७८
पुंस्त्व	१०३	६२
पृष्ठीही	१०४	१०७
पौलस्त्य	१०३	५९
प्रजापति	१०३	३८
प्रधान	{ १०३ ५६ १०४ १०५	
प्रपा	१०४	११३
प्रभाकर	१०३	६६
प्राप्ताद	१०३	४६
प्लव	१०३	४५
फ		
फेनवाहिनी	१०३	९४
व		
वन्तु	१०४	९९
वीभल्ल	१०२	९
भ		
भगवन्	१०५	१२९
भामिनी	१०५	१४२

भार्या	१०५	१४८
भाव	१०४	८७
भास्कर	१०२	१२
भुवन	१०२	२५
भूरिव्यव	१०५	१४०
म		
मञ्जूषा	१०४	८५
मण्डूक	१०४	८९
मत्तकाशिनी	१०५	१३९
मधु	१०३	६३, ६४
मन्थिन्	१०२	१५
मन्द	१०५	१२१, १२३
मन्दिर	१०४	१०५
मयूख	१०२	१७
मलिम्लुच	१०३	५२
मस्कर	१०४	१०७
महेष्वात	१०५	११८
माया	१०३	६३
मुष्ट	१०४	९६
मेचक	१०४	८३, १०६
म्लिष्ट	१०४	९१
य		
यम	१०३	६८
युद्धशोण्ड	१०५	११७
यूधप	१०५	११९
यूधपयूधप	१०५	११९
र		
रहस्य	१०४	१०३
रजन्	१०३	७२
रत्न	१०४	८३
रत्न	१०४	१०९
रत्न	१०४	९२
रत्ना	१०३	७४
राजन्	१०२	७
राजीवलोचन	१०५	११४
राजीवलोचना	१०५	१४३
रान	१०२	३०, ३३

धनञ्जय-नाममाला

रावण	१०५	१४१	विभावगु	{ १०२	८	शुष्क	१०४	९६
रीहिण्येय	१०२	३१		{ १०३	४१	शेमुषी	१०४	९३
ल			विम्बोली	१०५	१३७	शेष	१०२	३२
लक्ष्म	१०३	६९, ७०	विरोचन	१०२	१०	शैलूप	१०४	१००
लक्ष्मण	१०३	६९	विलास	१०४	८७	प		
ललना	१०५	१३७	विशाल	१०४	९०	पङ्कज	१०५	१३३
ललाम	१०४	८१	विप	१०२	२४	स		
ललता	१०५	१३९	वृकोदर	१०५	११६	सवर	१०२	२७, २८
लवली	१०४	८१	वृजिन	१०४	१०२	सत्र	१०४	१०३
लावण्य	१०४	१०१	वृष	१०२	३०	सत्वर	१०४	८३
लुलाय	१०४	१०६	वृषा	१०२	३१	सदन	१०२	२६
लेखा	१०३	६१	वेहत्	१०४	१०७	सद्म	१०२	२७
व			वैकर्तन	१०५	११५	सप्तपि	१०२	१७
वक्रवक्त्र	१०४	८२	व्यक्तिवादिन्	१०५	१२०	सप्ताश्व	१०५	१४८
वन्ध्या	१०४	१०७	व्यञ्जन	१०४	११२	समाधि	१०५	१२४
वरवणिनी	१०५	१३८	व्याधि	१०४	१०२	समाधिस्थ	१०५	१२५
वराह	१०२	३३, ३४	श			सम्राट्	१०४	१०९
वरुण	१०३	४७	शङ्कु	१०२	१४	सान्द्र	१०३	४२
वपामू	१०४	८९	शङ्खकण्ठी	१०५	१४५	सारंग	१०३	७३
वलाहक	१०३	५७	शम्भु	१०२	१३	सारस	१०२	७
वल्लरी	१०४	११३	शरारु	१०५	१३१	सित	१०३	६६
वसा	१०४	१०७	शरीरज	१०२	३५	सुमना	१०४	११३
वसु	{ १०२	१८	शर्वरी	१०३	४२	स्यविष्ट	१०४	९९
	{ १०३	७३	शव	१०२	२३	स्यन्दन	१०२	२१
वाजी	१०४	७९	शिखरिन्	१०३	५१	स्वर	१०३	४३
वाम	१०३	३९	शिखिन्	१०२	५	ह		
वालेय	१०३	५०	शिव	१०२	२०	हंस	१०२	६
वासर	१०३	४१	शिवा	१०४	९०	हरि	१०४	८०
विद्वान्	१०३	६३	शिलीमुख	१०३	६०	हिमाराति	१०२	८
विपञ्ची	१०४	११२	शीत	१०६	१५३	हिल	१०४	१०८
विपिन	१०६	१५२	शुक्रा	१०४	८१	ह्रस्व	१०४	११०
			शुचिकृन्	१०३	५९			

उद्धृतवाक्यानामकारादिसूची

अङ्कनाच्च तदेक्षणां	५७	गमो अरहंताणं	१	भर्ता संगर एव मृत्यु वसति	१५
अतिप्रलापभावेन	६१	तत्तु हैयङ्गवीनं यद्	६१	मान्यत्वादाप्तविद्यानां	२
अनशनावमौदर्यवृत्ति-	२	तत्संदेहे गते ताभ्यां	५८	मुदन्ति मिश्रीभवन्ति	१२
असूययागय निशाम्य यां	३३	दुज्जण सुहियउ होउ	२२	यः पापपाशनाशाय	२
आत्मनि मोक्षे ज्ञाने	५२, ५८	दुर्जनानां विनोदाय	६३	य उत्पन्नः पुनाति वंशं	१९
आपो नारा इति प्रोक्ताः	३७	दित्रैर्व्योम्नि पुराण-	२५	यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं	५९
आयुः पीयूषकुण्डैः स्मृति-	६२	न कुं पृथिवीं पिपति	१२	रेषणात् क्लेशराशीनाम्	२
आहुर्नैत्रोत्थमन्त्रेः स्तुत-	२४	नक्षत्रमूक्षं भं तारा	२५	लक्ष्मीकौस्तुभपरिजातकसुरा	६१
उड्डीय वाञ्छितं यान्ति	१४	नक्षत्रे वाक्षिमध्ये च	२५	वरं क्षिप्तः पाणिः	२२
एको रथो गजश्चैको	४५	नभन्तु नभसा सार्धं	१	वर्णागमो गवेन्द्रादौ	
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य	६५	नवमे प्राणसन्देहो	५४	२३, २९, ४६ ५९, ६५	
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च	३४	नासाकण्ठमुरस्तालु		वाजं वाजस्तु पक्षेऽपि	२७
काश्यमित्युच्यते तेजः	५७	निषद्वरस्तु जम्बाल-	१०	वाहो युग्यं घनो वाहो	२७
कियती पञ्चसहस्री	९६	निषादर्वभगान्धार	५३	वृषाकपिर्वसुदेवे	३४
कुमारकाले आमलकी-	५५	पञ्चमे दह्यते गात्रम्	५४	श्यामा रात्रिस्तु विद् श्यामा	२५
कोकिलानां स्वरो रूपं	५५	पञ्चाचाररतो नित्यं	५५	षड्जं मयूरा ब्रुवते	५३
क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः	६०	पट्टनं शकटैर्गम्यं	४९	सत्यं दूरे विहरति समं	१४
गिरिकन्दरदुर्गेषु	३२	पतत्रिपत्रिपतग-	२९	सन्धिर्योनौ सुरङ्गाया	९६
गोसवे सुरभिं हन्यात्	५६	पत्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः	४४	सर्पपस्य प्रयत्नेन	९६
गीः स्वर्गः सप्रकृष्टात्मा	५८	पुण्डरीकं सिताम्बुजम्	१०	स व्याख्याति न शास्त्रम्	३
गोगीः कामदुघा	५२	पुष्पसाधारणे काले	५३	स्वस्थे नरे सुखासीने	९६
चतुःषष्टिकलाभिज्ञा	१८	प्रथमे जायते चिन्ता	५४	स्वानुभूत्यै भवेद्	१
चत्वारः पुरुवंशजा	५८	प्रशस्या न नमस्यापि	२२	हावो मुखविकारः स्यात्	१७
जातमात्रोऽथ भगवान्	३१	प्रायश्चित्तविनयवैद्यावृत्य	२	हिसानृतस्तेया-	२
				हिरण्यगर्भमभवत्	३७

भाष्यगता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

अकलङ्कः	१	द्विसन्धानकाव्यम्	३३	विद्यानन्दी	१	१
अनेकार्थध्वनिमञ्जरी-		द्विसन्धानभाष्यम्	६१	शब्दभेदः	१	१७
	२५	नाममाला	७२	शास्वतः	२५	९
	२७	पद्मनन्दिशास्त्रम्	१	श्रीभोजः	२५	९
अमरकोषः	८७	पूज्यपादः	१	समन्तभद्रः	१	१
	१०	वृहत्प्रतिक्रमणभाष्यम्	५८	सूचितमुक्तावली	२२	१८
अमरसिंहः	१२	भरतनाटकम्	५३	सोमनीतिः	४८	१९, २४, २७
	४३	भारतम्	४४		१९	२४
	५३	महापुराणम्	५७	हलायुधः	१०	२६
अमरसिंहनाममाला	२९		५८		१२	२४
अमरसिंहभाष्यम्	१९	यशःकीर्ति	२२	हलायुधभाष्यम्-		
आशाधरमहाभिषेकः	६२		२२		२९	५
इन्द्रनन्दिनी तिशास्त्रम्	५५	यशस्तिलकम्	१४	हैमः	९४	१०
कल्याणकीर्तिः	१		२४	हैमनाममाला	२७	१९
क्षीरस्वामी	६२		६३	हैमी	९६	१७, २५, २७
डाल्लणिकः	२९	यशस्तिलकचम्पूकाव्यम्	९८	हैमीनाममाला	३४	१२

सङ्केतविवरण

अ० चि० अभिधानचिन्तामणि
अनेका० सं० अनेकार्थसङ्ग्रह
अम० को० अमरकोश
अम० को० क्षी० भा० अमर-
कोश क्षीरस्वामी भाष्य
अमर० अमरकोश
अ० सं० अनेकार्थसंग्रह
उ० सू० उणादिसूत्र
कल्प० को० कल्पद्रुकोश
का० उ० कातन्त्र उणादि
का० रु० उ० कातन्त्र रूपमाला
उत्तरार्ध
का० रु० पू० कातन्त्र रूपमाला
पूर्वार्ध
का० रु० पू० सू० कातन्त्ररूप-
माला पूर्वार्धसूत्र

का० सू० कातन्त्रसूत्र
क्षी० भा० क्षीरस्वामीभाष्य
क्षी० स्वा० क्षीरस्वामी
जन० समु० जनपदसमुद्देश
जै० सू० जैनेन्द्रसूत्र
त० सू० तत्त्वार्थसूत्र
नीतिसा० नीतिसार
नी० वा० समु० सू० नीति वाक्या-
यामृतसमुद्देशसूक्ति
प० प० पद्मनन्दपञ्चविंशतिका
पा० उ० पाणिनि उणादि
पा० गणसू० पाणिनि गणसूत्र
पात० भाष्य पातञ्जलमहाभाष्य
पा० सू० पाणिनिसूत्र
भो० उ० भोजउणादि
मे० को० वा० व० मेदिनीकोश
वान्तवर्ग

यश० ति० आ० क० यशस्तिलक
आश्वास कल्प
वि० को० का० विश्वलोचनकोश
कान्तवर्ग
वि० लो० विश्वलोचन कोश
श० च० शब्दार्णवचन्द्रिका
श० च० सू० शब्दार्णवचन्द्रिका
सूत्र
शा० कारिका शाकटायन कारिका
शा० सू० शाकटायन सूत्र
सर० क० सरस्वतीकण्ठाभरण
सार० समा० सू० सारस्वत
समास सूत्र
हे० च० हेमचन्द्र
हे० श० हेमशब्दानुशासन

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	प०	अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठ	प०	अशुद्धयः	शुद्धयः
७	१४	सरं	शरं	६५	९	विपाशयः	विपक्षयः
५३	२	स्तमितं	स्तनितं	६९	२	निकुरो	निकरो
५४	२१	मुक्तोपा-	मुत्तोपा-	७१	२१,	श्वेतो	श्येतो

